RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 5
अप्रैल-जून 2017
मूल्य : 50 रुपये

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा संचालित आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं हेतु निःशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना (सीहोर चैप्टर, तीसरा वर्ष)

बालिकाओं को पाठ्य सामग्री तथा कम्प्यूटर डिप्लोमा प्रदान करने हेतु आयोजित कार्यक्रम

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा संचालित आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं हेतु निःशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना (आष्टा चैप्टर, प्रथम वर्ष)

समाचार पत्रों में कवरेज

ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने बालिकाओं को दिए डिप्लोमा सर्टिफिकेट

बेटियों को सम्मान के साथ खड़ा करना हमारा दायित्व: ढींगरा

आयोजन | ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने बांटे बालिकाओं को सर्टिफिकेट

बेटियों को समाज में सम्मान सबका दायित्व : ढींगरा

सीहोर। नवदुनिया न्यूज

सोमवार को ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका द्वारा बालिकाओं को कोर्स एवं डिप्लोमा सर्टिफिकेट वितरण समारोह का आयोजन बन्नू बाई स्कूल में किया। इस अवसर पर फाउंडेशन के चेयरमेन ओम ढींगरा और उपाध्यक्ष सुधा ओम ढींगरा, इछावर विधायक शैलेंद्र पटेल, डिग्री कॉलेज प्राचार्य पुष्पा दुबे, पत्रकार बसंत दासवानी और समाज सेवी हितेन्द्र गोस्वामी विशेष रूप से उपस्थित रहे। ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने यह आयोजन किया। जिला मुख्यालय की करीब सौ बालिकाओं को इस वर्ष डीसीए का डिप्लोमा सर्टिफिकेट प्रदान किया, जबकि सौ बालिकाओं को डीसीए की 12 पुस्तकों का सेट प्रदान किया गया। कार्यक्रम को संबोधित करते हुए साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने कहा कि बेटियों को सम्मान के साथ समाज में स्थान दिलाना हम सबका का नैतिक दायित्व बनता है। ढींगरा फाउंडेशन का इस दिशा में यह प्रयास है। इस मौके पर उनके द्वारा बालिकाओं की संख्या दो सौ से बढ़ाकर तीन सौ करने की घोषणा की। इसका उपस्थित बालिकाओं द्वारा करतल ध्वनि से स्वागत किया गया। फाउंडेशन के चेयरमेन ओम ढींगरा ने कहा कि हमारे द्वारा बेटियों के सम्मान के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। उन्होंने इस अवसर पर घोषणा की कि ग्रामीण क्षेत्र में स्वच्छता के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कार्य करने के वाली तीन बालिकाओं को पुरस्कार प्रदान किए जाएंगे। पुरस्कार दस हजार से बीस हजार रुपए तक के स्मार्ट फोन प्रदान किए जाएंगे।

इस मौके पर इछावर विधायक शैलेंद्र पटेल ने ढींगरा फाउंडेशन के इस कार्य की सराहना करते हुए कहा कि इछावर विधानसभा क्षेत्र में भी इस तरह की योजना को प्रारंभ किया जाएं। डिग्री कॉलेज प्राचार्य पुष्पा दुबे और पत्रकार बसंत दासवानी ने भी संबोधित किया। प्रारंभ में अतिथियों ने मां सरस्वती की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्जवलन कर कार्यक्रम की शुभारंभ किया अतिथियों का स्वागत पीसी लैब की ओर से सन्नी शहरयार और सोनू ठाकुर द्वारा किया गया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए पंकज पुरोहित ने सभी के प्रति आभार ज्ञापित किया।

सीहोर। अतिथि बालिकाओं को कोर्स एवं डिप्लोमा सर्टिफिकेट प्रदान करते हुए।

कार्यक्रम | ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने बालिकाओं को वितरित किए डिप्लोमा सर्टिफिकेट

अमेरिका की संस्था 300 बेटियों को सिखाएगी कंप्यूटर

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू.के.)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, शहरयार
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-678-9056 (H),
+1-919-801-0672(MO.)
Email: sudhadrishti@gmail.com

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 5, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2017
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

रेखाचित्र
विज्ञान व्रत

आवरण चित्र
पल्लवी त्रिवेदी

आवरण चित्र के बारे में

वो 9 मार्च 2014 की खूबसूरत सुबह थी। फागुन की गुनगुनी धूप में मेरे घर के आँगन में ढेर सारी गिलहरियाँ खेल रही थीं। कभी पेड़ पर चढ़कर एक दूसरे के पीछे भागतीं तो कभी आँगन में दौड़ लगाने लगतीं। जब खेल कर थक जातीं तो छोटे बच्चों की तरह आँगन में रखी बिस्किट की प्लेट पर आकर दोनों सामने के पैरों को हाथ बनाकर बिस्किट कुतरने लगतीं। नर्म उजली धूप में उनके शरीर के रोएँ और तीन धारियाँ ऐसी चमक रही थीं मानों अभी इनकी मम्मी ने शेम्पू कंडीशनर लगाकर नहलाया हो और खेलने भेज दिया हो।

मैं आँगन में ही कुर्सी पर बैठी कोई किताब पढ़ रही थी लेकिन मेरा सारा ध्यान गिलहरियों की मस्ती पर था। गिलहरियाँ हमेशा मुझे अपनी संतानों सी मोहक और प्यारी लगती आई हैं। अपनी हथेली पर बिस्किट खिलाते हुए उनके नन्हे पंजों की नर्म छुअन एक नवजात बच्चे की छुअन का एहसास कराती है। आख़िरकार मैंने किताब नीचे रखी और कैमरा थामा। शायद कोई अनूठा पल कैप्चर हो जाए।

करीब पचास अलग-अलग तरह की क्लिक्स के बाद एक अनूठा पल क़ैद हो ही गया। एक गिल्लू दौड़ती हुई बाउंड्री वॉल के हरे नेट पर जा रही थी, अचानक एक पोले पाइप के ऊपर से गुज़रते हुए पल भर को ठिठकी और बड़े प्यार से अपना सर टेढ़ा करके पाइप पर टिका दिया मानों किसी मुलायम तकिये पर दो घड़ी सुस्ताने रुकी हो या पाइप के भीतर से कोई पुकार सुनकर उस पर कान लगाया हो।

ठीक उसी पल में कैमरे ने गिल्लू को क़ैद कर लिया और यह तस्वीर मेरे लिए गिलहरियों के सैकड़ों क्लिक्स में से सबसे अद्भुत तस्वीर बन गई। ओह.. कितनी मासूम, कितनी निर्दोष। आधी मुँदी सी आँखें और लाल-लाल नन्हें होंठ। किसको लाड़ नहीं उमड़ आएगा इस नन्हीं गिलहरी पर। एक प्यार भरा शुक्रिया और आसमान भर मुहब्बत संसार की सारी गिल्लुओं के लिए कि उनका होना दुनिया में मासूमियत का होना है। -पल्लवी त्रिवेदी

इस अंक में

सम्पादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

अंशु जौहरी
सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 11

कहानियाँ

एक कायर दास्ताँ...
हर्ष बाला शर्मा 16

माँ और मोबाइल
सुदर्शन वशिष्ठ 20

थी, हूँ, रहूँगी
शिवानी कोहली 25

इंतज़ार
पवन चौहान 29

टीना आंटी का सपना
कादम्बरी मेहरा 34

लघुकथाएँ

ब्रांड
डॉ. गजेन्द्र नामदेव 19

सिस्टम
संदीप तोमर 38

सौदा, नौकरी, साम्यवाद
सुनील गज्जाणी 45

घर की इज़्ज़त
शकुन्तला पालीवाल 50

भ्रम के चौराहे पर
संतोष सुपेकर 71

भाषान्तर

किऊ गार्डन के पेड़
पंजाबी कहानी : गुरनाम गिल
हिन्दी अनुवाद : शशि सहगल 39

शहरों की रूह

कुछ खूबसूरत गलियाँ कैलिफोर्निया की
मंजु मिश्रा 42

व्यंग्य

पांडेय जी और साहित्य महोत्सव
लालित्य ललित 44

फादर की तलाश में
अतुल चतुर्वेदी 46

आलेख

प्रवासी हिन्दी कहानी और समलैंगिकता
मधु संधु 48

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा
डॉ. नीलाक्षी फुकन 51

दृष्टिकोण

प्रवासी साहित्यकार है कौन ?
विक्रम बाली 56

शोध-आलेख

उपन्यासकार उषा प्रियवंदा
संध्या चौरसिया 57

ग़ज़लें

शिवकुमार अर्चन 59

कविताएँ

शहंशाह आलम 62
आरती तिवारी 63
स्वरांगी साने 64
प्रतिभा सक्सेना 65
असंग घोष 66
सुदर्शन प्रियदर्शिनी 67
चित्रा देसाई 68

गीत

अमित कुमार झा 63
शकुन्तला बहादुर 65

पुस्तक समीक्षा

खिल उठे पलाश (मुकेश दुबे)
समीक्षक : वंदना गुप्ता 69

पार्थ तुम्हें जीना होगा (ज्योति जैन)
समीक्षक : डॉ. गरिमा संजय दुबे 72

यायावरी यादों की (नीरज गोस्वामी)
समीक्षक : पारुल सिंह 73

चाहने की आदत है (पारुल सिंह)
समीक्षक : मुकेश दुबे 75

अंदर का स्कूल (मनोहर अगनानी)
समीक्षक : शानू सेंगर 76

समाचार सार

'नाटक से संवाद' का लोकार्पण 77
साहित्य साधना सम्मान 77
गोवा व्यंग्य महोत्सव 78
'पार्थ, तुम्हें जीना होगा' का विमोचन 78
वनमाली कथा सम्मान 79
'कंधे पर कविता' का विमोचन 79
नरेंद्र कोहली को पद्मश्री 80
वीणा राष्ट्रीय पुरस्कार 80
सर्वश्रेष्ठ नाटककार सम्मान 80
विश्वगाथा पुस्तक लोकार्पण 80
ढाक के तीन पात पर चर्चा 80
जाजंगीर साहित्य महोत्सव 81
अमृतलाल नागर जन्मशती 81

आख़िरी पन्ना 82

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।) सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम : — — — — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :** — — — — — — — — — — — — — — — — — — —
— — — — — — — — — — — — — — — **सदस्यता शुल्क :** — — — — — — — — **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :** — — — — — — — — — —
ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) : — — — — — — — **दिनांक :** — — — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

झूठ घूम-घूम कर सच बन जाते हैं

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
फोन : +1-919-678-9056
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

मित्रो,

पश्चिम की हवाएँ कोहरे से भर गई हैं। उस कोहरे से सूरज की रोशनी अपना तेज खो रही है और चन्द्रमा की चाँदनी अपनी ठंडक। लोग भूल रहे हैं अपने वजूद को, इंसान होने को। बस बँट गए हैं काले और सफ़ेद रंगों में। कोहरा संकुचित और कुंठित सोच का परिणाम है; जिस कोहरे में मानव अपनी दिशा और दिशाओं से भटक गए हैं।

जब प्रौद्योगिकी का मानव जीवन में प्रवेश हुआ था तो कितनी प्रसन्नता थी चहुँ ओर। जीवन को नए अर्थ मिल गए थे। असंख्य तकनीकी लाभ नज़र आए थे और वे लाभ हुए भी। एक छोटे से कम्प्यूटर में पूरा विश्व समा गया। संसार का कायकल्प हो गया। वैश्वीकरण से देश समीप हो गए। फिर आगमन हुआ सोशल मीडिया का। जीवन में रंग भर गए। धीरे-धीरे सोशल मीडिया लोकप्रिय होने लगा। पर शीघ्र ही महसूस हुआ, कहीं कुछ गड़बड़ हो रही है। कम्पनीज़ ने आर्थिक कारणों से, पैसा बचाने के चक्कर में पेशेवरों को घरों से काम करने की सुविधा दे दी। उसका परिणाम यह हुआ लोग घरों में बंद होने लगे। कम्प्यूटर ही उनके संगी-साथी बन गए। जीवन की अधिकांश इच्छाएँ कम्प्यूटर से पूरी होने लगीं। कम्प्यूटर, आई-पेड और सेल फोन से उनका सारे विश्व के साथ नाता जुड़ गया और दूर-दराज़ बैठे परिवार तो नज़दीक आ गए, पर घरों में सदस्य कम्प्यूटर, आई-पेड और सेल फोन में गुम होने लगे।

मूलत: मानव सामाजिक प्राणी है। कम्पनीज़ ने अपना पैसा तो बचा लिया पर बाज़ारवाद ने, कम्प्यूटर ने, मनुष्य को समाज से तोड़ दिया। क्योंकि उसका समाज और संसार कम्प्यूटर में बस चुका था। एकल परिवार का प्रचलन तो आम बात है, अब मानव भी एकल होने लगा। एक कम्पनी ने अपने सर्वे में कहा है कि प्रौद्योगिकी और औद्योगिकी संसाधनों में लिप्त मानव अपनी इंसानियत और इंसान होना भूलने लगा है। बस मशीन बन कर रह गया है।

अचानक एक दिन विश्व बेचैन हो उठा। आतंकवाद ने अपना विकराल रूप दिखाया। आतंकवाद के अस्तित्व का अहसास उसे तब हुआ, जब पूरा विश्व आतंकवाद की लपेट में आ गया। चोट खाकर मानव जाति सचेत हुई और समझने की कोशिश करने लगी, यह सब कैसे हुआ? और क्यों हुआ? तब तक आतंकवाद अपने कदम जमा चुका था। विश्व की जासूसी एजेंसियों, तकनीकी विशेषज्ञों और बुद्धिजीवियों के समूहों की रिपोर्टों के अनुसार जो तथ्य समक्ष आए, उससे यह ज्ञात हुआ कि, सोशल मीडिया पर फैली सोशल साइट्स को ग़लत तरीक़े से इस्तेमाल किया गया था। खूबसूरत रंग, बेरंग हो गए।

खून का रंग लाल हैं और सबकी रगों में एक सा बहता है। यह सच भी झुठला दिया इन सोशल साइट्स ने; जिनपर झूठ के बेइंतिहा और बेझिझक जाम पिलाये जाते हैं; जिसके साइड इफेक्ट्स ऐसे मिले हैं; जिससे पहले तो भीतर का इंसान मरता है, फिर इंसानियत मार दी जाती है। पूरे विश्व में ये झूठ घूम-घूम कर सच बन जाते हैं और ऐसे रसायन छोड़ने

लगते हैं, जो नस्लवाद की आड़ में खून का रंग ही बदल देते हैं। नसों में बहने लगता है बस गोरा या काला खून। आतंकवादी तो सोशल साइट्स की आड़ लेकर अपनी भर्ती और गतिविधियों तक को अंजाम दे रहे हैं। कैसे मानवीय बुद्धि इतनी कुंद हो गई है कि उसे यह सब समझ में नहीं आता। मानती हूँ, झूठ हमेशा से पचाने में आसान होता है, और असर भी जल्दी करता है।

ट्विटर है या वाट्सअप पर कोई एक झूठ या अफ़वाह अगर फ़ैल जाती है तो वह बार-बार घूम कर ऐसा सच बन जाती है; जिस पर लोग विश्वास करने लगते हैं। सच मर रहा है। किसी के पास समय नहीं, सच को जानने या अफ़वाह की गहराई तक जाने के लिए। बेहद निराशाजनक समय है। आने वाली पीढ़ियाँ उसे ही सच मानेगी, जो बार-बार घूमकर उसके पास पहुँचता है या पहुँचाया जाता है और इतिहास के तथ्यों के साथ जो खिलवाड़ हो रहा है, आगामी पीढ़ी का वही इतिहास बनेगा। सचेत होइये, और ऐसी पोस्ट को रोकिए।

इस माह की टाइम मैगज़ीन ने भी इसी विषय पर अंक निकाला है- ट्रुथ इज़ डेड (Truth is Dead) यह अंक अमेरिका के प्रेज़िडेंट डोनॉल्ड ट्रम्प के ट्विटर पर लिखे गए झूठों और बार-बार लिखे गए तथ्यहीन ट्विस्ट्स पर है; जिन्हें लोगों ने सच मान लिया था। प्रेज़िडेंट डोनॉल्ड ट्रम्प के झूठों ने उनका ऐसा ब्रेन वाश किया, किसी ने सच जानने की कोशिश ही नहीं की।

अपराधिक मनोवृत्तियाँ तो यही प्रणाली अपना कर कच्ची उम्र के मस्तिष्कों में, सोशल साइट्स से बार-बार अपने विचार लिख कर, उनके भीतर ज़हर भर रही हैं।

साहित्य जगत् भी कहाँ इससे छूट पाया है। प्रौद्योगिकी से पहले तो साहित्यिक चोरी होती थी। अब तो सीना ज़ोरी होती है। रचना पसंद आई, उस पर अपना नाम चेप दिया और कर दी फॉरवर्ड वाट्सअप ग्रुप्स को। और कुछ दिनों बाद वह रचना उसी व्यक्ति की हो जाती है, जिसने अपना नाम चेपा था। कुछ ईमानदार लोग लेखक के नाम से रचना भेजते हैं, जिससे लेखक को भी पहचान मिलती है और कुछ लोग लेखक का नाम तक नहीं देते बस रचना फॉरवर्ड कर देते हैं। जिसने रचना की सृजना की है, उसके साथ कितना अन्याय है। पर लोग कर रहे हैं।

दु:ख है, जो सोशल मीडिया मानव की बेहतरी के लिए बनाया गया था, उसी से वह अपना नुक्सान कर रहा है। समय अब स्वर्ण मृग के पीछे भागने का नहीं, कुछ पल ठहर कर सोचने का है। सोशल मीडिया के लिए एक लक्ष्मण रेखा खींचनी पड़ेगी अन्यथा स्वर्ण मृग बहुत दौड़ाएगा और पूरी पीढ़ी का सोशल मीडिया पर अपहरण हो जाएगा।

अंत में एक खुशख़बरी साझा कर रही हूँ-

आपका स्नेह और दुलार लेते हुए 'विभोम स्वर' तथा 'शिवना साहित्यिकी' को एक वर्ष हो गया है और उन्हें आर एन आई नंबर प्राप्त हो गए हैं.....पत्रिकाओं को आई एस एस एन नंबर पूर्व में ही प्राप्त हो चुके थे। एक वर्ष से पत्रिकाओं को आप आशीर्वाद दे रहे हैं, आभारी हूँ आपकी। दोनों पत्रिकाओं की टीम को इसी तरह प्रोत्साहित करते रहें।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

विनाश या विध्वंस के ठीक पास से ही हमेशा सृजन या निर्माण का अंकुर फूटता है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार निराशा के गहरे अंधकार में ही आशा की पहली किरण छिपी होती है। प्रकृति रुकती नहीं है, जो कुछ नष्ट होता है उसके ठीक पास ही कोंपल पैदा हो जाती है।

मित्रनामा

अत्यंत मनोहारी कलेवर

लघु पत्रिकाओं में विभोम का स्वर अब अलग से सुनाई पड़ने लगा है। अत्यंत मनोहारी कलेवर, मुद्रण के साथ पठनीय रचनात्मक सामग्री इसकी निरंतर श्री वृद्धि कर रहे हैं। जनवरी-मार्च के अंक में महिला रचनाकारों का स्वर मुखर है। कथा कहानी, शोध अलेख, कविताओं में प्रवासी महिला रचनाकारों का अघता संवेदन संसार है। अशोक मिज़ाज, प्रबुद्ध सौरभ की ग़ज़लें अपने समय का दस्तावेज़ हैं। प्रभावित करती है। एक सारगर्भित अंक के लिए संपादक मंडल को बधाई।

-शिवकुमार अर्चन, १० प्रियदर्शिनी ऋषि बैली, ई-8 गुलमोहर एक्सटेंशन, भोपाल 462039 (म.प्र.)

मो.- 942537184

***

सतत् विकास हो

'विभोम-स्वर' का जनवरी-मार्च 2017 अंक मिला। बहुत-बहुत आभारी हूँ। अंक में अपने मेरी चार लघुकथाओं को स्थान दिया है। मैं सदैव आपका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, विश्वास रखता हूँ आगे भी प्यार मिलता रहेगा। पत्रिका के सतत् विकास एवं शिखर पर पहुँचने के लिए प्रार्थनारत।

-पूरन सिंह, 240 बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली, मो. 9868846388

***

मुकम्मल पत्रिकाएँ

शिवना साहित्यिकी का अंक - 02 मिला। प्रवेशांक नहीं मिला था, लेकिन इस अंक से यह पता चलता है कि आप लोगों ने एक अच्छी पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया है। आलोचना शोध एवं समीक्षा के प्रति आपकी दृष्टि का परिचय यहाँ प्रकाशित सामग्री से मिलता है। कामचलाऊ लेख से इतर गंभीर विश्लेषण पर लेख आपने छापा है - जो आश्वस्त करता है। भाई अशोक कुमार पाण्डेय की कविताएँ गहन जीवनानुभूति से उपजी कविताएँ हैं। गीताश्री की कहानी टच मी नाट और राकेश बिहारी की आलोचना अच्छी लगी। यहाँ चयन में शिथिलता नहीं है, यह आश्वस्त करता है। राजश्री मिश्रा की खबर कथा मेरा सच हमारे समय की भयावहता को बयाँ करती कथा है। 'विभोम-स्वर' का अंक 2 से यह स्पष्ट संकेत है कि आपने 'विभोम-स्वर' को एक मुकम्मल पत्रिका का स्वरूप दे दिया है। यह अच्छा भी है। पत्रिका निरंतर आगे बढ़ते हुए अपना एक चरित्र निर्माण करेगी।

-रजत कृष्ण, संपादक सर्वनाम, संकल्प प्रकाशन, बागबाहरा, 493449, जिला महासमुंद, छत्तीसगढ़

***

पहले से और भी सुन्दर

'विभोम-स्वर' का दूसरा अंक प्राप्त हुआ। पहले से और भी सुन्दर है। श्रीमती सुधा जी का सम्पादकीय अपने आप में अलग ही है। रंगभेद पर उनकी सटीक टिप्पणी अपनी जगह सही है। 'खाली हथेली' स्कूल प्रवेश पर अखिलेश मिश्रा का वास्तविकता की ओर संकेत करता है, हमारा संस्कृति-क्षरण भी है। मानसिक भूख के लिए काफी कुछ है। ग़ज़लें, दोहे, कविताएँ सभी अच्छा है। सबसे अच्छा संस्करण प्रियंका गुप्ता का 'हर पल कुछ सिखाती है ज़िंदगी' उनकी माँ द्वारा एक व्यक्ति की दिशा ही बदल दी।

-भोलेनाथ चतुर्वेदी, 90 चौबे हाउस, मोहल्ला चौबेयाँ, फिरोज़ाबाद, 293203

***

अच्छा साहित्यिक अंक

उज्जैन प्रवास के दौरान त्रैमासिक 'विभोम-स्वर' का जनवरी-मार्च 2017 का अंक बुक स्टाल से खरीदा। अच्छा साहित्यिक अंक पाकर मन प्रसन्न हो गया, सभी पारिवारिक कहानियाँ अच्छी लगी, लघुकथाओं में डॉ. पूरण सिंह, दीपक-मशाल, गोविन्द शर्मा जी सर्वश्रेष्ठ है। दोहे में रघुविन्द्र यादव, के.पी. सक्सैना दूसरे सर्वश्रेष्ठ दोहे लगे, इन दोनों को बधाई। डॉ. राकेश जोशी की ग़ज़ल भी अच्छी लगी कुल मिलाकर पत्रिका साहित्यिक लगी।

-रमेश मनोहरा, शीतला गली, जावरा (म.प्र.) 457226 जिला रतलाम

मो. - 9479662215

***

सम्पादकीय में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न

पत्रिका लगातार मिल रही है और हर बार अपने कलेवर और सामग्री के हिसाब से नए प्रयोगों की ओर उन्मुख हो रही है। खुशी है कि इस पत्रिका के आरम्भ से ही मैं भी इसके साथ जुड़े होने का सौभाग्य प्राप्त कर रही हूँ। आपने सम्पादकीय में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं--प्रवासी साहित्य के संदर्भ में। कई बार यह कहकर कि प्रवासी साहित्य में 'एक ठहरा हुआ भारत' दिखाई देता है, उसे नकार दिया जाता है। मुख्य धारा और गौण धारा के प्रश्न और उत्तर सुविधानुसार तैयार कर दिए जाते हैं, पर यह रुककर देखने की ज़रूरत है कि यदि प्रवासी साहित्य में भारत ठहरा है तो दौड़ते हुए भारत ने भी आख़िर क्या प्राप्त कर लिया है? हम ऐसी कौन से जल्दी में हैं कि अंतहीन दौड़ते ही जा रहे है? सम्पादकीय ने सोचने के लिए मजबूर किया। मैं सहमत हूँ कि साहित्य की ज़मीन एक साझी ज़मीन होनी चाहिए और कलम की ताकत उस ज़मीन पर हम सब को एक करती है---चाहे आप वहाँ लिख रही हैं और हम यहाँ।

उषा प्रियंवदा जी का साक्षात्कार अच्छा लगा। लम्बे समय के बाद उनकी रचना प्रकिया को उनके माध्यम से समझने का अवसर इस पत्रिका ने दिया, उसके लिए धन्यवाद। आप लोग बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं। अनंत शुभकामनाएँ!!!

-डॉ. हर्षबाला शर्मा, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इन्द्रप्रस्थ महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

***

एक स्थापना

'विभोम-स्वर' का अंक मिला। 'डेढ़ क्विंटल कविताएँ' भारी करने के लिए पर्याप्त हैं, सृजनकामी। क्या कभी अपनी आदत से बाज आएँगे ? हम क्यों नहीं ? आधुनिक बोध से मिलती-जुलती मानसिकता है। नई प्रवृत्ति है। सुधा ओम ढींगरा जी ने प्रारंभ में एक स्थापना की है। साहित्य के आकाश पर सब का हक है। प्रवासी साहित्य और साहित्यकारों का भी। इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी ? कौन इससे इंकार कर रहा है ? जब आकाश की असीम

है तब साहित्य के आकाश को कौन सीमित कर रहा है ? कौन कर सकता है ? सबके लिए पर्याप्त स्थान है। बिंदु से विस्तार की संभावना किसके फैलाव पर निर्भर हैं ? ब्रह्मांड में क्या हो रहा है ? क्या उसके निरंतर विस्तार को रोक पाना आधुनिक युग में वैज्ञानिकों के लिए भी संभव है ?

-डॉ. महेंद्र अग्रवाल, सं. नई ग़ज़ल, सदर बाजार शिवपुरी, मध्य प्रदेश 473551

***

रचनाओं का स्तर बहुत ऊँचा

दोनों पत्रिकाएँ 'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' मेरे पते पर आती रहीं हैं, जिसके लिए मैं विशेष आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। इनसे यह जान कर विशेष प्रसन्नता होती है कि प्रवासी भारतीयों द्वारा हिन्दी की इतनी महत्त्वपूर्ण सेवा हो रही है, और आप लोग कितना महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। सभी रचनाओं का स्तर बहुत ऊँचा होता है, और पाठक एक नई दुनिया से परिचित हो जाता है।

-डॉ. मंगलमूर्ति, रजनीगंधा, ए-1/9, विराट खंड-1, गोमती नगर, लखनऊ 226010

***

उच्च कोटि के संकलन

'विभोम-स्वर' का जनवरी-मार्च अंक प्राप्त हुआ, सभी उच्च कोटि के संकलन लगे, बधाई। कुछ का उल्लेख करना चाहूँगा यथा--

1.रेनू यादव का शोध आलेख -राधा का प्रेम और अस्तित्व ...अत्यंत विस्तार से शोध करके लिखा गया है जो केवल राधा को नहीं अपितु तत्कालीन एवं आज की नारी को भी रेखांकित करता है। वे बधाई की पात्र हैं।

2. अंतिम पृष्ठ पंकज सुबीर का 'डेढ़ क्विंटल कविताएँ' में अपनी बिरादरी में असहिष्णुता की बात ....स्पष्टता से कही गई है।

3.विदेशी कवयित्रियों की रचनाएँ -विशेषकर -आस्था नवल की नई नारी नई कहानी-

तन नहीं
आत्मा को छू पाओ
तो कोई बात बने
आज की चेतन
नारी की आवाज़ है।

-डॉ. श्याम गुप्त, सुश्यानिदी, के-348, आशियाना, लखनऊ -226012

***

संपादकीय महत्त्वपूर्ण

नया अंक मिला। धन्यवाद। आपका संपादकीय महत्त्वपूर्ण है। साहित्य का आकाश सबका है और हमेशा रहेगा। यह लेखकों का है और पाठकों का भी है और आलोचकों का भी पूरा हक़ है। लेखक भारत में रहता है या किसी अन्य देश में किन्तु लेखक के रूप में वे एक हैं। यही साहित्य का लोकतंत्र है। यह ध्यातव्य है कि लेखक के प्रवासी होने पर उसकी अनुभूतियों तथा संवेदनाओं का स्वरूप बदल जाता है और वह कुछ विशिष्टताओं के कारण अपनी स्वतंत्र पहचान बना लेता है। इस साहित्य को हिन्दी में प्रवासी साहित्य कहा जाता है। इसे मैंने हिन्दी का नया प्रवासी विमर्श कहा है जो अपनी विशिष्टता से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने के साथ वैश्विक बनाता है। यह गुण न दलित विमर्श में है और न अन्य किसी विमर्श में।

सुधा जी भारत से अमेरिका गई हैं। अत: उनके पास दो आकाश हैं- एक भारत का जिसे वे अमेरिका जाते समय अपने साथ ले गई थीं और दूसरा अमेरिका का जो उन्हें अमेरिका में रहते हुए मिला। वे दो आकाशों की स्वामिनी हैं, इस कारण उनकी रचनाओं में इन दो आकाशों का द्वंद्व है, इनका संगम है और इनका तुलनात्मक चित्रण है। भारत उनके साथ हमेशा रहेगा, चाहे वह नॉस्टेल्जिया के रूप में हो। नॉस्टेल्जिया को दोष मानना गलत है। यह अनुभूतियों को गहन बनाता है और रचना को प्रभावशाली। विदेश में रहकर अपने देश की याद न आए, यह असंम्भव है।

सुधा जी का कहना है कि प्रवासी साहित्य उपेक्षा का शिकार रहा है और कुछ महत्त्वाकांक्षी प्रवासी लेखकों ने बाज़ारबाद का लाभ उठाकर स्वयं को स्थापित करा लिया। यह कुछ मात्रा में सच है। देश में कुछ लोग ऐसे हमेशा रहें हैं जिन्होंने निजी लाभ के लिए अयोग्यों का साथ दिया है और ऐसे लोग हिन्दी में न हों तो आश्चर्य होगा। ऐसे लोग ऐसे लेखकों की पालकी दूर तक उठाकर नहीं चल सकते, अत: अन्त में सिद्धि केवल साधक को मिलती है।

सुधा जी, हिन्दी की प्रसिद्ध प्रवासी लेखिका हैं। वे भारत में सम्मानित हो चुकी हैं। वे निरन्तर लिख रहीं है और पत्रिका निकाल रहीं हैं तथा प्रवासी लेखकों को भारत में मंच दे रहीं हैं। हिन्दी में भविष्य ऐसे ही लेखकों का है जो अपने लिए नहीं दूसरों के लिए काम.करते हैं। ये लेखक प्रतिष्ठा पर कम रचनात्मकता पर अधिक ध्यान देते हैं। साहित्य के आकाश में ऐसे ही लेखक प्रतिष्ठित होते हैं।

-डॉ. कमल कशोर गोयनका, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, आगरा

ए/98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052

***

मुख पृष्ठ बहुत सुंदर

आज सुखद आश्चर्य के रूप में 'विभोम-स्वर' और 'शिवना-साहित्यिकी' की प्रतियाँ मिलीं। फेसबुक में उनके विषय में पढ़ रहा था। आज साक्षात् पाकर ख़ुशी हुई। आपका आभार। मेरी आँख की रेटिना का ऑपरेशन हुआ, इसलिए पढ़ना अभी नॉर्मल नहीं हो पाया है। पत्रिकाओं सामग्री के बारे में बाद लिखूँगा। फ़िलहाल ये कि इन दोनों अंकों के मुख पृष्ठ बहुत पसंद आए और अंकों की प्रस्तुति भी।

-मनमोहन सरल, मुंबई।

***

दरभंगा में बुक-स्टॉल पर

अपने शहर दरभंगा में बुक-स्टॉल पर 'विभोम स्वर' का दिख जाना कितना आह्लादित कर गया नहीं कह सकता और कुछ पल तो पल्लवी त्रिवेदी द्वारा लिए गए मनोहारी छायाचित्र को ही देखता रहा ! संपादकीय के शीर्षक 'साहित्य के आकाश पर सबका हक़ है, प्रवासी साहित्य और साहित्यकारों का भी' से आकर्षित होना स्वाभाविक था, क्योंकि मैं साहित्य को खाँचों में बाँट कर मूल्यांकन करने का

विरोधी हूँ ! साहित्य तो साहित्य है सो हमें स्त्री – साहित्य, दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, अल्पसंख्यक साहित्य या फिर प्रवासी साहित्य के रूप में इनके अलग – अलग वर्गीकरण से बचना चाहिए और साहित्य को इसकी समग्रता में ही देखना चाहिए ! साहित्य तो साहित्य है, क्योंकि हर साहित्य का मूल उद्देश्य एक ही होता है – मानव कल्याण ! प्रवासी साहित्य पर कुछ भी कहने से पूर्व मैं प्रवासी शब्द पर कुछ कहना चाहता हूँ, कि प्रवास ऊपर से चाहे जितना सुखद लगता हो पर आन्तरिक स्तर पर कैसा पीड़ादायक होता होगा, यह कोई प्रवासी ही बता सकता है ! अपनी संस्कृति, सभ्यता, समाज, भाषा और मिट्टी – पानी से दूर रहना क्या बहुत प्रीतिकर होता होगा ? क्या उस मिट्टी को भूलना आसान होता होगा जहाँ इनका बचपन बीता होगा और क्या बचपन की बहुरंगी स्मृतियाँ इनके भीतर हर दिन, हर पल एक हूक और कसक नहीं पैदा करती होंगी ? इस संपादकीय को पढ़कर बहुत हद तक यह उत्तर मिल गया कि प्रवासी के लिए अपने घर – गाँव का और भाषा – बोली का क्या और कैसा महत्त्व है और अपनी संस्कृति को प्रवासी किस रूप में लेते हैं, इस सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं रह गया है ! ज्यों – ज्यों इस संपादकीय को पढ़ता गया, लगा कि क्या साहित्यकार के साथ प्रवासी का टैग उचित है ? क्या हमने उनके साहित्य का पूर्वाग्रहरहित मूल्यांकन किया है ? नॉस्टेल्जिक कह कर खारिज कर देने से अब काम नहीं चलेगा, क्योंकि सुधाजी जैसी अनेकों लेखिकाओं और लेखकों ने विगत वर्षों में जो अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की है उसे और अधिक नकारा नहीं जा सकता है ! हिन्दी के प्रचार – प्रसार में सुधाजी तथा अन्य प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के योगदान से बेख़बरी का यह आलम अब टूटना ही चाहिए और जिनके साहित्य को अब तक हमने हाशिये पर रख छोड़ा है, उन पर दृष्टिपात करना चाहिए और हिन्दी साहित्य को एक वृहत्तर आकाश प्रदान करने वाले प्रवासी साहित्यकारों को भी अपने हृदय में उचित स्थान देना चाहिए !

संपादकीय के बाद उषा प्रियंवदा का साक्षात्कार, इसे ही कहते हैं मुँह माँगी मुराद ! अभी हाल ही में उषा जी का उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' पढ़ा है और काफ़ी प्रभावित हुआ! इस बेहतरीन लेखिका से सुधा ओम ढींगरा जैसी स्वनामधन्य लेखिका की बातचीत हो, तो कोई विरला ही उसकी अवहेलना करके आगे बढ़ने की हिमाकत करेगा ! वैसे भी पहला ही प्रश्न कुछ ऐसा पूछा है सुधाजी ने उनके आरम्भिक लेखन और प्रेरणा स्रोत के बारे में, कि उषाजी के लेखिका बनने की प्रक्रिया को जानने को मन व्यग्र हो उठा ! वाकई चावल तो कोई भी लड़की बना सकती है पर उषाजी की तरह की कहानी हर लड़की नहीं लिख सकती – सहज और तार्किक ! अपनी दिनचर्या का निर्वाह करते हुए भी जिनपर लेखन और विचार ही हावी रहता है, उन उषा प्रियंवदा का लेखन तभी तो ऐसा मार्मिक और गम्भीर होता है ! इनसे बातचीत के पाठ का अविस्मरणीय अनुभव प्रदान करने के लिए सुधा ओम ढ़ींगरा को विशेष रूप से धन्यवाद !!

कविता विकास की कहानी का भी अवलोकन किया जाए, ऐसा सोच कर मैं 'वसंत लौट रहा है' को पढ़ने लगा ! हर रोज़ सोचता था कि 'विभोम-स्वर' की अन्य रचनाओं को भी देखूँ पर हंस, वागर्थ और कथादेश के आ जाने से मेरा ध्यान बँट गया और कुछ समय के लिए मैं 'विभोम-स्वर' से उदासीन हो गया पर कविता विकास की कहानी की तीन – चार पंक्तियाँ क्या पढ़ीं मैं तो बस कहानी में डूब ही गया ! एक स्त्री की सारी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ घर – परिवार के भेंट चढ़ जाती है और प्रतिभावान होने के बावजूद भी विवाहिता स्त्री को बहुधा अपने गुणों का, हुनर का और तमाम काबिलियतों का परित्याग करके खुद को चूल्हे – चौके और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों में झोंक देना पड़ता है !! अगर कहूँ कि घर – घर की यही कहानी है तो कुछ ग़लत नहीं होगा ! इस कहानी की दिलकश आवाज़ की मलिका मिसेज़ पायल सक्सेना की अपने घर में कोई कदर नहीं, जबकि वह संगीत में ग्रेजुएट थी और इंग्लिश में एम.ए. पर अपनी मर्ज़ी से कुछ भी न कर सकी, पति पर पूरी तरह से आश्रित स्त्री की दयनीय स्थिति पर काफ़ी गुस्सा आ रहा था मुझे, लेकिन अंततः उसने प्रतिरोध का बिगुल फूँक ही दिया और अपने अधिकार के लिए मुखर हो उठी और पतिव्रता स्त्री का लबादा फेंक कर खुद को मुक्त कर दिया ! लेकिन क्या इस कहानी की नायिका जब इंग्लिश में एम.ए. थी और संगीत में ग्रेजुएट तो एक मर्द से प्रतिरोध के लिए उसे दूसरे मर्द के संग – साथ और संवेदना की ज़रूरत थी ? उसे तो बहुत पहले ही कुछ क्रान्तिकारी कदम उठाना लेना चाहिए था और नालायक, संदेही और हतोत्साहित करने वाले पति से अलग होकर स्वयं का अस्तित्व तलाशना चाहिए था !! लेकिन एक बेहतरीन कहानी के लिए लेखिका को धन्यवाद !!

भारतीय समाज अंधविश्वास और पिछड़ेपन से अभी भी पूरी तरह से ग्रस्त है और इसलिए 'डायन' मानकर गाँव ही नहीं छोटे – बड़े शहरों में भी स्त्रियों को प्रताड़ित किया जाता है ! सोचा कि देखा जाए कि प्रेम गुप्ता 'मानी' अपनी कहानी (किस ठाँव ठहरी है – डायन ?) में क्या कुछ कह रही हैं ! कहानी में एक निसहाय औरत को मारने के लिए इकट्ठी उग्र भीड़ के घृणा और क्रोध का एकदम सजीव चित्रण किया है कथा – लेखिका ने ! सदियों से चली आ रही है यह प्रथा कि मूर्ख और जाहिल भीड़ किसी बेकसूर स्त्री को डायन कहकर उसे सामूहिक रूप से कलंकित, अपमानित करने के बाद उसकी हत्या तक कर देती है ! वक़्त बड़ी तेज़ी से बदल रहा है और हम आधुनिक और वैज्ञानिक युग में अग्रसर हैं पर अज्ञान और अंधविश्वास का साया भी पहले से ज़्यादा गहरा और भयावह होता जा रहा है !!

'पुनर्जन्म' यक़ीनन एक बेहतरीन कहानी है और मन ही मन मैं प्रतिभा जी की प्रतिभा को प्रणाम करता हूँ ! भ्रष्ट व्यवस्था के गहरे धुंध से छुटकारा पाना बेहद मुश्किल है, क्योंकि हर महकमा भ्रष्टाचार के काले कीचड़ में लिथड़ा हुआ है और जो भी इस कीचड़ को साफ करने की कोशिश करता है

यह व्यवस्था उसे ही साफ कर देती है और हत्या को बड़ी सफाई से आत्महत्या घोषित कर दिया जाता है ! हर जाँच - पड़ताल फर्जी और हर आश्वासन झूठा, परन्तु न्याय की अभिलाषा मानवता के गर्भ में पलती एक सनातन इच्छा के 'पुनर्जन्म' की आशा जगाती प्रतिभा की कहानी बहुत ही संवेदनशील है !

अरुणा सब्बरवाल की कहानी 'छोटा - सा शीश महल' पढ़ी ! ''जुड़वाँ बच्चे होंगे'' कहने के साथ ही क्या भारत की तरह ही अमेरिका के डॉक्टर भी उन बच्चों के लिंग की जानकारी दे देते हैं ? क्या अमेरिका में भी लिंग भेद है ? क्या भारत की तरह वहाँ भी गर्भवती स्त्रीयों से केवल बेटे की आशा रखी जाती है ? यदि नहीं, तो फिर सिमरन आशा को लड़कों के ही नाम क्यों सुझाती है, लड़कियों के भी क्यों नहीं ? कहानी अतिरिक्त भावुकता की शिकार हो गई है !!!

-नवनीत कुमार झा, हरिहरपुर, दरभंगा- 847306

***

पत्रिका-द्वय की सहज स्वीकार्यता

त्रैमासिक पत्रिका 'शिवना साहित्यिकी' एवं वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'विभोम-स्वर' मुझे निरंतर प्राप्त होती रही है। इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। यहाँ मैं अपनी प्रकाश्य पुस्तक 'फिल्म पत्रकारिता का इतिहास' का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा, जो इन दिनों कम्प्यूटर टाइपिंग के अन्तर्गत है। इसी कारणवश मैं अपनी खरी -खोटी प्रतिक्रियाएँ समय पर नहीं भेज सका। स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। मैं इस बात से भी भयाक्रांत हूँ कि कहीं निर्भीक संपादक की पैनी-पारखी लेखनी यह न कह बैठे-यह किसने कहा है ? क्या उसने कहा है? या इसने कहा है? जी नहीं, श्रीमान्!!! यह डॉ. कुमार अथवा मैंने कहा है।

मुझे आख़िरी पन्ना से ही सृजनात्मक चिंतन के सूत्र मिलते हैं। स्तम्भ 'डायरी' में 'धरमिंदर पाजी दा जवाब नहीं' (नीरज गोस्वामी), 'पेपर से पर्दे तक.... ' स्तम्भ में कृष्णकांत पंड्या की आलेख एवं यतीन्द्र मिश्र की कृति 'लाता सुर-गाथा' की समीक्षा पढ़ते समय मुझे प्रसिद्ध पत्रकार अरविन्द कुमार संपादित टाइम्स-समूह की पारिवारिक फिल्म पाक्षिक 'माधुरी की याद आ गई।

समग्रता पत्रिका-द्वय की सहज स्वीकार्यता ही इसका हार्दिक अभिनन्दन है। ये साहित्य के वैभव भण्डार की यश: कीर्ति है। पत्रिकाओं से जुड़ी असंख्य सँभावनाओं एवं अनगिनत विभूतियों का मंगलगान से स्वागत-सत्कार किया जाना चाहिए। आकर्षण आवरण, शुद्ध मुद्रण, उत्तम कागज़, श्रेष्ठ सामग्री- संचयन आदि से भला कौन अभिभूत नहीं होगा।

ग़ज़लों की बहार है। कहानियों की कतार है, आलेख, समीक्षा और साक्षरकार हैं। आप बधाई के सुपात्र हैं।

-डॉ. प्रभात कुमार, बार्ड नंबर 3, बीच बाज़ार, पत्रायल, सोहसराय, 803118, ज़िला नालन्दा (बिहार)

***

ग़ज़ब का आवरण

विदेशों से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं और उनकी सामग्री पर लेख लिखने का विनम्र अनुरोध भारत की एक प्रतिष्ठित पत्रिका ने किया और मैं गूगल पर पत्रिकाओं को सर्च करने लगी। कुछेक के नाम तो मुझे पता थे पर कुछ और पत्रिकाएँ ढूँढ़ने की इच्छा थी ताकि लेख में कोई कमी न रहे। अचानक 'विभोम-स्वर' पत्रिका सामने आ गई। जनवरी- मार्च 2017 अंक। ग़ज़ब का आवरण। चित्र भी किसी महिला द्वारा लिया हुआ। वाह.... सामग्री की ऐसी कशिश, पूरी पत्रिका पढ़कर उठी। इतनी प्रेरित हुई कि इसके पिछले तीनों अंक भी पढ़ लिए। अपनी राय मैं जनवरी- मार्च 2017 अंक पर दूँगी। कहानियाँ एक से बढ़कर एक। ग़ज़लें, कविताएँ, साक्षात्कार, विदेशों के गालियाँ, लेख, व्यंग्य पुस्तक-समीक्षा, समाचार....80 पृष्ठों में कितना कुछ दे दिया। कहानियाँ सामाजिक चेतना जगाती और चिंतन के द्वार खोलती हैं। एक-एक कहानी पर विमर्श हो सकता है। अरुणा सब्बरवाल अपनी कहानी 'छोटा-सा शीश महल' में अति भावुकता पर थोड़ा विराम लगातीं तो कहानी मील का पत्थर बनती। बहुत ही बढ़िया विषय है।

संपादकीय टीम को बारंबार बधाई!!! भारत और विदेशों के रचनाकरों में क्या बढ़िया सामंजस्य। विभोम-स्वर ने सच में ऐसा आकाश दे दिया, जिसपर सबका हक़ है। संपादकीय और आख़िरी पन्ना पत्रिका को दिशा देते प्रतीत होते हैं। बेहतरीन हैं दोनों। बेबाक लेखनी को सलाम! दिल से स्वीकार करूँ मैं इस पत्रिका पर फ़िदा हो गई हूँ!!

-आरती कपूर, 146 साउथविक ड्राइव, इलिनॉय 60107, यूएसए

***

एक खूबसूरत स्मृति

इस बार का आवरण सिर्फ दो बच्चे नहीं हैं, एक खूबसूरत स्मृति है इन बच्चों के साथ कुछ समय बिताने की और उनके साथ सड़क पर हाँक लगाकर कमल के फूल बेचने की। शुक्रिया इस स्मृति को आवरण बनाकर सहेजने के लिए।

-पल्लवी त्रिवेदी

***

उम्दा किस्म की भाषा

सुबोध शर्मा का लेख बहुत ही उम्दा किस्म की भाषा से सराबोर आलेख...बहुत-बहुत बधाई.....ऐसी रचनाएँ यदा-कदा ही देखने को मिलती है। लेखनी की अंतरंगता विचित्र अनुभूति कराता है।

-अशोक शर्मा

***

कम समय में काफ़ी गहराई

साहित्य उदधि में बहुत ही कम समय में काफ़ी गहराई तक गोता लगाने वाली पत्रिका। संपादक महोदय एवं पूरी टीम को बहुत बहुत शुभकामनाएँ!!!

दीप शर्मा 'दीप'

***

प्रत्येक अंक नए अंदाज में

सुधा ओम ढींगरा और पंकज सुबीर जी को बहुत-बहुत बधाई!!! विभोम-स्वर का प्रत्येक अंक नए अंदाज में पाठकों के सामने आ रहा है।

-उमा मेहता

***

प्रवासवास के कारण मेरी सोच का दायरा विस्तृत हुआ है

(अंशु जौहरी के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

अंशु जौहरी ने सन् 1998 में 'उद्गम' की स्थापना; जो कि विश्व की प्रथम साहित्यिक वेबज़ीनों में से एक थी तथा सन् 2004 तक उसका संपादन किया। मेरी अंशु जी से तभी पहचान हुई। बेहद उत्साही, हिन्दी भाषा के प्रति गंम्भीर और साहित्य को समर्पित लेखिका हैं। कम लिखती हैं पर बढ़िया लेखन की पक्षधर हैं। अंशु जी के साथ जब भी बात होती है, अक्सर गंभीर साहित्यिक चर्चा होती है।

अंशु जौहरी
संप्रति: हार्डवेर इंजीनियर।
शिक्षा: स्नातिका। (विद्युत अभियांत्रिकी), शासकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, जबलपुर,म.प्र। स्नातकोत्तर (डिजिटल डिज़ाइन), सैन होसे स्टेट यूनिवर्सिटी कैलिफोर्निया, यू.एस.ए।
प्रकाशित कृतियाँ:
खुले पृष्ठ-खंड काव्य
शेष फिर-कहानी संग्रह
अदृश्य किनारा-कहानी संग्रह
संपादन:
सन् 1998 में 'उद्गम' की स्थापना; जो कि विश्व की प्रथम साहित्यिक वेबज़ीनो में से एक थी तथा सन् 2004 तक उसका सम्पादन।
उल्लेखनीय :
हिन्दी नाट्य 'तलाश वजूदों की' (2001) तथा अंग्रेज़ी नाट्य 'मॉम्स मॉम' (2011) का सैन होसे, कैलिफोर्निया में मंचन। आपने अनेकानेक सम्मेलनों/कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया। भारत, कैनेडा, तथा अमेरिका की साहित्यिक पत्रिकाओं में कविताओं तथा कहानियों का प्रकाशन; जिनमें कादम्बिनी, वागर्थ, वर्तमान साहित्य, सृजन गाथा, समकालीन सरोकार, हिन्दी जगत्, विश्वा और हिन्दी चेतना आदि उल्लेखनीय है।
संपर्क: 2839 नौर्क्रेस्ट ड्राईव सैन होसे, कैलिफोर्निया, 95148 , यू.एस.ए।
ईमेल: anshu@udgam.com

प्रश्न : *अंशु जी, क्या 'लेखन' से महिला अपने संघर्ष को कम कर सकती है, स्वतंत्रता अर्जित कर सकती है?*

उत्तर : सुधा जी, 'लेखन' स्वतंत्रता अर्जित करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। शब्दों में बहुत बल होता है। शब्द प्रेरित करते है, राह दिखाते है, जीवन में विस्तारों से परिचय कराते हैं और जागृति फैलाते है। लेखन मानसिक रूप से विश्वास और हिम्मत को संगठित करता है, जो क्रमश: एक भौतिक और व्यवहारिक संगठन में परिलक्षित होता है। आवाज़ कुछ दूर तक जा कर खो जाती है, हमारे आंदोलन भौगोलिक होते है; लेकिन शब्दों के आंदोलन का विस्तार संपूर्ण विश्व में बहता है और एकजुट करता है। यह हर किस्म की लड़ाई के लिए एक आवश्यक हथियार है।

प्रश्न : *आप हार्डवेयर इंजीनियर हैं। व्यवसायिक महिला हैं और वर्षों से एक कंपनी में काम कर रही हैं। आपकी दृष्टि में वैश्विक मंच में स्त्रियों की स्थिति में भारतीय स्त्रियों की तुलना में क्या समानता या विभेद है ?*

उत्तर : मेरी दृष्टि में वैश्विक स्तर पर आज निश्चित ही स्त्री अधिक सशक्त, और मुक्त है। वह मानसिक रूप से अधिक सजग और जागरूक है और अपने शोषण के प्रति आवाज़ उठाने में हीनता महसूस नहीं करती। जब मैं वैश्विक मंच की बात करती हूँ तो मेरा तात्पर्य अनजाने ही पश्चिमी और विकसित देशों में उनकी परिस्थितियों से होता है। मैं इसमें उन देशों का हवाला नहीं दे पाती; जहाँ 11 साल की बच्ची का विवाह 65 साल के वृद्ध से कर दिया जाता है या बलात्कार के लिए स्त्री को भी जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया जाता है या जहाँ उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता है। साफ़-साफ़ कहूँ तो मैं उन देशों से तुलना कर रही हूँ; जहाँ लोकतंत्र है। पश्चिमी और विकसित देशों में कानूनी संरक्षण का समुचित क्रियान्वन स्त्रियों की स्थितियों में सुधार लाने में सहायक सिद्ध हुआ है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में स्त्रियों की वृद्धि हुई है, पारिवारिक दायित्वों में पहले की अपेक्षा उसे अपने पुरुष साथी का सहयोग प्राप्त है और वह अधिक सृजनशील है। किन्तु इसके साथ कुछ अपवाद भी जुड़े है....

समाज अभी भी उस परंपरागत सोच से बिधा है; जहाँ पारिवारिक आय के लिए साधन जुटाना पुरुष का कार्यक्षेत्र है और घर तथा बच्चों की देखभाल स्त्री का। इसलिए एक मोड़ पर स्त्री के लिए पारिवारिक दायित्व अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते है। अपने दो साल के बच्चे को डे केयर के सुपुर्द कर नौकरी पर जाने में उसे पीड़ा और अपराध बोध होता है और बहुधा देखा गया है कि सामाजिक सहयोग के अभाव में उसे अपने पारिवारिक और व्यावसायिक जीवन में से किसी एक को पार्श्व स्थान देना पड़ता है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाएँ अपने पुरुष सहकर्मियों की अपेक्षा कम वेतन पाती है और यदि वे विवाहित है तो ले ऑफ के दौरान भी उनकी आय को मुख्य न मानकर, उनकी नौकरी खोने की संभावना अधिक होती है। फिर भी उसके लिए रास्ते पहले से अधिक खुले हुए है और अपना पथ

चुन पाने का सामर्थ्य पहले से अधिक है।

भारत की 2011 की जनगणना के आंकड़ों से कुछ अंदाज़ लगाया जा सकता है कि भारत और विश्वपटल पर लड़कियों की स्थितियों में क्या अंतर है। भारत में लिंग अनुपात में गिरावट आई है, सात वर्ष से कम आयु की लड़कियों की मृत्य दर में वृद्धि हुई है। आंकड़े केवल बीमारी का स्वरूप बताते है, उसका कारण नहीं। भारतीय परिदृश्य में स्त्रियाँ मुख्यत: दो वर्गों में बंटी हुई हैं। एक वर्ग है जो अपने वैश्विक पक्ष के समकक्ष है। उसकी विचारधारा, आचार-विचार खुले हुए हैं, वह स्वावलम्बी और प्रगतिशील है। यह वर्ग मुख्यत: महानगरों और बड़े शहरों तक सीमित है । देश के अन्य भागों में दूसरा वर्ग है जो अभी भी सामजिक शोषण से जूझ रहा है। जन्म, शिक्षा, भोजन, विवाह तक उसके साथ भेदभाव होता है और विवाहोपरांत भी उसका लिया निर्णय अहमियत नहीं रखता। इस वर्ग में मध्यमवर्गीय स्त्री भी है जो शिक्षित है, नौकरी भी करती है पर मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार है।

और इन सबके परे चाहे वो कोई भी परिदृश्य हो, बहुधा परिवार और बच्चों का लालन-पालन उसे हर प्रकार का शोषण सहने को बाध्य करता है ताकि पारिवारिक संतुलन और शान्ति बनी रहे।

प्रश्न : *आप एक सजग महिला हैं। बाज़ारवाद के दौर में स्त्री एक नए प्रकार के शोषण का शिकार हुई है। आप इसे किस तरह से देखती हैं*

उत्तर : मेरी समझ से बाज़ारवाद का तात्पर्य यहाँ उस बुनियादी ज़रूरत से है, जहाँ सृजन अधिकाधिक बिक्री को ध्यान में रख कर किया जाए। हम काले सफ़ेद वस्त्रों की अपेक्षा रंग बिरंगे वस्त्रों की ओर आकृष्ट होते है। शब्दों से ज़्यादा हम चित्रों की ओर ध्यान देते हैं...चित्रों में सुन्दर स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा आकर्षित करती हैं। यह सदियों से चला आ रहा तथ्य है...इसलिए विज्ञापनों में हम स्त्रियों को अधिक देखते हैं.... किन्तु मैं इस शोषण को नए प्रकार का शोषण नहीं मानती। यह हमेशा से था। अब जो अंतर आया है वह यह कि शायद पहले स्त्री विवशता में इस शोषण के आगे झुका करती थी। अब स्वेच्छा से! किन्तु जो कार्य स्वेच्छा से हो उसमें शोषण कैसे हुआ ? और जो स्वेछा से होता है वह तब ही हो सकता है जब उसमें बरसों से जमा एक 'ग़लत' सही लगने लगे।

व्यक्तिगत तौर पर मैं 'स्त्री' को, स्त्री की देह को बाज़ार में विज्ञापित वस्तुओं जैसा मानने में कष्ट महसूस करती हूँ; क्योंकि वह देह को रूह से अलग कर निर्जीव चीज़ों जैसा परोसा जाता है। पहले ही हमारे पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के प्रति संवेदना का अभाव है, इस तरह के विज्ञापन उस संवेदनहीनता को और बढ़ावा देते हैं। यदि सुई को रोज़-रोज़ चुभोया जाए तो कुछ समय बाद वह चुभना बंद कर देती है। हम चुभन के टोंचते दर्द के प्रति निष्क्रिय हो जाते है। आज अधिक आवश्यकता 'स्त्री' को वस्तु नहीं इंसान समझने की है। इसलिए हर वो चीज़ जो स्त्री को महज एक 'मनोरंजन' की तरह सामने रखती है चाहे वह विज्ञापन हो या साहित्य वह मुझे निराश करता है।

प्रश्न : *अब मैं जो प्रश्न करने जा रही हूँ वह है-बाज़ारवाद ने किस तरह से हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है? इस पर आपकी क्या सोच है, जानना चाहती हूँ।*

उत्तर : जब पूरा विश्व एक तकनीकी क्रान्ति से गुज़र रहा हो; जो बाज़ारवाद पर आधारित है तो हिंदी साहित्य उससे कैसे अछूता रह सकता है। साहित्य, कला, संगीत इन सभी विधाओं को हमेशा बढ़ावे की आवश्यकता रही है; क्योंकि उसे बाज़ार के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाने में बहुत सी चीजों के साथ समझौता करना पड़ता है। संपूर्ण विश्व में इतिहास के पन्ने पलटे तो पाएँगे कि राजे-महाराजे इन विधाओं को और इनसे जुड़े कलाकारों को, लेखकों और कवियों को बढ़ावा देते रहे हैं। साहित्य, साधारण जन मानस तक पहुँचाने के लिए और साहित्य में लोगों की रुचि बनाए रखने के लिए बल का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

व्यवसाय और सृजन दो अलग-अलग विधाएँ हैं। व्यवसाय की सफलता हानि-लाभ पर टिकी होती है। सृजन अपने आप में एक उपलब्धि है; किन्तु उसे लोगों तक पहुँचाने के लिए जब व्यावसायिक मापदंडो से गुज़रना पड़ता है, तब उसका स्वभाव बदल जाता है। समाज जो खरीदता है, व्यवसायी वह बेचता है और व्यवसाय के इस क्षेत्र में साहित्य निष्पक्ष नहीं रह जाता, वह दास बन जाता है और दूसरी बात यह भी है कि यदि व्यवसायी नियोजित और कृत्रिम तरीके से घटिया वस्तुओं को बेचने का निर्णय ले लें तो समाज घटिया सृजन का हो जाएगा।

रोटी, आलू, प्याज़ और दाल की तरह साहित्य मूल आवश्यकता नहीं है लोगों की। आज अधिकतर लोग वो पढ़ना चाहते है; जो उन्हें उनके दैनिक संघर्ष से कुछ देर के लिए बाहर ले जाए। उन्हें ऐसा मनोरंजन चाहिए जो चिंताओं से दूर ले जाए। चिंतन के करीब नहीं। ऐसे में लिखने वालों के आगे दो रास्ते है-वो वह लिखे जो लोग पढ़ना चाहते हैं, जो गहराई में जाए बिना झट से समझ आ जाए या अपने चिंतन को अपना कर्म मानकर बस लिखते रहे और और स्वयं ऐसे तरीके ढूँढ़े; जिससे वो अपनी बात लोगों तक तक पहुँचा सके। बाज़ार किसी का नहीं होता। वह क्रय-विक्रय के साधारण सिद्धांत पर चलता है। आज हमारे पास बहुत से तकनीकी संसाधन है मसलन न्यूयॉर्क से पेरिस की दूरी कॉन्कर्ड हवाई जहाज़ सात घंटे में तय कर लेता है; जबकि एक आम हवाई जहाज़ को 11 घंटे लगते है पर उसका टिकट खरीदना हर आदमी के बस की बात नहीं। वह जल्दी पहुँच सकता है पर आर्थिक अभाव के कारण उसी दूरी को ज़्यादा समय में तय करना बेहतर समझता है। समाज उसके लिए तैयार नहीं है; क्योंकि उसके उत्पादन की लागत एक आम आदमी की आर्थिक पहुँच से बाहर है। किन्तु साहित्य का ऐसा नहीं है। यदि हमारा समाज अच्छे साहित्य को नकारेगा तो उसे जीवित रखना संभव नहीं, यह भी वस्तुस्थिति नहीं है। ज़िंदा वही साहित्य रहता है जो किसी भी वाद के आगे झुके बिना अपनी बात कहता है और जो साहित्य किसी भी 'वाद विशेष' के लिए लिखा

जाता है वह लम्बे समय के कोहरे में खो जाता है; क्योंकि समय के साथ मूल्य बदलते हैं। जो दृष्टि इन मूल्यों के परे देख कर अपनी बात कहने का सामर्थ्य रखती है वही टिकती भी है। हाँ लिखने वालों को आर्थिक लाभ नहीं होगा, तरह-तरह की कठिनाइयों से गुज़रना होगा और उन लोगों से अपनी तुलना को रोकना होगा, जो वह लिखते हैं, जो बिकता है, और बिक कर कहीं खो जाता है।

अंतरजाल के कारण दुनिया सिमट सी गई है और लोगों के पास अब अच्छे साहित्य को पढ़ने के तरह-तरह के विकल्प है और लेखकों के पास भी उन तक पहुँचने के। लेकिन मेरे हिसाब से कोई भी चीज़ गलत या सही इस बात से होती है कि हम उसका इस्तेमाल कैसे करते हैं। बाज़ारवाद यदि अच्छे साहित्य को लोगों तक पहुँचाकर जाग्रति पैदा करता है तो उसमें कुछ भी बुरा नहीं। इससे सृजनशीलता बढ़ेगी, नए-नए आयाम ढूँढ़ेंगी। किन्तु इसका विपरीत होने की संभावना अधिक है।

प्रश्न : *जैसे इन्सान पहला प्यार नहीं भूल पाता, उसी तरह पहली रचना का रोमांच भी अंत तक रहता है....पहली बार छपने का सुखद एहसास भुलाया नहीं जाता.....इसके बारे में कुछ बताएँगी आप।*

उत्तर : मैं नौ साल की थी और बड़े होकर फ्लोरेंस नाइटिंगेल बनना चाहती थी। माँ और पापा दोनों न्यायिक अधिकारी थे। स्कूल से घर लाने की, फिर खाना देने की और होमवर्क करने की याद दिलाने की ज़िम्मेदारी खेमचंद की होती थी; जो माँ-पापा की अनुपस्थिति में मेरी और मेरी बहन की देखभाल करता था। जब हम होमवर्क करते वह कविताएँ लिखता था। पढ़ने का शौक बचपन से था और यूँ कविता लिख पाना अपने आप में बड़ा अद्‌भुत लगता था। 'मुझे भी सिखा दो कविताएँ लिखना।' यह कहा था मैंने उससे।

'कविता लिखना बहुत आसान है। आप तो आसानी से लिख लोगे।'

फिर एक दोपहर मैंने उससे तुक मिलाना सीखा और हम दोनों ने मिलकर शिवजी पर मेरी पहली कविता लिखी।

फिर जैसे एक नन्हें बच्चे की तरह जो जब नया-नया बैठना सीखता है तो पूरे समय बैठने की कोशिश करता है, कुछ इसी तरह मैंने कविताएँ लिखीं। माँ पर, चाँद पर, दोस्त पर, फूलों पर, सड़क पर, जो दिख जाए उस पर...तुकबंदी कविता करने की प्रथम सीढ़ी थी। तब एक टॉपिक चुनकर भावों के साथ ज़बरदस्ती करनी पड़ती थी उस पर लिखने की। पहली बार अपने नाम को 'नंदन' में प्रकाशित देखा था जब मैं 12 बरस की थी। और उसी आयु में कुछ हुआ कि माँ की कही बात बुरी लगी, तो कविता लिख ली, कहीं किसी टेस्ट में मन के नंबर नहीं आए तो कविता लिख ली। यह कविता भावों से फूटती थी। इसे लिखने से मन को आराम पहुँचता था। कलम के रहते मुझे अकेलापन नहीं लगता था। मैं स्वयं को संपूर्ण महसूस करती थी। मैं लिखने लगी थी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए। कविताएँ मेरी अभिव्यक्ति का प्रारूप थी और उस समय किसी के साथ भी उसे बाँटने का मन नहीं करता था। लगता था लोग मेरे बारे में सब जान जाएँगे, सही गलत सब। मन अंतर्मुखी हो चला था।

जब पंद्रह बरस की हुई तो एक भद्र महिला से परिचय हुआ जो अंग्रेज़ी साहित्य में पीएॅच.डी कर रही थी। वे कविताएँ तथा उपन्यास हिन्दी में भी लिखती थी। जान-पहचान के कुछ महीनों बाद सुना कि उनके पति ने एक उपन्यास लिखा है; जिस पर उन्हें कोई पुरस्कार मिला। उपन्यास प्रकाशित होने के दो माह बाद उन्होंने अपनी जान स्वयं ले ली। लोगों का कहना था कि वह उपन्यास दर असल उनका था; जिसे उनके पति ने अपने नाम से प्रकाशित करा लिया था। उनके पति के द्वारा उनके मानसिक शोषण की और भी घटनाएँ मालूम हुईं। इस घटना का गहरा आघात लगा था मुझे और इसी विषय को ज्यों का त्यों उतारा था मैंने अपनी पहली कहानी 'सत्य की सीमा' में। स्थानीय अखबार के रविवारीय अंक में उसे स्थान भी मिला और मुझे शाबाशी भी सिवाय एक पत्र के जो मुझे एक पाठिका ने लिखा। उन्होंने उस खत में मुझसे पूछा था कि पढ़ी-लिखी होने के बावजूद कहानी की नायिका ने अपने शोषण के विरुद्ध आवाज़ क्यों नहीं उठाई? उसने जीवन को समाप्त करने की जगह उससे लड़ने की कोशिश क्यों नहीं की? उन्होंने मुझसे प्रश्न किया था कि क्या आत्महत्या के अलावा उस पात्र के पास और कोई चारा न था ? उस एक पत्र ने मुझे सिखाया कि कहानी में लोग आशा ढूँढ़ते हैं। कहानी में किसी के जीवन को ज्यों का त्यों उड़ेल देना कहानी लिखने की क्षमता नहीं है। कहानी लिखने में एक सामाजिक दायित्व है। उसमें पात्रों को विकसित करना पड़ता है, कल्पना से हकीकत को मोड़ना भी पड़ता है। उसे एक सामान्य जीवन के साथ-साथ मेरी सोच की परिपक्वता की भी आवश्यकता थी। उसके द्वारा मैं अपने मस्तिष्क को एक अनजान व्यक्ति के मस्तिष्क के साथ जोड़ पाती थी।

इस रहस्योद्‌घाटन के बाद मुझे लिख पाने पर गर्व हुआ। ईश्वर की असीम अनुकम्पा का आभास हुआ। रच पाने का सुख सबसे अनूठा होता है। मैं उस सुख को भोगने के लिए लिखती हूँ, बिना लोगों से मिले मानसिक रूप से उनके साथ जुड़ने के लिए लिखती हूँ और इस समय विख्यात कवि पाब्लो नेरुदा की प्रेम पर लिखी एक कविता से प्रेरित होकर यह लिख रही हूँ कि 'मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ बिना यह जाने कि कब से करता हूँ, क्यों करता हूँ, कैसे करना चाहिए। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ; क्योंकि इसके सिवा मेरे पास और कोई रास्ता ही नहीं है।' मेरा लिखने से कुछ ऐसा ही संबंध है।

प्रश्न : *प्रवास आपकी रचनाशीलता में क्या स्थान रखता है? प्रवासवास ने आपको और आपकी सृजनात्मकता को कितना प्रभावित किया है।*

उत्तर : लिखना मेरी संवेदनशीलता को महसूस करने से जुड़ा है और गाहे-बगाहे वह उस परिवेश पर लिखता है; जहाँ के मर्म को भोगता है। चूँकि अभी अमेरिका में हूँ, तो यहाँ के अनुभवों का लेखनी पर अधिक प्रभाव है। पर मैं सिर्फ प्रवासीय मुद्‌दों पर लिखती हूँ ऐसा भी नहीं है। बहुत सी कहानियाँ हैं जो प्रवासीय पृष्ठ भूमि पर नहीं हैं। और बहुत सी ऐसी हैं; जिन्हें लिखना

चाहती हूँ पर एक जगह बंध कर रहने के कारण उन्हें भोग न पाने की अवस्था के कारण लिख नहीं पा रही पर विश्वास है कि किसी दिन वह सुबह अवश्य द्वार पर किरणों के साथ मुखरित होगी।

प्रवासवास के कारण मेरी सोच का दायरा विस्तृत हुआ है, मैंने सभी प्रकार की भिन्नताओं का आदर करना सीखा है और मूल्यों का सही-गलत होना कितना हमारी संस्कृति और हमारी भौगोलिक परिस्थितियों से जुड़ा होता है यह भी। अलग-अलग भाषाओं में, संस्कृतियों में, भिन्नताओं के होते हुए भी कितनी समानता है इस बात को जाना। परिधि के बाहर की सोच यूँ परिधि की दासी नहीं होती किन्तु प्रवासवास के द्वारा वो बड़े स्वाभाविक रूप से मेरी जीवन से जुड़ गई। उसके लिए मुझे अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ा।

हम कई रास्तों में से केवल एक को चुन पाते है; इसलिए यह पता करना कि यदि मैं प्रवासवास न करती तो रचनात्मक सक्रियता अधिक होती या कम या ज्यों की त्यों यह अनुमान लगाना मुश्किल है। लेकिन यदि जीवन दोबारा जीने का मौका मिले तो जो राह पकड़ी थी, उसे ही दोबारा पकड़ूँगी। संक्षेप में कहूँ तो मैं अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति से संतुष्ट हूँ-

'न इससे ज़्यादा, न इससे कम बस इतना ही पानी जितना है,

पीने के लिए, डूबने के लिए, साँसों के चढ़ने उतरने के लिए,

सीढ़ियों को भिगोने, धोने के लिए, ठूंठ में हरियाली बोने के लिए।'

प्रश्न : *हर लेखक की कहानी लिखने की प्रक्रिया अलग होती है। अनुशासन और मानसिकता भी भिन्न होती है। क्या आप बताएँगी कि कहानी लिखते समय आप किस मानसिकता से गुज़रती हैं?*

उत्तर : मेरी कहानी के पात्र मुझे अपना जीवन सौंपते हैं। मैं उन किरदारों को लिखते समय उन्हें जीती हूँ, उनकी तपिश को भोगती हूँ। यह कष्टदायी होता है...उदासी के कारण निजी न होते हुए भी हृदय में नैराश्य घोलते है और ईश्वर की अनुकम्पा है कि परिवार में सब मेरी इस पीर से परिचित होते है और उसे अपने ऊपर न लेकर मुझे उससे बाहर आने में मेरी सहायता करते है। जिस दर्द को भोगा नहीं उसे मैं ईमानदारी से कैसे लिख सकती हूँ? पर अभिनय और थिएटर मेरी अन्य रुचियों में से एक है जो मुझे पात्रों के जीवन को अपने जीवन से अलग करके उन्हें भोगने की दृष्टि देती है। एक चीज़ जो ईश्वर ने दिल खोल कर मुझे दी है वो है 'एम्पैथी' या संवेदना। कहानी को लिख लेने के बाद उसे मैं अपनी निष्पक्ष दृष्टि से पढ़ती हूँ कुछ समय बाद.... जब वो किरदार मेरे ज़ेहन से उतर जाता है तब। कहानी लिखने में भाव भले ही कितना भी रुलाए, अनुभव कितने ही कष्टकारी क्यों न हों, कहानी के उपरान्त वे एक भीनी सुगंध वाली मीठी सी सुखदायी खुशी में परिणति हो जाते है; जो धीरे-धीरे रिसती है और रात को सोने भी नहीं देती। एड्रेनिलिन का अपना ही एक खुमार होता है।

प्रश्न : *भिन्न- भिन्न पात्रों का जीवन जीते हुए निजता और समाज का योगदान कितना रहता है.....*

उत्तर : बहुत बार पात्रों के जीवन को जिया नहीं होता तो उसके बारे में निज अनुभव कम होते है पर ये प्रश्न तो अवश्य उठता है कि यदि मैं इस पात्र की जगह होती तो क्या करती, कैसे सोचती ? नकारात्मक चरित्र के भी नकारात्मक होने का कारण होता है ऐसा मेरा मानना है। और उसकी मरी हुई संवेदना कैसे मरी होगी यह समझना भी आवश्यक है। समाज एक ऐसा चरित्र है जो लोगों को परिवर्तित करता है और साथ ही लोगों से परिवर्तित भी होता है। कुछ कथ्य ऐसे भी होते हैं; जिन्हें मैं अपनी व्यक्तिगत सोच और सीमित अनुभवों के कारण उनसे रिलेट नहीं कर पाती, ऐसे में मैं थोड़ा पढ़ कर रिसर्च करती हूँ, संभव हुआ तो लोगों से मिलती भी हूँ। और जब उन्हें सुनती हूँ तो उनके सही और गलत से, अपने सही गलत से नहीं। दर्द केवल बीमारी की अभिव्यक्ति है, रोग के निदान के लिए उसकी जड़ को पकड़ती हूँ कभी समाज के द्वारा, कभी अपने निजी अनुभवों से, कभी उन अनुभवों की कल्पना से। शत प्रतिशत न मैं होती हूँ कहानी में और न समाज। और बिना मेरी या समाज की उपस्थिति के कहानी ज़िंदा भी नहीं हो पाती।

प्रश्न : *अब ऐसा प्रश्न आपके सम्मुख रख रही हूँ, जिसे कई रचनाकारों से इसलिए पूछा है कि जिस तरह परिचर्चा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों से कई बार नई दिशा मिल जाती है; वैसे ही शायद इस प्रश्न के भिन्न-भिन्न उत्तरों, विचारों, सोच और मंथन से कोई नई दिशा मिल जाए। स्त्री-विमर्श और स्त्री आन्दोलन इन दोनों को आप किस तरह से देखती हैं।*

उत्तर : मैं अपने आपको सभी तरह के 'विमर्शों' से अलग एक निष्पक्ष, रचनाकार बनाने की चेष्टा कर रही हूँ। स्वयं को किसी दायरे में नहीं बाँधना चाहती और अपनी लेखनी को स्वतंत्र, संवेदनशील और सत्य का प्रहरी बनाना चाहती हूँ ताकि लोग बिना जीवन जिए दूसरों के दर्द और कठिनाइयों से परिचित हो सकें और कुछ नहीं तो अपनी सहानूभूति दे सके....मैं अपनी रचनाओं के द्वारा लोगों से मिले बिना उनसे जुड़ने का मन रखती हूँ; जो उनकी सोच पर दस्तक दे सके.... स्थायी, मायूस जलराशि में एक लहर को स्फुरित कर सके। समाज की प्राचीन व्यवस्थाओं के कारण स्त्री को बहुत भीषण परिस्थितिओं से गुज़रना पड़ा है, और जब तक चेतना स्त्री के भीतर नहीं जागेगी स्त्री ऊपर नहीं उठ सकेगी। इसलिए स्त्री विमर्श और उससे जुड़े आंदोलन को नकारा तो नहीं जा सकता लेकिन एक स्त्री माँ भी होती है बेटी की भी और बेटे की भी...उसका दायित्व बनता है कि वह सामान रूप से दोनों को पोषित करे। मेरे विचार से स्त्री विमर्श को और व्यापक होना चाहिए। बहुत बार एक स्त्री ही स्त्री का ह्रास करती है। स्त्रियों के पास काम करने न करने का ऑप्शन होता है, चुनने की आज़ादी होती है, जो कि पुरुष के पास नहीं। वह यह तो सोच ही नहीं सकता कि जीवनयापन की चिंता की कतई कोई ज़रूरत नहीं, कुछ काम नहीं किया तो चलो शादी हो जाएगी। उसके लिये जीविका की खोज अनिवार्य सी होती है।

दूसरी बात- समाज में माँ और बड़ी

होती बेटी के बीच उम्र के हर पड़ाव पर एक बातचीत होती है; जिसमें स्त्री और पुरुष के परस्पर आकर्षण से संबंधित विषयों पर चेताया जाता है, उसे यह समझाया जाता है कि क्या गलत है क्या सही। लेकिन बेटे हमारे यूँ ही बड़े हो जाते है.... कौतुहल लिए, जिज्ञासा लिए.. उसे आड़े-तिरछे तरीकों से समझते हुए। 'पुरुषार्थ' की परिभाषा, उसकी घुट्टी बेटों को बचपन से पिलाई जाती है, जिसमें स्त्री के प्रति संवेदना और आदर का कोई स्थान नहीं होता। स्त्री विमर्श को सफल होने के लिए पुरुष वर्ग की विपदाओं को समझना और उसे एड्रेस करना बहुत आवश्यक है। और यह कार्य बचपन से होना चाहिए। आवश्यक है कि हम बातचीत बेटी और बेटे दोनों से करे, दोनों को सही-गलत का इल्म हो। बराबरी यह समझने से शुरू होगी कि चाहे बेटा हो या बेटी, दोनों को अपने पैरों पर खड़ा होना है और जीवनयापन के लिए दोनों को खाना बनाना आना चाहिए ताकि निर्भरता किसी भी मुद्दे पर इकतरफा न रहे।

इससे भी बढ़कर ज़रूरी है, उनमें इस अहसास को पोषित करना कि दोनों इंसान है और दोनों को एक दूसरे के प्रति संवेदना होनी चाहिए। हम स्त्री और पुरुष के परस्पर आकर्षण को इतना गलत समझते है कि बच्चों को उनके इंसान होने और विपरीत पक्ष के भी इंसान होने का सच बताना भूल जाते है। जब तक वो इस बात को समझ पाते है तब तक बहुत सी ऐसी चीज़ें हो जाती हैं; जिन्हें टाला जा सकता था।

मेरा यह भी अनुभव रहा है कि कभी पुरुष अकेला नहीं होता एक स्त्री का शोषण करने में। उसके साथ एक स्त्री अवश्य होती है जो उस शोषण के लिए या तो बढ़ावा देती है या अपनी मूक विवश सहमति। यदि स्त्री अपने को इस शोषण का भाग न बनने दे तो तो यह जानने पर कि बेटी होने वाली है, कोई किसी को गर्भ गिराने पर विवश नहीं करेगा, बहू को तंग नहीं करेगा, सास को आदर देगा, ऑफिस में यह सवाल नहीं करेगा कि बच्चे पैदा करने के लिए दो महीने की छुट्टी क्यों चाहिए होती है, बलात्कार के आंकड़े कुछ कम होंगे, और स्त्री-पुरुष के बीच संभाव बढ़ेगा। मुझे आज के आंदोलनों में इन चीज़ों की कमी नज़र आती है।

प्रश्न : *आपने एक उद्गम पत्रिका का भी संपादन किया है, उसका अनुभव कैसा रहा?*

उत्तर : जब 1995 में भारत से आई, तब तक हिन्दी में लिखना जारी रहा किन्तु उस लिखे हुए को पाठकों तक पहुँचाना बड़ा मुश्किल था। उन दिनों न्यूजीलैंड से 'भारतदर्शन' नाम की पत्रिका निकलती थी, जो काफी अनियमित थी और सी-डैक के द्वारा डिज़ाइन किये फॉण्ट मिलते थे, जिन्हें खरीदना पड़ता था। सोचा की इस शिकायत से कुंठित होने के, कि हिन्दी में कुछ भी अंतरजाल पर उपलब्ध नहीं है, क्यों न हिन्दी की स्तरीय, साहित्यिक पत्रिका का आरम्भ किया जाए? पत्रिका के प्रकाशन के लिए मुख्यत: दो प्रकार की चुनौतियाँ थी - एक तकनीकी और दूसरी स्तरीय सामग्री जुटाने की। सबसे बड़ी समस्या फॉण्ट की थी; क्योंकि फॉण्ट खरीदने की अनिवार्यता न केवल पत्रिका चलाने वालों पर थी बल्कि जो उसे पढ़ना चाहते थे या उस फॉण्ट में सामग्री भेजना चाहते थे उन पर भी थी। इसलिए हमने उद्गम फॉण्ट की रचना की ताकि पाठकों और रचना भेजने वालों पर फॉण्ट खरीदने का भार न रहे। फिर समस्या आई तरह-तरह के कम्प्यूटर पर जो विभिन्न ऑपरेटिंग सिस्टम पर चलते है और भिन्न प्रकार के कीबोर्ड जिनका लेआउट भौगोलिक परिवेश के कारण भिन्न होता है, उन सभी पर उस फॉण्ट को सही तरह से चलाने की। तकनीकी कठिनाइयों को पार करने के उपरान्त उद्गम का पहला अंक सन् 1998 में निकला और सन् 2004 तक उसका सफल सम्पादन किया। सन् 2000 तक विदेश में हिन्दी की व्यापकता के कारण बहुत से फॉण्ट निकल कर आए, किन्तु डायनामिक फॉण्ट के आने के बाद ऑपरेटिंग सिस्टम पर उनका इंस्टालेशन बहुत ही सरल हो गया। 2004 में ईश्वर की असीम अनुकम्पा से मातृत्व की ज़िम्मेदारी के मोह में उद्गम को स्थगित करना पड़ा....बहुत ही सकरात्मक अनुभव था.... बहुत से लोगों से संपर्क स्थापित हुआ। संपादकीय विवशताओं और कठिनाइयों को चखने का अवसर मिला और सबसे बड़ी बात कुछ अलग हटकर करने की खुशी का स्वाद जिह्वा पर चढ़ा..... अब देखती हूँ की संपूर्ण अंतरजाल हिन्दी की वेबसाइट से भरा पड़ा है.... कुछ नया संयोजन करके उद्गम को प्रतिस्थापित करने का मन है, बस थोड़ा समय और मिल जाए.... बच्चे कुछ और बड़े हो जाएँ।

प्रश्न : *इस प्रश्न में पाठकों की काफी रुचि होती है-आपकी उपलब्धियाँ क्या हैं? बताएँगी...*

उत्तर : कुछ भी ख़ास नहीं। ईश्वर की कृपा से सृजन की विभिन्न विधाओं में थोड़ा बहुत हस्तक्षेप है; जिसे मनचाही सराहना मिल जाती है। कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, आलेख, अभिनय, निर्देशन, संगीत तथा पेंटिंग करने का शौक है। साथ ही इंजीनियरिंग की नौकरी भी है। 'उद्गम' की स्थापना जो की विश्व की सर्व प्रथम हिन्दी की साहित्यिक मासिकाओं में से एक थी, सन् 2004 में कहानी संग्रह 'शेष फिर.... ', सन् 2014 में कविता संग्रह- 'बूँद का द्वन्द्व' और 2014 में कहानी संग्रह 'अदृश्य किनारा ' का प्रकाशन, अंग्रेज़ी और हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में भाग्य से स्थान मिलता जाता है। चार नाटकों का निर्देशन तथा मंचन कर चुकी हूँ; जिनमें से तीन मेरे लिखे हुए थे, 2014 में 'ग्लोबल वीमेन पावर' नाम की बे एरिया की संस्था से साहित्य के क्षेत्र में अवार्ड भी मिला था। बड़ों का स्नेह है और कुछ बहुत अच्छे मित्रों का साथ। अपने सृजन के माध्यम से नए-नए लोगों से जुड़ती जाती हूँ, बस इतनी सी उपलब्धि है।

प्रश्न : *नया क्या लिख रही हैं?*

उत्तर : कविताएँ नियमित लिखती हूँ। एक उपन्यास हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों में लिख रही हूँ। अपनी कहानियों का अनुवाद भी कर रही हूँ।

बेबाक बात कहने वाली अंशु जौहरी से हमेशा साहित्य पर भी खुल कर बात होती है। वे हिन्दी साहित्य को अपनी लेखनी से और समृद्ध करें। यही कामना है। उद्गम को फिर से शुरू करने हेतु शुभकामनाएँ!

****

एक कायर दास्ताँ...

हर्ष बाला शर्मा

डॉ. हर्षबाला शर्मा इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर कार्यरत हैं। उन्होंने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न अकादमिक कार्य किए है, हाल ही में (वर्ष 2014) लौजैन विश्वविद्यालय, स्विट्जरलैंड में बतौर विज़िटिंग प्रोफ़ेसर उन्हें आमंत्रित किया गया। उनकी विशेष रुचि भाषा विज्ञान और नाटक के क्षेत्र में है तथा यू.जी.सी. प्रदत्त वृहद शोध परियोजना के अंतर्गत वे नाटक के भाषा विज्ञान के समाज-मनोभाषा वैज्ञानिक विश्लेषण पर कार्य कर चुकी हैं। विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने हेतु उन्हें मैथिली शरण गुप्त सामान और सावित्री सिन्हा स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। वर्ष 2009 में डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम के हाथों उन्हें विशिष्ट शिक्षक सम्मान प्राप्त हुआ। उनकी प्रमुख पुस्तकों में भारतीय साहित्य: भाषा, मीडिया और संस्कृति, समकालीन हिन्द नाटक, साँझी सांस्कृतिक विरासत के आईने में भारतीय साहित्य तथा 21वीं शती: औपनिवेशिक मानसिकता और भाषा शामिल है।

संपर्क: सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इंद्रप्रस्थ महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल: ip.harshbala@gmail.com

ज़िन्दगी का वो दिन मैं आज भी नहीं भूलता! वो एक खूबसूरत दिन था .... बहुत ही खूबसूरत! असल में खूबसूरती तो मन की बात ही है। मन के अहसास से ही तो मौसम की खूबसूरती होती है न ! उस दिन....बस उसी दिन मैंने तय कर लिया कि ... खैर वैसे मैं तय करने वाला कौन होता हूँ। तय तो करती है किस्मत।

किसे-किससे मिलवाना है और कौन-कहाँ किसका इंतज़ार कर रहा होगा ; सब किस्मत से ही तो तय होता है ! फिर भी ... हाँ तो मैं बता रहा था कि मैंने तय कर लिया .... बिल्कुल तय ....नहीं अब पलटने का सवाल ही कहाँ था, और फिर आदमी किस बात का आदमी अगर अपनी तय की गई बात पर टिक ही न सके ! ... बस मैंने पक्का कर लिया कि उससे बात करके ही रहूँगा। ये तो संयोग ही था न !.... ट्रेन में वो बिल्कुल मेरे सामने ही बैठी थी। खुलता सा गेहुँआ रँग, खूबसूरत कँजी आँखें, खुले बाल, लहराते हुए पर क्या सादगी ! माशा अल्लाह ! मैं भूल ही नहीं सकता वो दिन !

वो दिन .... शुरूआत तो कुछ खास नहीं थी ... मतलब रोज़ की तरह कुछ उदास ही थी। घर की वही चिख-चिख.. भाईजान और आपा का झगड़ा पूरे ज़ोरों पर था। आपा शादी को तैयार ही नहीं थी और भाईजान अपने निकाह से पहले उस आफ़त को घर से निकालने की तैयारी में लगे थे। अब्बू दमपस्त थे... लाइलाज़ खाँसी से दम अब निकला तो तब निकला ! अम्मी को मेरे नाकारापन से अब कोफ़्त होने लगी थी ; ये मुझे साफ़-साफ़ दीख रहा था, नहीं तो पान का बीड़ा भर माँगने पर इतनी झल्लाहट... खुदा खैर करे ! बस मैंने तय किया कि चला जाऊँगा कहीं दूर। लौटकर नहीं आऊँगा इस ज़लालत भरे घर में ! जब जाऊँगा तो याद करेंगे ... अहमक कहीं के ! सच मानिए जनाब ... आदमी की कद्र उसके सामने रहते तो होती ही नहीं। न रहूँ तो यही अम्मी दीदे फोड़ लेगी रो-रोके !

बस तभी मैं निकल पड़ा उस उबाऊ घर से ! उँह छोड़ो ....मुझे फ़रक नहीं पड़ता 'जो सोचे मेरे बारे में तो ठीक, न सोचे तो .... सामने ही तो प्लेटफार्म था। यकीन मानिए किस्मत इंतज़ार करती है आदमी का ! वरना कहाँ तो ज़िन्दगी आवारापन और नालायकपने में ही कट जाती और कहाँ ये घट गया ! अमाँ .... ट्रेन के उस डिब्बे तक पहुँचने का सफ़र आसान न था ! मैं खुश था। अच्छा किया जो निकल गया उस दड़बे जैसे घर से ! घुटन, उमस और चिल्लम चिल्ली से भरा घर। वहाँ तो यही हाल था कि बस 'सुबह होती है शाम होती है, उम्र यूँ ही तमाम होती है' एक ही तरह की बातें, तनातनी ! मैं खुली हवा में साँस लेना चाहता था। समेट लेना चाहता था आसमाँ को बाँहो में ! खुला छोड़ देना चाहता था खुद को वादियों में। हँसना चाहता था... खिलखिलाना चाहता था और बस यहीं .. यहीं से मेरी कहानी शुरू हो गई ! फ़िल्म की कहानी नहीं है ये ! ऐसा भी न समझें कि हम दोनों ने एक दूसरे को देखा और फ़िल्म शुरू हो गई ! टिपिकल सोच है बस आप लोगों की। इँसानी रूहें सिर्फ जिस्मों के लिए ज़िन्दा नहीं रहती ! कुछ आँख और मन की राहत भी तो चाहिए उसे ! पर सच ; ऐसा हो जाता तो सचमुच मुझे दुनिया मिल जाती पर वो तो किसी किताब के किसी पन्ने के किसी हर्फ से दिलजोई कर रही थी ! उफ़ ... ये हसीन आँखे... सच कहूँ ... वफ़ा के वो सारे किस्से जो मुझे निरी गप्प के सिवा कुछ न लगते थे आज सामने आकर खड़े हो गए ... वो किसी किस्से-कहानी की शहरयार थी या इंसानी जिस्म में कोई खूबसूरत बला ; नहीं कह सकता पर मैं डूब गया उस बेपनाह हुस्न में ! मैं ताक रहा था उसे, दिल

बल्लियों उछल रहा था, प्यार के नगमें और तरानें बुन रहा था और वो....न जाने किस कमजर्फ हर्फ के भीतर डूबी थी !

हिम्मत जुटाकर उससे दो मीठे बोल बोलने का फैसला कर ही लिया मैंने ! बताना चाहता था कि उसे सामने पाकर मुझे खुद से ही 'रश्क' होने लगा था कि अचानक सुराही के पानी सी मीठी, दिल की गहराइयों में उतरती उसकी भोली मासूम आवाज़ सुनाई दी''''

'मुझे शुक्राने की नमाज़ अदा करनी है ! आपको कोई दिक्कत ?' उफ खुदा ! कहा था न मैंने किस्मत का खेल ! खुदाया ; ये तो मज़हब की भी पाबँद है। अम्मी इससे मिलकर यकीनन फख्र करेंगी मुझ पर; अपनी औलाद पर। मैं बौखला गया बस.. 'नहीं'; मुझे क्या दिक्कत होगी ! आप कीजिए नमाज़ अदा!

इतना बोल पाना भी मेरे हलक को खुश्क कर गया। वो मुस्कुराई जैसे मेरे मन के दस्ती कागज़ पर लिखा पैगाम उसने पढ़ लिया हो। अब खुदाबंद भी साथ है। वो नमाज़ पढ़ रही थी और मैं उसे ताक रहा था ... एकटक !

नमाज़ अदाकर वो मुड़ी तो जैसे मेरी चोरी पकड़ ली उसने ... पर खुदा की बरकत ....उसने एक बार न झिड़का मुझे ! बस आँखों के नूर ने उसके दिल का पैगाम भी मुझे दे दिया ! उसके मेहर के लिए शुक्राने की नमाज़ तो मुझे अदा करनी चाहिए थी !

रात ढल चुकी थी। मैं और वो दोनों अहसास की सरगोशियों में डूबे एक दूसरे को देखते रहे और मैं न जाने कब नींद के आगोश में समा गया। सपनों की दुनियाँ में आशिकी की रौनक थी, परियों और जिन्नात की दुनिया के सुनहले दरख्त थे और उसके नीचे मेरी बाँहों में मेरी कायनात थी ! बस वो और मैं ! अचानक देखा कि दो भयानक जिन्नात मेरी सब्ज़ परी को छीने लिए जा रहें हैं और बस मेरी नीदँ खुल गई। वो सामने थी ही नहीं ! खुदा ! ये कैसा कहर !

मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है ? मैं जो पाना चाहता हूँ वही पानी के बुलबुलों की तरह हाथ लगते ही टूट जाता है। सामने है तो लगता है कि हवा को भी छू सकते हैं पर हवा को कोई पकड़ पाया है क्या ? मैं सिर पकड़ कर बैठा था। कोई कुछ पूछे तो आँसुओं से भरी दास्तान सुना दूँ उसे। बस लग रहा था कि दिल निकलकर बाहर आ जाएगा या क्या पता हलक में ही अटक कर रह गया हो, इसीलिए बाहर नहीं आया ! मेरा दिल पुरज़ोर तरीके से धड़क रहा था। खुदाया ! यूँ बिना कुछ बताए वो नहीं जा सकती। ऐसी नींद और प्यार का दावा ! शर्म आ रही थी मुझे खुद पर। कैसे कहूँ कि मैं सच्चा आशिक हूँ। आशिक तो आग का दरिया पार कर जाते हैं हँसते-हँसते और मैं ...? उसे रूहें उठा ले गईं और मैं सोता ही रह गया। मैंने उसी समय तय कर लिया ...फिर से तय किया ....असल में ये मेरी आदत ही है कि मैं बार-बार ठान लेता हूँ कि मैं कुछ करके ही रहूँगा। भले ही कर न पाऊँ पर ठान लेता हूँ सो अब भी तय किया और यकीन मानिए, उसका पता चल जाता तो उसके पीछे चला जाता! सुनी होगी आपने हीर-राँझा की कहानियाँ, सोणी महिवाल के किस्से। पर अब ऐसे किस्से का जन्म होने वाला था जिसके बारे में आप सोच भी नहीं सकते !

खैर ! वो मेरा खूबसूरत दिन खत्म हो चुका था। बस अब सामान पैक करना ही था। न जाने किस मंज़िल के लिए निकला था और सारे ख्वाब राह में ही जल कर फ़ना हो गए। पर वो कहते हैं न कि आशिक की मदद खुदा भी करता है तो बस जैसे ही मेरे कदम उठे ... सामने ही एक कागज़ की पुड़िया थी ! मेरा खुदा मेरे साथ था ! आपको यकीन नहीं होता ! पर ये उतना ही सच है जितना मेरा वज़ूद ! पुड़िया पर उसका पता था !साथ में नीचे लिखा था ...लरजते हाथों से 'जल्दी आना'।

मेरे पैरों में पँख लगे थे। मैं उड़कर पहुँचना चाहता था उस हसीन परी के पास जो जाते-जाते पता छोड़ गई थी पर कुछ कहे बिना ही ...।

आज मुझे यह भी यकीन हो गया था कि फिल्मों में सब अफ़साना भर नहीं होता। मेरी जिन्दगी किसी क़िस्सागोई से कमतर है भला ? ट्रेन रुकने का इंतजार भर था बस। इतनी शिद्दत से खुदा को भी चाहा होता तो वो भी आ जाता ज़मीं पर ...

ट्रेन रुकते ही मैं वापस चल पड़ा। कयामत की तेज़ी थी मेरे पैरों में। पता समझने में कुछ वक्त लगा। अजीब अहमक लोग हैं 'जिनसे पता पूछता वो ऐसे देखता जैसे अँगार को छू दिया हो'! एक भला सा दीखने वाला आदमी मिला तो उसने बताया कि शहर के आख़िरी कोने का मुहल्ला ही मेरा पता है पर बड़ी हिकारत से देखते हुए बोला 'मियाँ ; इस मोहल्ले में ही जाना चाह रहे हो न?' दिल तो चाहा झिड़क दूँ शेखी इस अहमक की, पर मुहब्बत की ज़मीन पर कुछ बुरा करने को जी न चाहा पर दिल धड़क गया एक बार फिर ज़ोरों से ....'क्या है उस मुहल्ले में?' पूछ ही बैठा। अजीब शख्सियत से भरे लोग हैं, जवाब देने के बजाय दौड़े जा रहे हैं दूर!

जैसे-जैसे मुहल्ला करीब आता गया ; मैंने देखा कि शहर से दूर गर्द और गुबार का गोला सा उड़ा आ रहा था। मेरी कायनात... इतनी दूर वीराने में ! धूल-मिट्टी और जहालत के दीखते सँसार में ? पर मैं रुका नहीं, चलता ही गया। जो देखा वहाँ पहुँच कर उसने मेरी रूह को जमा दिया ... मेरे पाँव ज़मीन पर जम गए थे। गर्द, गंदगी, गुबार और धूल नहीं वहाँ तो चारों और ज़मीन पर रेंगते ज़मीनी कीड़े दीख रहे थे ...कोढ़ियों की इस बस्ती में दूर-दूर तक गज़ालत फैली हुई थी मक्खियाँ भिनभिना रहीं थी। कटे-गले लोगों की इस बस्ती में खड़ा मैं थरथर काँप रहा था। प्यार काफूर हो चुका था पर मैं एक बार उसे देखना चाहता था। भिखारियों और कोढ़ियों की इस बस्ती में मेरा नूर, मेरे दिल की धड़कन कैसे समा सकती थी! मैं बस देखना चाहता था एक बार खुदा की इस नाइंसाफी को ! मेरे दिल का नूर इस बस्ती में कैसे ? मक्खियाँ भिनभिना रही थी..... शरीर गल रहे थे, कोई किसी को सँभालने की हालत में न था, यकीन मानिए अपनी ज़िन्दगी की तकलीफ़ से गुज़रते हुए भी गलीज़ ज़गह के बारे में मैंने न सोचा होगा। इन लोगों का जीना भी क्योंकर है, शक होता है ! आदमियों की आदमियत में इतनी ताब क्योंकर और कैसे

आती कि इन गलीज़ ज़िन्दगियों को अपने आस-पास बर्दाश्त कर पाते। मेरी भी हिम्मत पस्त हो गई थी।आदमी कहता भर है किसी काम के खराब होने पर ''कोढ़ में खाज'' पर उसे देख भर पाना भी आदमी के बस की बात नही! कोढ़ियों के लिए हमदर्दी में रोऊँ, या सिजदा करूँ उस रहमत करीम के आगे जिसने हाथों और पैरों पर खड़े होने लायक बनाया! या फूट-फूट कर बरस जाऊँ?कुछ समझना बस में न था। बस मैं देखना चाहता था उसे एक बार ! मुझे यकीन था कि मुझे पता गलत बता दिया गया है। किसी तरह खुद को मुगालते में रखने, उस गंदगी से भरे मोहल्ले में नाक पर रूमाल रखे मैं उस दरवाज़े को खोज़ रहा था, जिसके भीतर मेरी किस्मत का पन्ना फड़क रहा था ...पता नहीं वो पन्ना हवा से उड़ जाएगा कहीं दूर या मेरे हाथ में रुकेगा भी !

मैं दरवाज़े के बाहर खड़ा था। हिम्मत करके मैंने दरवाज़ा खड़काने के लिए छुआ भर कि खुद-ब-खुद वो चरमराया सा दरवाज़ा खुल गया ... सामने ही वो सर झुकाए किसी बूढ़े के घाव साफ कर रही थी... बहते पीप और खून को साफ़ करती उसकी झुकी आँखों को मैं देखता रह गया। दरवाज़े की चरमर को सुनकर उसने आँख उठाई पर मैं उसे न देख पाया। मेरे पैर उठ नहीं रहे थे...चिपक गए थे ज़मीन पर ! तालू से चिपकी ज़ुबान खुश्क हो गई थी। उसकी आँखें मुझे देखते ही थरथरा गई थीं।

वो मुझसे पनाह माँग रही थी। उसके थरथराते लब ... कुछ कहना चाहते थे। तभी अंदर से किसी औरत के खाँसने की आवाज़ आई... 'जाना नहीं ' कहकर वो अन्दर मुड़ी तो जैसे मेरे पैर लरज उठे! कमरे में नज़र दौड़ाई तो भुखमरी टपक रही थी...कोने में उस बूढ़े के साथ उसकी हँसती तस्वीर थी...किसी भूले बिसरे ज़माने की तरह पुरानी ... पनियल ...उसकी आँखों की तरह !

मैं पूरी ताकत से दौड़ पड़ा ...मुझमें हिम्मत नहीं थी वापस मुड़कर देखने की। वो ताक रही होगी, मैं जानता था पर मैं मुड़ नहीं सकता था ....हिम्मत नहीं थी मेरी .... उसकी जनाना गंध अब कोढ़ की गलती देह में बदल गई थी ...उसका बदन भी गल कर गिर जाएगा एक दिन। मैं काँप रहा था और दौड़ रहा था... रुक न सका मिनट भर को भी !

आँखों में समाई हुई वो तस्वीर अब लापता हो चुकी थी। अब मुझे कोढ़ से गलता और गंधाता एक जिस्म दिख रहा था, जो न जाने कब तक मेरा पीछा करता रहेगा! मैं उस जिस्म की परछाईं से भी दूर होना चाहता था। रगड़-रगड़ कर पोंछना चाहता था अपने जिस्म को, कि कहीं गलती से छू लिया हो तो! उसकी जवानी और ख़ूबसूरती के बरक्स उसका एक-एक जिस्मानी हिस्सा जिसे छूने भर के लिए मेरी रूह बैचेन थी, एक-एक करके गलते हुए दीख रहे थे-वो हाथ कुछ ज़्यादा ही सफेद हो चले थे...उफ़ खुदा, मैं जिसे ख़ूबसूरती समझ रहा था..वो कहीं....नहीं खुदा मैं इतना मज़बूत नहीं हूँ....साबुन से धो देना चाहता था उन घड़ियों को जब कहीं अनजाने ही मैंने उसे .....खुदा रहम! मैं लौट गया था अब कभी उस ओर न देखने की ज़िद लिए...न, अब कोई प्यार-व्यार का ज़िक्र नहीं...सब खत्म हो गया था। किस्सागोइयों की माशूकाएँ खुदाई दरबार में ही अच्छी...मेरी कहानी बस यही तक थी।

******

हालात फिर से चल पड़े अपनी सरगोशियों में समेटे हुए इस नाशुक्रे इंसान को! मैंने भी कदम बढ़ा दिए इस ज़मीन पर फिर जीने के लिए पर बेहद नँगा पाता हूँ खुद को अपनी निगाहों में। कपड़े बदलते डरता हूँ हर घड़ी, पर मेरे उस रूप को कोई नहीं जानता। अम्मी फ़ातिमा को पाकर बहुत खुश है। मेरा नालायकपना ज़िम्मेदार बेटे और पति में तबदील हो चुका है। निकाह करके फ़ातिमा मेरे घर की ज़ीनत बन चुकी है।

फ़ातिमा ज़हीन औरत है। बेहद खूबसूरत। पर मैं उसे छू न सका। मैं शादी नहीं करना चाहता था। निकाह के नाम से ही मुझे खुद से हिकारत महसूस होने लगती थी। अपनी निगाह में नँगें होकर जीना बाखुदा सबसे बड़ी ज़िल्लत है और मैं खिदमतगार बेटा बनकर इस ज़िल्लत भरी ज़िंदगी को जी रहा था। अम्मी खुश थीं कि बेटा राह पर लौट आया पर मेरे अन्दर का आदमी मर गया था। मैं जानता था ; मैं मुहब्बत न कर सकूँगा किसी से कभी भी !

पर नाउम्मीदी की कैफियत किसे देता। अम्मी निकाह पढ़वा कर दो बरस के भीतर ही फ़ातिमा को ले आईं ! फातिमा को सच बताने की हिम्मत जुटा कर गया था उसके सामने, पर तय किया हुआ कुछ मेरे काम नहीं आता कभी। मैं कुछ न कह सका पर सुहागरात को ही उसे मेरे अन्दर के आदमी के मरने का पता चल गया। चुपचाप अच्छी पत्नी की तरह वो ज़हर पी गई पर मैं कुछ कर न सका।

मैं नाकारा पति था। फ़ातिमा ने बावफ़ा होकर कभी किसी को कुछ न बताया न कुछ पूछा ! अम्मी पोते-पोती के इंतजार में ख़फा होकर मेरी दूसरी शादी की आमद कर बैठी पर फ़ातिमा कुछ न बोली ! उसने खुदा पर सब छोड़ दिया था। उस दिन भी जब देर शाम मैं घर लौटा तो उसने मुझे ख़त पकड़ा दिया। न जाने कहाँ का कोई भूला बिसरा पता उस खत पर लिखा था। खत का मजमून एक ही लाइन का था 'जल्दी आना....' मैं थरथरा गया... आँखों के आगे वीरानी छा गई....मैं खड़ा न रह सका....सर पकड़ कर जैसे नीचे गिर गया !

न जाने कितनी देर बाद मुझे होश आया होगा ! देखा, फ़ातिमा सिरहाने बैठी पंखा झल रही है। मैं कुछ बोल न सका ...बस आँख से आँसू बह निकले। देखता हूँ कि फ़ातिमा बैग तैयार कर रही है। उसने बस इतना ही कहा ' मैं भी साथ चलूँगी।'

मुझे नहीं पता हम वहाँ कैसे पहुँचे। अस्पताल के कागज़ पर ही खत लिखा गया था। अस्पताल में पहुँचते ही डॉक्टर ने बताया कि देर हो चुकी है, अब वो नहीं रहीं। आपका इंतज़र करते-करते चली गईं। नर्स एक खत और दे गई।

ये लम्बा खत था ....

क्या कहूँ...खुदा के बन्दे, तुम्हारा नाम भी नहीं जानती पर, 'तुम आए भी .... और चले भी गए। मैं फिर भी इन तीन सालों तक तुम्हारा ही इंतज़ार करती रही। कोढ़ियों की उस बस्ती में काम करने के लिए कोई नर्स

तैयार न थी।अस्पताल वालों ने उन लोगों के बीच रहकर काम करने की चुनौती दी और मुझसे रहा न गया। अस्पताल में मदर टेरेसा की टँगी तस्वीर मुझसे सवाल करती थी और मैं इंकार न कर सकी। उन कोढ़ियों के बीच रहकर मुझे ख्याल हुआ कि एक तबके का आदमी दूसरे तबके की तकलीफ़ को भूल जाए तो आदमियत की पहचान ही न हो सके। तुम आए .... लगा हाथ बढ़ाकर रोक लूँगी तुम्हें। अम्मी-अब्बू भी उसी रोग से गए थे ... तुम्हारे साथ मिलकर बचा लूँगी कितने ही अम्मी अब्बूओं को! पर तुम्हारी नफ़रत मुझे हिला गई। कोढ़ियों की बस्ती का ढेकेदार मुझे देखा करता था .....मेरे अन्दर की औरत मर गई पर ठेकेदार के गुनाह की तस्वीर बन गया मेरा बदन! जब तक वो मुझे इस्तेमाल करता रहा .... मैं कोढ़ियों की ज़िन्दगी सँवारने में लगी रही पर न जाने कब ...ये बच्चे मेरे पेट में आ गए ... मैं जी न सकूँगी। तुम आना ज़रूर ...इन बच्चों को देखना ...शायद मेरी रूह को इसी से पनाह मिल जाए .... अल्ला हाफ़िज ....।'

मैं रो रहा था...अपनी गलीज़ आत्मा का गला घोंटना चाहता था ...बस यही था मेरे अन्दर के आदमी का जुनूनी प्यार! मैं जला दिया जाऊँ कयामत के दिन, शोलों के बीच, तो भी मेरा गुनाह कम होगा क्या? पर कितनी सुकूने-परस्त थी फ़ातिमा! फ़ातिमा ने बच्चों को गले लगा लिया। उसकी भर्राई सी आवाज़ आई ' घर चलें ....?'

और क्या कहूँ ? कहानी खत्म हो गई। कायर हूँ मैं। कोड़े बरसाओ मुझ पर। थूको मुझ पर! नफ़रत करो। मैं मुहब्बत के लायक नहीं। पर मैं आज एक खुशहाल आदमी हूँ। रिज़वाना और राहत मेरे बच्चे हैं और मुझ पर जान छिड़कते हैं। फ़ातिमा मेरे घर की ज़ीनत है। घर को जन्नत बना दिया है उसने ! टूट कर मुहब्बत करती है मुझसे! पाँच वक्त की नमाज़ पढ़ती है वो। बाखुदा, बाकायदा पाबँद हैं मज़हब की। मैं खुश हूँ ..... पर फिर क्यों मुझे नहीं भूलती वो पनियल..... टूटती..... पनाह माँगती आँखें !

***

लघुकथा

ब्रांड

डॉ. गजेन्द्र नामदेव

किटी पार्टी पूरे ज़ोरों पर थी। महँगे सौंदर्य प्रसाधनों की खुशबुएँ वातावरण को महका रहीं थीं। एक-दूसरे से अधिक सुंदर दिखने और उम्र छिपाने की होड़ थी और क्या। कई मनोरंजक खेल, खेले जा रहे थे। जीत-हार से रँगे-पुते चेहरों पर कभी हँसी कभी मायूसी छा रही थी। काफी देर हो चुकी थी। तभी हार से मायूस एक बोली- ''अब तो भूख लगी है भई। जो कुछ भी हो जल्दी बुला लो।''

मेज़बान झेंप गई। परन्तु चोट दिल पर लगी थी। ओह उसने कहने का मौका क्यों दिया और ये भी तो बड़ी भुक्खड़ है। थोड़ा सबर नहीं कर सकती थी। बनावटी मुस्कराहट चेहरे पर ओढ़ते हुए उसने कहा- ''हाँ बस मैं बोलने ही वाली थी। आपने तो मेरे मुँह की बात छीन ली। कांताबाई जल्दी से नाश्ता लगा।''

अपनी हेठी को उसने तुरंत सम्भाला और नई बात छेड़ दी। जानती है नाश्ता लगाने में देर हो सकती है- ''मिसेज वर्मा घड़ी तो बड़ी क्यूट लग रही है। कहाँ से ख़रीदी।''

''यू एस से भाई ने भेजी है। आप तो जानती हैं मैं तो बस ब्रांडेड ही पहनती हूँ सब कुछ। मेरे हब्बी को तो ऐसा-वैसा कुछ पसंद भी नहीं है।''

''भई मैं भी ब्रांडेड ही पसंद करती हूँ। ये देखो नई सैंडिल, कल ही मॉल से खरीदीं।''

''हाँ रे मैं भी ए टू ज़ेड सभी कुछ ब्रांडेड ही लेती हूँ। चीप चीज़ें तो छूने का मन भी नहीं करता।''

अजीब सा मुँह बनाकर वह बोली। भला कोई किसी से पीछे क्यों रहे। ब्रांडेड शब्द हवा में उछल-उछलकर भूख पर हावी होने की कोशिश कर रहा था। सब इठला-इठलाकर ब्रांड पर भाषण दे रहीं थीं। भूख पर अभी अर्धविराम लग गया था। हालाँकि सब एक-दूसरे की पोल जानती थीं। तभी कांताबाई नाश्ता लगाने लगी। कई तरह की डिशेज़ की महक ने चेहरों पर नई चमक ला दी। मुँह पनीले होने लगे। लेकिन दिखावा भी तो कोई चीज़ होती है। कोई पहल नहीं करना चाहता। भुक्खड़ कहलाने का तमगा भला कोई अपने सिर क्यों लेगा। अपनी हिचक छिपाते एक बोल पड़ी-

''क्यों कांताबाई तू भी ब्रांडेड पहनती है क्या।''

''अरे मैडमजी ग़रीब आदमी को क्या बिरांड। जो मिला पहन लिया। और सब जीते जी के बिरांड हैं। मरने पर तो सबके कफ़न का बिरांड एकई होता है।''

शांत भाव से कांताबाई ने नाश्ते की प्लेटें बढ़ाते हुए कहा। अब चारों तरफ चुप्पी थी। केवल प्लेटों से चम्मचें टकराने की आवाज़ें आ रहीं थीं। सबकी निगाहें नीची थीं।

***

संपर्क
(भूगोल विभाग), शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
छिंदवाड़ा (मप्र) मोबाइल 09993225244

माँ और मोबाइल

सुदर्शन वशिष्ठ

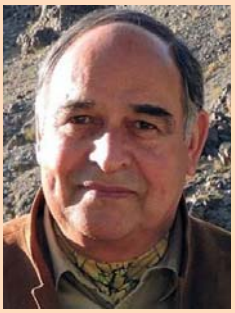

पालमपुर, हिमाचल प्रदेश के सुदर्शन वशिष्ठ की 125 से अधिक पुस्तकों का संपादन/लेखन किया है। जिसमें नौ कहानी संग्रह, चुनींदा कहानियों के पाँच संग्रह, दो लघु उपन्यास, दो नाटक, एक व्यंग्य संग्रह, चार काव्य संकलन, संस्कृति शोध तथा यात्रा पुस्तकें, हिमाचल की संस्कृति पर छः खण्ड, संपादन : दो काव्य संकलन, पाँच कहानी संग्रह। हिमाचल अकादमी तथा भाषा संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश में सेवा के दौरान लगभग सत्तर पुस्तकों का संपादन प्रकाशन। तीन सरकारी पत्रिकाओं का संपादन सुदर्शन वशिष्ट जी ने किया।
जम्मू अकादमी तथा हिमाचल अकादमी से 'आतंक' उपन्यास पुरस्कृत, साहित्य कला परिषद् दिल्ली से 'नदी और रेत'' नाटक पुरस्कृत, 2014 में ''जो देख रहा हूँ' काव्य संकलन हिमाचल अकादमी से पुरस्कृत, व्यंग्य यात्रा 2015 सम्मान। कई स्वैच्छिक संस्थाओं से साहित्य सेवा के लिए सम्मानित।
संपर्क : ''अभिनंदन'' कृष्ण निवास लोअर पंथा घाटी शिमला-171009.हि.प्र
ई-मेल
vashishthasudarshan@yahoo.com
फोन : 094180-85595 (मो) 0177-2620858 (आ)

कहानी बहुत ही ट्रेडिशनल ढंग से शुरू हुई :

''आज विकल बहुत खुश था। चीड़ वन से धीमे-धीमे हवा बह रही थी। चीड़ के पत्ते हौले-हौले हिल रहे थे। हवा ठण्डी और ख़ुशनुमा थी। कहते हैं, चीड़ के पत्तों से छन कर आती हवा टीबी के मरीज़ों के लिए बहुत फायदेमंद होती है। पिता भी टीबी के पुराने और माने हुए मरीज़ रहे हैं। विकल ने एक नज़र पिता को देखा। उन का माथा काला पड़ चुका था। हाथों की नसें पुराने पड़े रबड़ पाईप की तरह लटकी हुईं थीं। शरीर छुहारे सा सूखने लगा था। उसके पुराने नाईट सूट में वे और भी दुबले लग रहे थे। लिफाफा से कपड़ों में वे ऐसे लग रहे थे जैसे खेत में बजूका। वे एकदम झण्डे से लहराए और गिरते-गिरते बैठ गए। पल भर को लगा, आँगन के कोने में पड़े ऊँचे पत्थर पर वह खुद टाँगों में सिर दिए पंजों के बल धूप के इंतजार में उकड़ूँ बैठा है। काम निपटा माँ भी ऐसे ही धूप में पुरानी गूदड़ी सी बन पड़ जाती थी। पिता ने कमज़ोर मुर्गे की तरह गर्दन उठा धीमी आवाज़ निकालते हुए जमुहाई ली..... आँ.....विकल का भी एकाएक मुँह खुल गया..... एकदम सजग हो गया विकल। पिता ने जमुहाई ली है, उसे नहीं लेनी चाहिए.....।''

कोई भी संपादक ऐसा घिसापिटा स्टार्ट देख बिना आगे पढ़े कहानी कूड़ेदान में फैंक देगा। बल्कि संपादक तक तो पहुँच ही नहीं पाएगी। नीचे कई उप, संयुक्त, कार्यकारी संपादक होते हैं जैसे सरकार में सचिव के नीचे अवर, उप, संयुक्त, विशेष सचिव रहते हैं। उसके कथानायक के पास न लैण्ड लाईन है, न मोबाइल, न ईमेल, न कम्प्यूटर, न टीवी। हाँ, टीबी का मरीज़ ज़रूर है। आज भी खबरें उस तक अफवाहों की तरह पहुँचती हैं। फोन करने और चिट्ठी डालने उसे पाँच किलोमीटर पैदल जाना पड़ता है और उधर भारत ने पहला चन्द्रयान भेज दिया है। चलो, एक पिछड़ी हुई कहानी ही सही, प्रेमचंदयुगीन यथार्थ ही सही, लिखनी तो ज़रूर है, उसने निश्चय किया। छप भी गई तो कौन सा धमाका होगा। एकदम आई गई हो जाएगी। कोई याद नहीं रखेगा कि 'विकल' नाम से भी कोई कहानी लिखता रहा है। साथी भी हँसते थे, इस ज़माने में कोई कथा कहानी पूछता सुनता है क्या! इस सारी उहापोह के बीच उसने लिखना शुरू किया :

पिता वैसे बेऐब थे। तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट न पीते हुए भी उन्हें टीबी हो गया। कोई कहते, माँ से लगा। माँ के खानदान में यह बीमारी थी। माँ को उन्होंने अंत तक अपने से दूर नहीं किया। पिता में कुछ आदतें थीं जिन्हें बुरी कहा जा सकता है। मसलन वे दिन में भी सोए रहते। बहुत सुस्त और धीमी चाल से चलते। हौले-हौले बोलते जिससे दूसरा सुन नहीं सकता। या सुन कर भी अनसुना करता। दुकान से सीधे घर और घर से सीधे दुकान। किसी बात पर किसी को कुछ नहीं कहते। बहुत सी बातें, बहुत से काम वे टालते चले जाते। बहुत बार कबूतर की तरह आँखें बंद कर लेते आदि आदि।

वह बिल्कुल अलग बनना चाहता था। तड़के उठ जाता। रोज़ कसरत करता। कभी-कभी दो बार भी नहाता। दिन में कभी नहीं सोता। सदा साफ सुथरे और प्रैस किए कपड़े पहनता। जूते चमकाने के लिए जेब में रूमाल से अलग एक कपड़ा रखता। ज़रूरत न होने पर भी तेज़ चाल चलता जैसे नेता लोग टीवी में चलते हैं। ज़ोर-ज़ोर से बोलता चाहे बोलना ज़रूरी न हो। पिता की आदतें उसने चुनौती की तरह लीं। सब से बड़ी चुनौती थी चुस्त, दरूस्त, तंदरूस्त रहे।

भाग-दौड़ से एक रात का समय निकाल एकदम घर गया तो पिता सामान्य लगे। बुखार नहीं था, खाँसी भी कम थी। कमज़ोर तो पहले से ही थे। चाची कभी-कभी उन की थाली में खाना डाल पकड़ा देती। चाचा का भरा पूरा परिवार था, बेटा बहू, पोते पोतियाँ। घर में बच्चों की किलकारियाँ गूँजतीं हालाँकि पीछे कोई नहीं आता। पिता का कमरा पिछवाड़े की

ओर घर से जुड़ा हुआ होते हुए भी बिल्कुल अलग था। पिता ने यही कमरा लिया जिसमें वे पहले से रहा करते थे। मुख्य घर का आँगन आगे की ओर था, जहाँ सूरज उगता था। पीछे की ओर नाला था और पार चीड़ वन। कमरा अलग होते हुए भी घर में बोलने, बच्चों के हँसने रोने की आवाज़ें सुनाई पड़तीं जिससे लगता पूरे परिवार के बीच रह रहे हैं।

कम्पनी वाले एक पल भी टिकने नहीं देते थे। सरकारी दफ़्तरों की तरह सुबह दस बजे से शाम पाँच बजे तके की ड्यूटी नहीं थी। वहाँ तो सुबह हाज़री लगाना ज़रूरी होता है बस, दिन भर इधर-उधर घूमते रहो। यहाँ न हाज़री लगाने का नियम था, न छुट्टी का। बाबजूद इसके ऐसा अदृश्य शिकंजा था कि वह किसी भी समय अपने को ड्यूटी से अलग नहीं कर सकता था। कम्पनी, मोबाइल का एक हज़ार रूपया महीना देती थी जिसके एवज़ में सुबह छः बजे से रात ग्यारह बजे तक मोबाइल से हाज़री लगती। एकदम फोन आता -''कहाँ हो इस समय....'',''.... कितने ऑर्डर मिले'',''.....तुरंत सेक्टर सेंतालीस पहुँच शो रूम में बात करो'' आदि आदि। यदि मिस कॉल आने पर फोन नहीं किया तो तुरंत एक्सप्लेनेशन... कॉल बैक क्यों नहीं किया। जैसे मोबाइल नहीं, 'पेस मेकर' लगा दिया हो।

मोबाइल उसे माँ जैसा लगता। एकदम अपना और करीब, जिसके सिरहाने सिर रख कर सोया जाता, जिसे हर पल अपने दिल के करीब रखा जाता। जिसकी हर बात सुनी और मानी जाती। माँ के समय मोबाइल नहीं थे।

मोबाइल की अपनी अलग भाषा है। ट्रेनिंग में मोबाइल भाषा सिखाई गई थी। बिल्कुल शॉर्ट में लिखो। ''सीयू'' को एबीसी वाला 'सी' और वाएओयू की जगह केवल 'यू' लगाओ। तुरंत मैसेज करो। तुरंत फोन उठाओ। मिस कॉल का अर्थ समझो। वह खुद भी मोबाइल हो गया था। यहाँ अब हर कोई मोबाइल था। आज बच्चे से बूढ़े तक, आतंकवाद से बिजनेस तक मोबाइल ज़रूरी है। उसे स्कूटर चलाना नहीं आता था। कोई भी वाहन चलाना यहाँ पहली शर्त थी। कन्वेएंस के बिना गुज़ारा नहीं, जल्दी सीखो। उसे लोकल से आने-जाने में बड़ा समय लग जाता। एक साथी ने यहीं स्कूटर सीखा। एक बार वह भीड़ में बस के पिछले भाग से टकरा गया और छः हफ्ते अस्पताल प्लास्टर लगा पड़ा रहा।

टीवी, कम्प्यूटर से ले कर वाशिंग मशीन, एक्वा गार्ड, वैक्यूम क्लीनर तक का सामान था इस कम्पनी के पास। वैसे था कुछ भी नहीं, ऑर्डर मिलने पर अरेंज कर दिया जाता। वह तीन साल से मैनेजर बनने का सपना संजोए लगातार भाग रहा था। पैदल चलने का अभ्यास था। अभी पर्क्स के नाम पर लगभग छः हज़ार महीना और कहने को एक लाख का पैकेज।

बड़ी जद्दोजहद के बाद तीन लड़कों ने शहर के अंतिम छोर पर एक बरसाती ली। इस शहर में बेचुलर को कमरा मिलना बहुत कठिन था। मिल भी जाए तो इतना किराया कौन निकाले। मुख्य सेक्टरों से दूर पचासवें सेक्टर में किराए कम थे। कम यानी पाँच हज़ार में एक बरसाती, बिजली पानी अलग। तीसरी मंज़िल में छत पर एक कमरा और दूसरी ओर बाथ रूम। पानी कभी चढ़ता, कभी ग्राउंड फ्लोर से मकान मालिक से बरामदे में लगे नल से ढोना पड़ता। बरसाती गर्मियों में भट्ठी की तरह तप जाती। पंखा, जैसे गर्म हवा छोड़ने के लिए लटका था। बरसात में बड़े-बड़े मच्छर धावा बोलते। ज़रा सी सिर दर्द बुखार हो जाए तो डर लग जाता, कहीं डेंगू तो नहीं।

एक रूम मेट कॉल सेंटर में था, जो रात साढ़े दस बजे जाता और सुबह छः बजे लौटता, जब वे उठ रहे होते। जब यहाँ रात होती है तो विदेशों में दिन होता है, इसलिए कारोबार करने यहाँ भी दिन करना पड़ता है। सारी डील्ज रात को होती हैं। वह आते ही कान में रूई की बड्ज घुसा फर्श पर दरी बिछा निढाल पड़ जाता और ऐसे खुर्राटें मारता कि बेहोश पड़ा हो। ग्यारह बजे तक वह बेसुध पड़ा रहता। वे दरवाज़ा बंद कर दो बाल्टी पानी और नाश्ता रख जाते। उस का जीवन उल्टा घूम रहा था। दूसरा लड़का शॉपिंग माल में था। उसे आठ बजे निकलना होता था। यह एक बहुत बड़ा शॉपिंग माल था जिसमें रेडीमेड, शूज, राशन, फल सब्जियाँ सब कुछ एक साथ उपलब्ध था। लोग बड़े चाव से ट्राली उठाते और मनपंसद चीज़ें डालते जाते। बहुत साफ सुथरा, ट्रांस्पेरेंट पैकेटों में रंगीन सामान। चिड़िया का दूध भी वहाँ तुम पैकेट में ले सकते हो, वह हँसता। विकल कभी उसके साथ, कभी छः बजे ही निकल जाता।

विकल ने जब तक गाँव के पास के स्कूल से प्लस टू पास किया, सरकारी नौकरियाँ बंद हो चुकी थीं। प्लस टू वैसे भी अब कोई क्वालिफिकेशन नहीं रही थी, अतः बेकार रहने की जगह बी.ए. करने तक तो सरकार के द्वार बिल्कुल बंद हो गए। अव्वल तो कोई नौकरी निकलती ही नहीं, यदि निकले भी तो एक पोस्ट के लिए हज़ारों केंडीडेट। अपने लोगों को रखने के लिए रिटन टेस्ट और फिर इंटरव्यू जैसे साधन निकाले गए थे जिनमें फालतू के लोग कभी पास ही नहीं होते। जो रिटायर हो रहे थे, सरकार उन पोस्टों को खतम कर रही थी। यह तो शुक्र हुआ कुछ कम्पनियों ने देश के कोने-कोने में डेरे डाल लिए। काम तो दिन रात लेते हैं, कम से कम जॉब तो है। हाँ, नौकरी को अब जॉब कहते हैं। लोगों को बताने के लिए अच्छा है... एक रेप्यूटड कम्पनी में जॉब करता है। दो लाख रुपये का पैकेज है। पहले बैंगलोर में था, अब गुड़गाँव में है या अब नोएडा में है। हालाँकि इस जॉब की कोई गारंटी नहीं है। जब मर्ज़ी आई रात को ही फोन कर दिया जाता है, सुबह आ कर अपनी पे ले जाओ। कोई शिकायत नहीं, शिकवा नहीं, फरियाद नहीं। कम्पनी के छोटे से छोटे बॉस से भी आपको बाहर बैठे गार्ड मिलने नहीं देंगे। आप की पहुँच बस अगले सीनियर से होती है, जो आप की तरह जॉब पर है।

दादा छोटे कद के थे। घर में छोटी सी चारपाई पर आराम से ज़िंदगी गुज़ारी। ज़मीन से दाने आ जाते थे। पिता थोड़े लम्बे हुए। ज़मीनें मुजारों को चली गईं। पास के बाज़ार में मुनीमी की और धीरे-धीरे बाज़ार आते-जाते ज़िंदगी बसर की। वह और भी लम्बा हुआ। कम्पनी का बैग उठाए चलता तो

लगता खम्बे पर चमगादड़ लटका रखा है।

कभी कोई ग्राहक आराम से बात कर ले तो उससे बार-बार फोन पर बात की जाती है। कई तो फोन उठाते ही नहीं। कुछ उठाते तो पहले बड़ी नर्मी से हैलो करते। जब पता चलता, यह प्रोडक्ट बेचने के लिए कॉल कर रहा है तो हर कुछ बोलते हुए तुरंत काट देते। आजकल इतनी कम्पनियाँ है, इतने प्रोडक्ट हैं। अच्छा होने पर भी अपना प्रोडक्ट बेचना आसान नहीं रहा।

पहले उसे फोन पर बात करने की ट्रेनिंग दी गई थी। बस फोन मिलाओ और हैलो, गुड मॉनिंग के बाद शुरू हो जाओ। जितनी जल्दी हो सके अपनी बात पूरी करो। जैसे टीवी में रिपोर्टर तेज़ी से बोलते हैं या ऐसे लगना चाहिए कि कम्प्यूटर में भरी आवाज़ बोल रही है या जैसे मोबाइल कम्पनियाँ,लोन देने वाली कम्पनियाँ एक रिकॉर्डिड आवाज़ रिंग टोन के बाद सुना डालती हैं। आप हैरान परेशान रह जाते हैं। आप को अकसर लाखों लोगों में लोन देने के लिए चुन लिया जाता है। आप को लाखों रीडरों में ईनाम के लिए चुन लिया जाता है। आप को लाखोंलाख में पुरस्कार के लिए चुन लिया जाता है। उसने भी ऐसी ट्रेनिंग ली थी शहर में। तीन महीने के तीस हज़ार लिए थे और वादा था कि जॉब पक्की। गाँव से तीस किलोमीटर रोज़ आया जाया करता था। ट्रेनिंग कॉल सेंटर की थी। अंग्रेज़ी अच्छी नहीं थी अत: कॉल सेंटर में तो नहीं लगा, इस कम्पनी में फंस गया। उसे कम्पनी में 'एग्जीक्यूटिव' कहते हैं। बहुत ही सुंदर सा कार्ड छपवा कर दिया है कम्पनी ने। कपड़े तो जैसे-तैसे थे ही, दो टाईयाँ फुटपाथ से बीस-बीस रुपये में खरीद लीं।

वे तीनों हर समय हड़बड़ी की हालत में लगभग दौड़ते हुए जाते और दौड़ते हुए ही वापिस आते। उन की आँखें लाल रहतीं। बाल अस्त व्यस्त। कपड़े भी सलीके के नहीं। हाँ, उन्हें टाई ज़रूर पहननी पड़ती जिसे किसी तरह फंदे की तरह गले में फंसा लेते जो वापसी पर ढीली हो नीचे लटक जाती।

उन के पास किसी सुन्दर लड़की की ओर देखने का वक्त नहीं था। उन्हें किसी के सपने नहीं आते। आसपास के लोग, बिल्डिंग वाले सभ्य परिवार उन्हें शक की निगाह से देखते..... ये छोकरे क्या करते हैं। कहाँ जाते हैं। दिन भर कहाँ रहते हैं, रातों का क्यों लेट आते हैं या कभी आते ही नहीं। कहीं ड्रग्ज़ तो नहीं लेते या कोई ऐसा वैसा काम तो नहीं करते। या कॉल बॉय तो नहीं। कोई उनसे बात नहीं करता हालाँकि वे, जो भी सीढ़ियों में मिले, उसे चलते चलते विश करते हैं। बरसाती गर्मियों में अत्यधिक गर्म और सर्दियों में बेहद ठण्डी रहती, उनके शरीर का तापमान हमेशा एक सा रहता।

शुरू में उसे फोन पर ग्राहक पटाने का काम दिया गया। वह दिन भर बैठा हुआ डायरेक्टरी ले कर फोन घुमाता रहता। लोग उससे अजीब-अजीब बातें करते। कभी गलती से वही नम्बर दोबारा लग जाए तो वह खाने को पड़ जाता। कानों से बुरा सुनने पर भी हँसते रहने का अभ्यास था सब को। एसी में बैठे फोन घुमाते रहो, पॉजिटिव जबाब आने पर नोट करो जहाँ फील्ड के लोग फट पहुँच जाते। महीने बाद उसे फील्ड में भेज दिया गया।

बड़े-बड़े सेक्टरों में कोठियों के द्वार कोई नहीं खोलता। ज़्यादातर में गेट की पट्टी पर 'कुत्तों से सावधान' लिखा रहता। कई शौकीनों ने इतनी गर्मी में भी बाहर चीड़ के बौने पेड़ उगा रखे थे। उन जैसे लोगों को चोर, बदमाश या आतंकवादी भी समझा जाता। गेट के अंदर से बात करने के बाद झाड़ और डाँट फटकार के बाद उन्हें वापिस कर दिया जाता। हाँ, लो इनकम के तिमंजिले फ्लेटों में जाने पर कोई न कोई द्वार खोल देता। खासकर जब मर्द दिन में घर से बाहर होते, कोई मेहरबान महिला बात सुनती, सामान देखती और ठण्डा पानी पिलाती। या कोई पति से चोरी से कुछ ले भी लेती। हमेशा लगातार बोलते हुए अंत में डिस्काउंट पर बात खतम होती..... बस इस महीने के अंत तक है डिकाउंट, तीन साल की वारंटी, जब मर्ज़ी फोन से बुला लो, हमारी कम्पनी जैसी सर्विस किसी और के पास नहीं।

पिछले दिन वह अपने एक जूनियर को साथ ले एक फ्लेट में गया था। जूनियर को साथ ले उसे डीलिंग का तरीका सिखाया जाता है। जूनियर से ज़्यादा बोलना और दूसरे को इम्प्रेस करना ज़रूरी है।

सुगन्धा अपार्टमेंट्स में तीसरी मंज़िल में पार्टी थी। नए- नए अपर्टमेंट्स बने थे, इसलिए नया सामान तो चाहिए ही होता है। पिछले दिन वह यहाँ आया था। सीढ़ियाँ चढ़ कर साँस सयंत करते हुए उसने बड़े आत्मविश्वास से बैल बजाई। कोई नहीं आया। अब कुछ डरते हुए दूसरी बार बेल बजाई। जब कोई नहीं अया तो तीसरी बार बैल पर उँगली रखी जैसे करंट लग जाएगा। तीसरी बार बैल बजने पर कुछ आहट हुई और एक सज्जन दरवाज़े से झाँके।.... आज तो साहब घर पर ही हैं... वह एकाएक झिझक गया। दरवाज़े से झाँकते चेहरे पर उत्साह और उत्सुकता थी। जैसे ही उसने परिचय दिया उनके माथे की त्यौरियाँ चढ़ गईं। लगा, यदि पास में पत्थर होता तो उस पर दे मारते : '' नहीं लेना है भई।'' उन्होंने सिर झटका। '' सर आजकल स्पेशियल ऑफर है। डिस्काउंट इसी महीने है। वारंटी भी है। आजकल यही एक्वा गार्ड बिक रहे हैं। मैडम को भी दिखाया है।'' '' नहीं भई नहीं,आज नहीं।'' उन्होंने धड़ाम् से दरवाज़ा बंद दिया। यदि वह जल्दी से हाथ न हटाता तो दरवाज़े में उँगली आ जाती।

वह रोने को हो आया। अपने जूनियर को इम्प्रेस करना चाहता था, यह तो उलटा हो गया..... बहुत बदतमीज़ आदमी होते हैं ये साले.... मन भर की गाली देने को हुआ विकल। फिर एकाएक सयंत हो कर बोला-'' देखो, कह रहे हैं न आज नहीं... शायद बिज़ी होंगे। कल फिर आना चाहिए।''

वे नीचे उतर आए। सड़क में रेहड़ी वाला मौस्समी का जूस बेच रहा था। उसने बीस के दो गिलास बनाने को कहा।..... इससे तो रेहड़ी में जूस, फल या सब्जियाँ बेचना ही अच्छा है... उसने मन नही मन सोचा और टाई की गाँठ गले में ज़ोर से कसी।.... मैं भी तो रेहड़ी वाला ही हूँ, बस एक टाई लगा रखी है बीस रुपये की। जूस पी कर वह एकदम हल्का हो गया।

तीन साल में ही वह शहर के लम्बे चौड़े भूगोल से, अधिकांश अपार्टमेंट्स से वाकिफ हो गया था। बहुत सी कोठियों, फ्लेटों के साहब, मेम साहब को वह पहचानता था। बहुत से ऑर्डर देने वालों को जानता था। सैंकड़ों फोन नंबर उसके मोबाइल और डायरी में थे। उसे कोई नहीं जानता।

कई बार हैरानी होती विकल को। कितने ही ज़रूरतमंद शो रूमों में आने पर लाखों का सामान ले जाते। दुकान दर दुकान घूमते। कई फोन से ही ऑर्डर दे डालते। कई बार लाख टक्करें मारने पर भी एक खरीददार नहीं मिलता।

पहले दुकानदार ग्राहक को आवाज़ लगा कर बुलाते थे। पुराने बाज़ारों में से गुज़रने पर दुकानदार आवाज़ें लगाते। दुकानों में चूहे इधर-उधर उछलते रहते। चूहों के पेशाब से धुली, मींगणों भरी दालें मिलतीं; जिन्हें छाँट-छाँट करआँखें दुखने लगतीं। पिता बाज़ार से चुपचाप बिना कुछ लिए खाली हाथ लटकाए आ जाते। माँ के नाराज़ होने पर वे सहगल की गाई ग़ज़ल की दो पंक्तियाँ गुनगुना देते-

''दुनिया में हूँ दुनिया का तलबग़ार नहीं हूँ।

बाज़ार से गुज़रा हूँ खरीददार नहीं हूँ।''

पिता आँगन से उठे तो पाजामे में लिफाफे सी हवा भर गई। वे एकाएक डोले जैसे चक्कर आ गया हो। फिर संभल कर पीछे मुड़े और उसे अपलक देखने लगे। वह सहम सा गया। इधर-उधर नज़रें टालता हुआ खँखार कर बोला- '' मुझे जाना होगा.....।''

पिता ने न हाँ की, न न की। न ही कोई प्रतिक्रिया की। पुन: वहीं बैठ गए- '' चाय पी कर जाओ'', उन्होंने परे देखते हुए ही कहा। वह समझ गया कि वे खुद चाय पीना चाहते हैं।

भीतर जा कर चाय का हैंडल वाला बरतन उठाया जिस का हैंडल बुरी तरह हिल गया था और जैसे अलग होने को था। बरतन में चाय के अर्क की परतें जमी हुईं थीं। रसोई में सभी बरतन पीले पड़ चुके थे। मरद कितनी सफाई रख सकता है, पिता कहते। माँ के समय बरतन चमचम करते। माँ राख से माँज- माँज कर सफाई करती थी। बीमार रहने पर भी अंत तक रसोई में सफाई रखी। बिस्तर पकड़ने पर बैठे-बैठे बरतन माँजती, खाना पकाती। पिता बाज़ार में मुनीमगिरी करते और देर से घर लौटते। माँ से बात करने वाला कोई नहीं होता। आसपास के लोगों, सगे सम्बन्धियों ने आना कम कर दिया था।

यह वही कमरा है जहाँ माँ रहती थी। अभी तक ताक में माँ के देवताओं के फोटो रखे हैं। उन पर धूल जम गई है। एक छोटी गुटका रामायण में रंगीन चित्र थे जिसे वह साथियों को बताया करता। तब सारा घर अपना था। सूरज भी उगते ही घर में झाँकता। जब वह दस बारह बरस का रहा होगा, माँ को एक बहुत ही सुंदर गोल मटोल बच्चा हुआ था, जो कुछ ही महीनों के बाद गुज़र गया। प्रसव के बाद माँ को ताप टिक गया जो अंत तक नहीं गया।

माँ ने ताप धूप की तरह सेंका। घर में ताप अदृश्य भूत की तरह घुसा जिससे माँ धुआँ- धुआँ हो गई।

यह वही कमरा है जहाँ माँ का दर्द परिंदे सुनते थे। माँ खाँसी रोक कराहती हुई चिड़िया, कौओं से बात करती। गाँवके लोग भीतर नहीं आते। बाहर बरामदे में बैठ कर या खड़े हो कर बात करते। कुछ तो माँ के हाथ का हुक्का, पानी तक नहीं पीते। पहले वह भेड़ों, गायों से बात करती थी। जब कमज़ोर पड़ी तो ढोर डंगर बिक गए। तब से छत के टूटे सलेटों पर, आम अमरूद पर, पास के बाँस के झुरमुट पर बैठे परिंदे उससे बात करते।

सच, माँ काग भाषा जानती थी। जब गोल मटोल बच्चा बीमार हुआ तो माँ को कौए ने बता दिया था कि वह बचेगा नहीं। कौआ बुरा बोल-बोल रहा था। माँ बार-बार उड़ाती, वह फिर छत पर बैठ गले के बहुत भीतर से जैसे बहुत ज़ोर लगा कर आवाज़ें निकालता। इन आवाज़ों को सुन कर एक हफ्ता पहले ही माँ ने कहना शुरू कर दिया था। ठीक सात दिन बाद बच्चा चल बसा।

माँ के मरने से पहले कोई काग भाषा नहीं समझ पाया। कौआ तब भी गले के भीतर से आवाज़ निकाल बुरा बोलता रहा। तब उसे उड़ाने वाला कोई न था। माँ के मरने पर गाँव वाले आँगन में दूर-दूर काले पट्टू ओढ़े पंजों के बल बैठ गए थे। किसी ने आँगन के बीचों-बीच तुलसी के साथ आग जला दी जहाँ माँ रोज़ रात दीपक जलाया करती थी। जिसकी लौ उसे बरसात के बाद की अँधेरी रातों में बाहर निकलने पर सहारा देती और वह निडर हो पिछवाड़े तक चला जाता। माँ का बिस्तर उसके साथ ही जला दिया गया। जिस तसले में माँ राख डाल थूकती थी, वह दूर जंगल में फैंका गया। भीतर आने से औरतें कतरा रहीं थीं। एक बुढ़िया ने माँ को जैसे-तैसे ढका लपेटा और विदा किया। गाँव वाले आग दिखा तुरंत ही लौट आए। ऐसे मरीजों का धुआँ नहीं लिया जाता। बाद में घर की दीवारों पर कभी माँ के हाथों पोती मिट्टी उखाड़ दी गई। पूरे घर में गूँतर, गंगाजल छिड़क नई मिट्टी पुतवाई गई। माँ के कपड़े भी कहीं दूर फिंकवा दिए। पुराने ट्रंक, बक्से धो डाले। जैसे माँ की हर याद मिटा देने की कोशिश की गई फिर भी माँ घर में कई दिन तक कराहती रही। वह रात-रात को जाग कर सुनता, माँ खाँस रही है... रसोई में बरतन इधर-उधर रख रही है...पिता को चाय दे रही है... बच्चे को लोरी सुना सुला रही है...फिर खाँस रही है....।

उसे सलाह दी गई कि घर छोड़ कर कहीं दूर निकल जाए। ऐसे रोग ढूँढ़-ढूँढ़ कर पकड़ते हैं।

धीरे धीरे सब सामान्य होता गया। अब तक अंग्रेज़ी दवाईयाँ भी आ गईं थीं। पिता कुछ महीने सेनोटोरियम में रहे। सेनोटोरियम में सेवा और उपचार से वे बच गए।

विकल ने पिता को चाय पकड़ाई तो कौआ छत पर बैठ उसी तरह गले के गहरे के आवाज़ें निकालने लगा। उसने पत्थर उठा कर छत पर दे मारा जो आवाज़ करता हुआ दूसरी ओर आँगन में जा गिरा।

पिता से कुछ भी पूछने की हिम्मत नहीं हुई उसे। सब ठीक-ठाक है.... मानता और सोचता वापिस आ गया विकल। आज उसमें सुगन्धा अपार्टमेट जाने की हिम्मत नहीं थी। जूनियर को फोन कर दिया कि एक बार ट्राई

कर ले।

शाम को वह रूम मेट से कुछ नहीं बोला। उसने पूछा भी :''क्या पैकेट मिला!'' ''पता नहीं, पूछा नहीं'' उसने टाल दिया।

दरअसल पिता की चिट्ठी आई थी। पिता ने डाक विभाग का पुराना रजिस्टर्ड पत्र भेजा था जिसमें केवल एक ही कागज़ था। रजिस्टर्ड पत्र में पता किसी और के हाथ का लिखा हुआ था। भीतर के कागज़ में पिता की लिखावट थी। लिखा था :

प्रिय विकल,

तुम्हारा पत्र मिला।

यथापूर्व मैं जब सारा कार्य समाप्त करके जा रहा था तो वनखण्डी पहुँचने पर उस जंगल में जा रहा था तो पीछे से एक बस आ रही थी। उसी क्षण अचानक आँधी और ओलों के कारण भयंकर तूफान आ गया। मैं बस में नहीं चढ़ पाया।

दूसरे दिन मैं बड़े सवेरे बिस्तर से उठ कर जंगल में गया और उस स्थान पर पहुँचा तो वहाँ कुछ न मिला।

तीसरे दिन फिर उसी स्थान पर देखने गया तो वहाँ कुछ न मिला। अब मैं थके हुए सिपाही की तरह बैठा हूँ और तुम्हें सूचित कर रहा हूँ।

तुम्हारा शुभचिंतक, बद्रीप्रसाद

अब पत्र कौन लिखता है! वह भी रजिस्टर्ड। पिता को मोबाइल नम्बर भी लिखवाया था। एक दो बार उन्होंने फोन किया भी। एक बार तो किसी और ने फोन मिलाया : ''विकल बोल रहे हो... लो अपने पिता से बात करो। इन्हें अकेले कहाँ भेज देते हो इन से तो चला भी नहीं जा रहा..।'' जब उसने बात की तो जैसे पिता को कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। वह जोर-जोर से पूछ रहा था क्या पैसे मिल गए हैं तो पिता कुछ और ही जबाब दे रहे थे। आख़िर उसने फोन करने वाले को कहा था कि वह पूछ क्या पैसे मिल गए हैं... उसने कुछ बात की और पुन: झला कर उसे डाँट दिया : ऐसे बुजुर्गों को कहाँ भेज देते हो भाई, ख्याल रखो।

एक पत्र पहले आया था। वह भी रजिस्टर्ड था। लिखा था-

''कौआ रोज़ बोल रहा था, तुम आ रहे हो। तीन दिन लगातार बोलता रहा। तुम नहीं आए तो मैं तुम्हें मिलने गया। तुम्हें बहुत ढूँढ़ा, तुम नहीं मिले। एक रात बस स्टैण्ड पर ही काटी। रिक्शे वाला न जाने मुझे कहाँ- कहाँ घुमाता रहा। कई कम्पनियों के बोर्ड देखे --रिलायंस, टाटा, बजाज, एयरटेल, बोडाफोन, स्पाइस, एल.जी.। तुम कहीं भी अंदर जाते या बाहर निकलते नहीं दिखे। तुम्हारा पता मुझसे कहीं खो गया था....पैसे ख़तम हो रहे थे, हार कर मैं रात की बस से वापिस आ गया।''

पिता आए होंगे, वह सोचता रहा। दूसरे पत्र ने तो उसे विचलित कर दिया। पिता यह क्या लिख रहे हैं। वह घबरा गया। एकाध कस्टम निपटा, अपना मोबाइल स्विच ऑफ कर घर की बस पकड़ ली।

पिता जंगल में क्या ढूँढ़ने गए होंगे, वह सोचता रहा। रात ठीक से नींद नहीं आई। पैकेट तो उसने कोई नहीं भेजा। और यदि भेजा भी होता तो डाक से भेजता,किसी के हाथ भेजता। उसे जंगल में ढूँढ़ने की क्या ज़रूरत.... रात पिता उसे सपने में दिखे। जैसे वह एक मित्र के घर के बाहर खड़ा उससे बात कर रहा था, पिता उसके घर से बाहर निकले। कमज़ोर, मगर तेजस्वी दिख रहे थे। उन्होंने भगवाँ वस्त्र पहन रखे थे, माथे पर तिलक। हँसते हुए पिता ने कुछ बातें कीं जो याद नहीं रहीं.... शायद कहा, यह मेरा बेटा है, नहीं जानते! अंत में कहा, मैं तुम्हारे पैर छूना चाहता हूँ..... पिता भी कभी पुत्र के पैर छूते हैं...यह क्या कह रहें हैं आप.....। चलने पर लगा, पिता उसके पैर छू रहे हैं।.... जब जागा तो पसीने से लतपथ था। किसी को सपने में हँसते हुए देखना बुरा होता है, माँ कहती थी।

आधा जागता, आधा नींद में वह सोचता रहा। कभी लगता कॉल सेंटर वाला लड़का दरवाज़ा खटखटा रहा है। वह लौट आया है। उसे कम्पनी ने निकाल दिया है। कभी लगता, जंगल में घूम रहा है। चीड़ के पत्ते गर्मियों में नीचे गिर जाते हैं तो एक चादर सी बिछ जाती है जिस पर चल नहीं सकते। एकदम पाँव फिसलते हैं। ऐसे में जब बारिश हो तो एक खुश्बू उड़ती है जो पूरे जंगल में फैल कर घर तक पहुँचती है। परीक्षा के दिनों वह किताब ले जंगल में पढ़ने जाया करता था और चीड़ के टेढ़े पेड़ पर बैठ घण्टों पढ़ता रहता। रात को जब चाँदनी हो, जंगल में साफ-साफ दिखलाई पड़ता। कई बार दिखता, कई बार नहीं दिखता।

सुबह ब्रेड बटर खाते हुए रूममेट ने फिर पूछा-'' वह पैकेट मिल गया!''

''नहीं यार। मैं भूल गया....अब क्या पूछना'' उसने टालते हुए कहा।

''तुमने ही मुझे बताया था कि तुम पुराने जूते, पुराने पेंट कमीज़, चाँदनी चौक से खरीदे रैग्ज़ और बहुत सारा सामान पिता को घर में न दे कर जंगल में बड़े पत्थर के नीचे छोड़ आए हो।''

''मैंने कहा था.....!''

''हाँ, हाँ। वही बड़ा पत्थर जिसके नीचे सर्दियों में गद्दी लोग अपनी भेड़ बकरियों के साथ पनाह लेते। जिस की गुफ़ा की छत में अभी भी धुएँ के काले निशान हैं। नीचे चूल्हे के तीन पत्थर काले हुए पड़े हैं। और जिसके ऊपर बैठ पिता तुम्हें मेले में ले जाते हुए सुस्ताते थे....।''

''यह सब तुम्हें कैसे पता....।''

''तुम्हीं ने बताया था यह सब... तुम्हें कथा और किस्से सुनाने की आदत है।''

''मैंने सुनाया था.... किस्सा तो सही है.... मैंने कब सुनाया!''

एकदम घबरा सा गया विकल....क्या मैंने सुनाया होगा...दिमाग़ पर ज़ोर देने पर भी याद नहीं आया। तभी मोबाइल चिंघाड़ने लगा। उसने मुँह दबा दिया। दूसरी बार चिंघाड़ा। फिर मुँह मरोड़ा। तीसरी बार जब चिंघाड़ा तो हड़बड़ी में फर्श पर गिर गया और दो टुकड़े हो गया।

''जस्ट कूल डाउन... डोंट वरी...।'' साथी ने मोबाइल उठा कर एकदम जोड़ दिया। जोड़ते ही वह जीवित हो उठा और इस बार थर्राते हुए ज़ोर- ज़ोर से काँपा।

उन के वार्तालाप से तीसरा लड़का, जो कानों में रूई डाल नाईट ड्यूटी के बाद खर्राटें भर रहा था, एकदम जाग गया और जैसे एक बच्चे की तरह कुनमुनाया- ''क्या शोर मचा रहो हो सालो! मुझे सोने दो।''

***

थी, हूँ, रहूँगी

शिवानी कोहली

जीवन में बहुत ज़रूरी है पैसा। पैसा आपके जितने करीब होगा लोगों के मन में आपके लिए उतनी ही श्रद्धा बढ़ती रहेगी। मान-सम्मान से भरा होगा उनका व्यवहार। तुज़ुर्बा है, जब-जब हाथ में खुजली रही लोग हाथ मिलाते रहे और जैसे ही हथेली का रंग बदला लोगों का भी। बहुत खूब है ये इंसान भी, गिरगिट को भी पीछे छोड़ गया। तवज्जु इस बात पर दिया जाता है कि किसके पास कितना है ना कि किसके मन में कितना है!

और इस बात का एहसास पापा के जाने के बाद हुआ।

'देखिए सर, मैं भी जानती हूँ और आप भी मानते हैं कि इस लेख के कारण पत्रिका कहाँ से कहाँ जा पहुँची है। फिर भी आप पैसे देने में आना-कानी कर रहे हैं। इतने से मेरा तो क्या ही बनेगा।'

'देखिए मिस दामिनी, जितना मुझे कहा गया है मैं तो उतना ही दूँगा। आपको कोई दिक्कत है तो बॉस से बात कर लीजिए।'

'ठीक है। कब आएँगे बॉस?'

'मालूम नहीं।'

'मालूम नहीं? ये क्या बात हुई?'

'वो एक सप्ताह के लिए विदेश गए हैं। एक कान्फरेन्स के सिलसिले में।'

'विदेश?? आप उनसे फ़ोन पर बात कर लो।'

'जब वो लौटेंगे तभी बात हो पाएगी।'

बहुत ज़रूरी थे वो दो हज़ार रुपये। आधी कीमत मिलने पर मैं बौखला गई थी।

'कैसे चलेगा सब? मेहनत की भी पूरी कीमत नहीं मिलती। अब क्या करूँ? विभा की स्कूल की फीस कैसे जाएगी?' घर पहुँचने पर माँ ने मेरे चेहरे पर सब पढ़ लिया। अपनी माँ से कभी कोई बात छिपाती नहीं। छिपा सकती भी नहीं। वो जान जाती है कि मैं कुछ छिपा रही हूँ।

'क्यूँ? क्या बना? आज फिर वही आधे-अधूरे हाथ ले कर आई हो ना?तू छोड़ क्यूँ नहीं देती इस नौकरी को?ना तो तुझसे कोई और नौकरी होती है और ना ही चापलूसी। कभी बॉस को मस्का लगाया होता तो आज ये दिन नसीब में नहीं होते। आज हम भी एक अच्छे घर में कूलर की हवा फाँक रहे होते। तू पूरी अपने पापा पर गई है। उनको भी कह-कह कर थक जाती थी पर करते वो अपनी मर्ज़ी ही थे।'

'तो क्यूँ अपनी ऊर्जा गवा रही हो?'

'मत सुनो मेरी। बिल्कुल भी मत सुनो। जब सब बिखर जाएगा तब मेरे पास मत आना। ये दुनिया सच की नहीं है। तेरे पापा को भी यही समझाती थी, नहीं माने वो। दुनिया सच्चाई पर नहीं झूठ पर टिकी हुई है।'

'देखो माँ, ना तो इस बारे में मुझे कुछ कहो और ना पापा को। वो जिस राह पर चले। वो सच्चाई की राह थी और मैं भी उसी राह पर ही चलूँगी। सच्चाई की जीत होती है और मेरी भी जीत होगी एक दिन। मुश्किलें आती ज़रूर हैं परंतु मैं उनसे डर कर अपने कदम पीछे नहीं हटा सकती। सामना करूँगी। जैसे पापा किया करते थे।'

'तू एक लड़की है। तेरे लिए समाज के दायरे बहुत सख़्त हैं। समझ मेरी बात को। तेरे पापा पुरुष होने के बावजूद समाज से हार गए, तू तो फिर भी लड़की है। ये दुनिया कैसा सलूक करेगी तू सोच भी नहीं सकती और अभी तेरी उम्र ही क्या है। मात्र 21 वर्ष।'

'हौसले उम्र से नहीं आते माँ और मेरे हौसलों में तो पापा बसे हुए हैं। वो मेरा मार्गदर्शन करेंगे। रही बात लड़की होने की। तो आज वादा करती हूँ तुमसे कि एक दिन ऐसा आएगा कि तुम कहोगी कि 'दामिनी मेरी बेटी है और बेटों से बढ़ कर हौंसले हैं इसमें।' आधे से

मुकेरियाँ, ज़िला- होशियारपुर, पंजाब की शिवानी कोहली की शब्दांकन, अनहदकृति, साहित्यकुंज, प्रयास, जनकृति ई-पत्रिकाओं और साहित्य अमृत, उम्मीद, सृजनलोक, मालती अंतरराष्ट्रीय हिन्दी ए-शोध पत्रिका आदि में लघुकथाएँ, लेख, कहानियाँ, कविताएँ और शोधपत्र प्रकाशित होते हैं।

संपर्क: कृष्णा गली, मेन बाज़ार, मुकेरियाँ, ज़िला- होशियारपुर, पंजाब,पिन कोड-144211

फोन: 09915315289, 09501676143

ज़्यादा लड़कियों के हौसले तो तभी टूट जाते हैं जब उनकी तुलना लड़कों से की जाती है। क्यूँ समझ नहीं पाते सब कि जब घर से लड़की को हौसला मिलेगा तो वो कुछ भी कर सकती है। कुछ भी।'

'मैं और तुमसे बहस नहीं करना चाहती।'

'और माँ उठ कर चली गई। समझती हूँ उनकी व्यथा को। पापा के चले जाने से उनपर क्या बीती होगी। और ऊपर से ये समाज कैसे देखता है एक विधवा को। याद है आज भी मुझे जब पापा ने माँ के लिए चूड़ियाँ लाने का वादा किया था और वो.. मैं करूँगी उनका वादा पूरा। माँ के लिए मैं चूड़ियाँ ले कर आऊँगी और वो भी पापा की सिखाई हुई राह पर चल कर।'

रात के अँधेरे में बहुत सारे गम भी शरण पाते हैं। जिस तरह चाँदनी में प्यार पनपता है। गम भी उसी चाँदनी में खुद की जगह ढूँढ ही लेते हैं। ज़रूरी नहीं कि हर बात के लिए शब्द हों। भले ही वो प्यार की बात हो या गम की। दिन में हर कोई दूसरे चेहरे के साथ घूमता है। रात भले ही काली हो हम उसमें खुद को कभी छिपा नहीं पाते.. लाज़मी है रात के होने का, वरना हम खुद से कैसे मिल पाएँगे।

रात को बिजली भी हमसे रूठ कर चली गई। बिल ना भरा होने के कारण विद्युत विभाग ने हमसे नाता तोड़ दिया। अब प्रश्न ये उठता था कि विभा की फीस भरी जाए या विद्युत विभाग को खुश किया जाए। अगले दिन सुबह माँ ने पापा की आख़िरी निशानी, चाँदी का गिलास मुझे थमाया।

'जा इसे बेच आ और बिजली का बिल भर आना और विभा की फीस भी।'

'नहीं माँ। ये पापा ने तुम्हें ला कर दिया था और मैं उनकी आख़िरी निशानी को तुमसे अलग नहीं कर सकती।'

'क्या करेंगे ऐसी निशानी का। अगर किसी काम ना आ सके। वैसे भी अभी पैसों की सख़्त ज़रूरत है।'

'पापा अगर होते तो कभी नहीं बेचते। मैं भी नहीं बेच सकती। तुम सबर करो। कुछ ना कुछ ज़रूर करूँगी।'

हौसलों की नई उड़ान लिए दामिनी ने घर से बाहर कदम रखा। ऑफिस पहुँची तो रमेश बाबू ने दामिनी को अपने कैबिन में बुलाया।'

'सर आपने मुझे बुलाया।'

'हाँ, मिस दामिनी। अंदर आओ।'

'ये नया विषय है। तुम्हें कल तक इसपर लेख लिखना है। इस महीने के अंक में इसे छापना है और कल तक हो जाना चाहिए। इस बार तुम्हें 3000 रुपये देना तय किया गया है।'

'ठीक है सर। मैं ज़रूर लिखूँगी और कल सुबह तक आपको लेख मिल भी जाएगा। लेकिन ये जो 3000 रुपये वाली बात आपने कही वो मुझे लिखित रूप में चाहिए।'

'क्या? तुम्हें भरोसा नहीं है मुझपर?'

'सर या तो आप मुझे पैसे पहले देंगे या फिर लिखित रूप में देंगे। मैं तब तक लेख नहीं लिखूँगी जब तक आप मेरी बात नहीं मानेंगे। चलती हूँ।'

'चींटी के पर निकल रहे हैं सर। कहो तो कटवा दूँ।' नीलेश ने रमेश बाबू को और भड़काते हुए कहा।

'पर तो इसके काटेंगे ही और वो भी बहुत जल्द। फिलहाल तुम ये लेटर इसे भिजवा दो और इसमें 3000 की बजाए 4000 लिखना।'

'वो क्यूँ सर?'

'तुमसे जितना कहा गया है उतना ही करो।'

'जी सर।'

लेटर मिलने पर मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। रकम में बढ़ोतरी देख मैं कुछ ठहर गई।'

'बात तो 3000 की हुई थी तो यहाँ 4000 क्यूँ??'

'सर क्या मैं अंदर आ सकती हूँ?'

'हाँ हाँ.. मिस दामिनी आओ ना।'

'सर, इसमें कुछ ग़लत अंकित हो गया है। बात 3000 की हुई थी और इसमें ग़लती से 4000 रुपये लिखे गए हैं।'

'नहीं मिस दामिनी। ग़लती से नहीं। सोच समझ कर ही लिखे गए हैं।'

'जी, मैं कुछ समझी नहीं।'

'राघव सर ने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए कहा था जिसमें तुम पास हो गई हो।'

'परीक्षा?'

'हाँ. आज से तुम्हारे हर लेख के लिए तुम्हें 4000 रुपये मिलेंगे।'

'4000?'

'हाँ. अब तो तुम खुश हो ना?'

'जी सर। धन्यवाद।'

कभी कोई ज़्यादा मीठा बनने का प्रयास करे तो समझ लेना कि दाल में कुछ काला है। पापा की इस बात ने मुझे समझ के रास्ते पर चलाया। मैं सारा दिन सोचती रही कि रमेश बाबू ने भला ऐसा क्यूँ किया?परीक्षा वाली बात कुछ हज़म नहीं हो रही है। घर जा कर माँ को पैसे दिए।'

'इतने पैसे कहाँ से आए हैं?'

'बॉस ने काम के दिए हैं.'

'सच में?'

हाँ। पर मुझे तो कुछ सही नहीं लग रहा है माँ। पहले 3000 देने तय हुए और दिए 4000। कुछ तो ग़लत है। मैं खुद ही बड़बड़ाती रह गई और माँ पैसे लेकर सब्ज़ी लाने चली गई। मैं पापा की तस्वीर के पास गई और उनसे अपनी मुश्किल का हल पूछने लगी।

'पापा, आपकी बताई हुई सीख पर मुझे पूरा भरोसा है और बहुत जल्द मैं ये बात पता लगा कर रहूँगी।'

अगले दिन ऑफिस में रमेश बाबू को लेख देने के लिए उनके कैबिन में गई। काग़ज़ को देते समय एक ऐसे स्पर्श का आभास हुआ जिसने पल के लिए मुझे काली के रूप को धारने पर विवश कर दिया। मैने ज़ोर से अपना हाथ पीछे किया। पापा कहते थे जब भी तुम्हें कोई बात ग़लत लगे तुरंत बोल दो। क्योंकि ग़लत के लिए रुकने का अर्थ है उसे और बढ़ावा देना। मैंने भी वही किया। रमेश बाबू को इस बात के लिए फटकार लगा दी। सभी इकट्ठा हो गए। रमेश बाबू को सबके सामने मुझसे माफी माँगनी पड़ी। उनके चेहरे से साफ दिखाई दे रहा था कि उनके अहम को बहुत बड़ा धक्का लगा है। कुछ महीने यूँही बीत गए। मेरे काम से खुश हो कर राघव सर ने मेरे हाथ में पक्की नौकरी की लकीर खींच दी। घर पर सब बहुत खुश थे। सब सही चल

रहा था। विभा की स्कूल की फीस समय पर जा रही थी, विद्युत विभाग भी हमसे खुश था, किराना, दूध वाला सब समय पर भुगत जाया करते और फिर एक दिन..

'मिस दामिनी, तुम्हें आज एक्सट्रा आवर्स लगाने पड़ेंगे।'

'एक्सट्रा?'

'हाँ, बॉस यहाँ है नहीं और उनका सारा काम आज कल तुम्हीं देखती हो तो उन्होंने ही मुझे कहा था कि मैं तुम तक ये सूचना पहुँचा दूँ।'

'ठीक है। मैं कर लूँगी।'

'मैं फाइल्स भिजवाता हूँ।'

राघव सर के साथ काम करते-करते उनकी आदत होने लगी थी। कुछ समय के लिए जब राघव सर बाहर चले जाते तो काम करने का ज़रा भी मन नहीं करता। रात का 1 बज रहा था। इतने समय तक कभी भी ऑफिस में नहीं रुकी थी मैं। फोन की घंटी बजी। ऑफिस में कोई और नहीं था तो मुझे ही फोन उठाना पड़ा।

'हेलो..'

'कौन?'

'कौन बोल रहा है?'

'मैं राघव।'

'सर आप..'

'कौन?'

'जी मैं दामिनी।'

'गार्ड का फोन मिल नहीं रहा था तो मैंने यहाँ फोन किया। आप इतनी रात को ऑफिस में क्या कर रही हैं?'

'वो आपने ही तो रमेश बाबू को मुझे काम देने के लिए कहा था ना.. वही कर रही हूँ।'

'मैंने? शायद ठीक है। पर जैसे ही काम ख़त्म हो जाए। लौट जाइए घर। काफ़ी समय हो गया है।'

'जी।'

मैं अपना काम करती रही और सुबह के 4 कब बज गए अंदाज़ा भी ना लगा पाई। अभी मैं घर के लिए निकलने ही वाली थी कि सुबह की शिफ्ट वाला गार्ड आ गया।

'मिस दामिनी! आप यहाँ? लगता है आप रात भर घर नहीं गईं।'

'हाँ, बस अभी जा रही हूँ। दोपहर को थोड़ा देर से आऊँगी। रमेश बाबू को बता देना और ये फाइल भी दे देना।'

'ठीक है।'

थका हारा शरीर जब घर पहुँचा तो माँ राशन-पानी ले कर चढ़ गई।

'मैं बहुत थकी हुई हूँ माँ। थोड़ा सोने दो। जब उठ जाऊँगी तो भले कुछ भी पूछ लेना।'

माँ उस दिन चिंता में थी। फिर भी उसने कुछ नहीं कहा और मुझे सोने दिया। जैसे ही मैं जगी। माँ के सवालों की झड़ी शुरू हो गई। सारी बात माँ को समझाई और चैन की साँस पाई। दोपहर को ऑफिस गई तो राघव सर लौट आए थे। ये सुनकर मेरी खुशी का कोई ठिकाना ही नहीं रहा। जैसे ही मैं राघव सर के कैबिन की ओर बढ़ने लगी, एक अलग अंदाज़ में वो रमेश बाबू के साथ कैबिन से बाहर निकले।

'ये सब क्या है?तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी मुझे।'

'पर हुआ क्या सर? बताइए तो सही।'

'ये देखो, जो तुमने फाइल तैयार करके प्रिंट के लिए भेजी है। वो सारी ग़लत है। देखो ज़रा कितनी ग़लतियाँ हैं इसमें। पत्रिका बाज़ार में आ चुकी है। समझ नहीं आ रहा कि क्या करूँ? किसे दोष दूँ?'

'मैं पन्नों को उलट-पलट कर देखने लगी। कभी फाइल के पन्नों की ओर देखती तो कभी राघव सर के चेहरे की ओर।'

'मैंने तो पहले ही कहा था सर, कि मिस दामिनी से ये काम नहीं होगा। आपने ही विश्वास दिखाया था।'

'लेकिन.. मैंने' दामिनी के शब्दों को वाक्य बनने से पहले ही रोक दिया गया।

'मुझे कुछ नहीं सुनना अब। आप जा सकती हैं मिस दामिनी।'

'मिस दामिनी' ये शब्द मेरे दिल को ठेस पहुँचा रहे थे। पिछले कुछ समय से राघव सर केवल दामिनी कह कर ही पुकारते थे।

'मेरी पूरी बात तो सुनिए सर।'

'राघव सर बिना मेरी बात सुने अपने कैबिन में चले गए। रमेश बाबू की आधी मुस्कुराहट ने मेरे दिमाग़ के सारे पर्दे खोल दिए थे।'

मैं इस बात की तह तक जा कर रहूँगी रमेश बाबू। एक बार भरोसा करके देख लिया। आप जैसे कुत्ते भरोसे के लायक होते ही नहीं है और कुत्तों को उनकी औकात दिखाना मैं अच्छे से जानती हूँ। जो ग़लती की है अब उसे मैं ही सुधारूँगी। रमेश बाबू अपनी सारी घटिया चालें चल चुके थे। आख़िरी चाल जो रह गई थी वो थी राघव सर के गुस्से में और घी डालने का काम। वो भी बखूबी उस दिन सम्पन हुई। राघव सर ने मुझे नौकरी से निकाल दिया और सारा कार्यभार फिर रमेश बाबू को दे दिया।

'मैंने तुम्हें कहा था दामिनी ये लोग कुछ भी कर सकते हैं और तू ठहरी लड़की जात। अब तू कुछ भी नहीं कर सकती।'

'बस करो माँ। ये लड़के लड़की का रोना बंद किया करो। आज अगर पापा होते तो मुझे हिम्मत देते और तुम मेरा मनोबल तोड़ने पर लगी हुई हो। नहीं, मैं हार नहीं मानूँगी। नहीं मानूँगी हार। बहुत जल्द इस साज़िश का परदा फ़ाश करके रहूँगी। मैंने मन से मेहनत की है और मेहनत की सारी हदों को पार करके इस मुकाम तक पहुँची हूँ। खुद को हारता हुआ नहीं देख सकती। सच की जीत होगी। ये तय है।'

उस दिन से मैंने ऑफिस की जानकारी रखनी शुरू की। कौन क्या काम करता है?, कैसे करता है?, किसके लिए करता है? और क्यूँ करता है? इसमें मेरा साथ दिया ऑफिस में काम कर रही मेरी दोस्त रिया ने। रिया पूरे दिन का ब्योरा देती थी। हालाँकि मेरे चले जाने के बाद रमेश बाबू ने सब अपने हाथों में ले लिया था फिर भी रिया सारी खबर पहुँचा दिया करती थी और फिर एक दिन मेरे हाथ वो फाइल लगी जो उस रात मैंने बनाई थी। मैं ये देख कर बहुत हैरान हुई कि अगर ये फाइल सही है तो वो ग़लत फाइल कैसे पहुँचाई गई। ये काम किसका हो सकता है ये समझने में मुझे ज़रा भी देर नहीं लगी। लेकिन कोई ठोस प्रमाण भी चाहिए था। तकरीबन 2 महीनों के अंतराल पर मैं, रिया से मिली और रमेश बाबू की लिखी हुई किसी भी फाइल की माँग की। रिया ने रमेश बाबू की लिखी हुई फाइल ला कर दी। हैंडराइटिंग एक्सपर्ट को फाइल दिखाने पर

सब साफ हो गया।

'अरे दामिनी !तुम यहाँ?देखो तो दामिनी आई है। अब ये क्या नया बखेड़ा करने आई है? ऑफिस के सब लोग हैरान परेशान उसे देख रहे हैं। रमेश बाबू ने दामिनी की ओर घूरते हुए उसे गाली दी।''

'क्यूँ रमेश बाबू?क्या हाल हैं आपके? कहाँ हैं आपके बॉस, राघव सर? बुलाने का कष्ट करेंगे या मैं खुद ही आवाज़ दूँ।'

'क्यूँ इतना शोर मचा रखा है? क्या हो गया..? ओहज तुम..? तुम यहाँ क्या कर रही हो? इसकी कोई पेमेंट रह गई है तो देकर चलता करो इसे।' राघव सर ने बेरूख़ी की सारी सीमाएँ तोड़ दी।

'नहीं राघव सर....मेरी कोई पेमेंट बाकी नहीं है और ना ही मैं कोई तमाशा खड़ा करने आई हूँ। मैं तो वो अधूरी बात पूरी करने आई हूँ जो कुछ महीने पहले रह गई थी और जिसे पूरी करने के लिए आपने मुझसे प्रमाण लाने के लिए कहा था। वही प्रमाण जिससे ये साबित हो जाएगा कि वो फाइल मैंने नहीं बल्कि इसी ऑफिस से किसी दूसरे कर्मचारी ने जानबूझ कर बदल कर भेज दी थी। ताकि सारा इल्ज़ाम मुझ पर आ जाए।'

'क्या..?क्या बकवास कर रही हो तुम? ऐसा कैसे हो सकता है ?कोई भला ऐसा क्यूँ करेगा..? मुझे नहीं लगता कि ऑफिस में किसी को राघव सर से कोई दिक्कत होगी। तो...फिर....कोई ऐसाज्ना...ना..... तुम अपना दोष किसी और के माथे मढ़ने आई हो.....बस और कुछ नहीं है।' डरे हुए रमेश बाबू ने घबराहट में बहुत कुछ एक ही साँस में कह दिया।

'मैंने कब कहा कि, किसी को राघव सर से दिक्कत है? ये तो आप कह रहे हैं। मैं नहीं।'

'तुम कहना क्या चाहती हो। साफ-साफ कहो।' राघव सर का दामिनी से शायद ये आख़िरी सवाल था।

'ठीक है। तो फिर सुनिए। जिस रात मैं ऑफिस में काम कर रही थी उस रात आपने मुझे फोन किया था। है ना?'

'नहीं। मैंने तुम्हें कोई फोन नहीं किया था।'

'बिल्कुल सही कहा आपने। आपने मुझे कोई फोन नहीं किया था लेकिन मुझे फोन आया था। वो भी आपकी तरफ से। मेरे पूछने पर कि आपने मुझे ये काम दिया था आपने कुछ ख़ास दिलचस्पी वाला उत्तर नहीं दिया था। थोड़ी बात वहीं समझ गई थी मैं। ना तो आपने मुझे वो काम दिया था और ना ही वो फोन जो आपकी आवाज़ में आया था, आपका था। वो फोन रमेश बाबू ने करवाया था। क्यूँ रमेश बाबू? झूठ बोलने की कोशिश भी मत करना। मैं पूरी तैयारी के साथ आई हूँ।' दामिनी ने रमेश बाबू के ज़रा पास जा कर कहा।

'हल्का सिर हिलाते हुए रमेश बाबू ने हाँ कहा।'

'और आगे की कहानी आप कहेंगे या मैं ही कहूँ? चलिए कोई बात नहीं, मैं ही कह देती हूँ। ज़्यादा कष्ट नहीं दूँगी आपको। आप बड़े हैं मुझसे। इतना तो मैं आपके लिए कर ही सकती हूँ।' मैं उस दिन काली के भेस में थी। मैं कह रही थी, बस मैं ही कह रही थी। बाकी सब मूक प्राणी थे वहाँ।'

'इंटरवल तक की कहानी तो आप सभी को समझ आ ही गई होगी। आगे क्या ट्विस्ट है वो सुनिए। ना तो कभी राघव सर ने मुझे रात भर बैठ कर काम करने के लिए कहा और ना ही उस रात राघव सर का मुझे फोन आया। उस रात राघव सर की आवाज़ में मुझे रमेश बाबू ने फोन करवाया था। ये जानने के लिए कि काम कहाँ तक पहुँचा है और ये जान लेने के बाद कि काम कुछ ही समय में पूरा हो जाएगा। वो ऑफिस के पिछले गेट पर पहुँचे और हमारे गार्ड की मदद से अंदर आए और मेरे चले जाने के बाद मेरी फाइल में काफ़ी समय तक दखलंदाज़ी करते रहे। फिर वही फाइल उन्होंने राघव सर के टेबल पर रख दी। राघव सर ने बिना पढ़े एक विश्वास के साथ वो फाइल प्रिंटिंग के लिए आगे भेज दी। क्यूँ रमेश बाबू मैं सही कह रही हूँ ना?और सुबह 10 बजे तक पत्रिका बाज़ार में आ चुकी थी।'

'लेकिन.. गार्ड ने इनकी मदद क्यूँ की?' भीड़ का एक सवाल।

'पैसों के लिए। उसे पैसे की ज़रूरत थी और रमेश बाबू को इस कुर्सी की। रमेश बाबू मेरे और राघव सर के बारे में सब जानते थे।'

'तुम्हारे और राघव सर के बारे में?' रिया के साथ-साथ बाकी सब भी अचंभित..

'हाँ रिया। ये बात मैने किसी को भी नहीं बताई थी। मैं और राघव सर एक दूसरे को पसंद करने लगे थे। कसमें खाई थी हमने जीवन भर साथ निभाने की। परंतु जहाँ विश्वास ही ना हो वहाँ कोई रिश्ता कैसे अपनी मंज़िल पा सकता है।'

'भावनाओं के समंदर में फिर मैं गुम होने जा ही रही थी कि पापा की कही बात याद आ गई। जो आप पर विश्वास करते हैं वो आपसे कभी भी प्रमाण नहीं माँगते।'

'राघव सर को मुझसे प्यार तो था लेकिन मुझपर विश्वास नहीं और प्यार से ज़्यादा ज़रूरी है विश्वास। जहाँ विश्वास नहीं वहाँ प्यार हो ही नहीं सकता। मेरी इसी कमज़ोरी का रमेश बाबू ने लाभ उठाते हुए राघव सर की आवाज़ में फोन करवाया, ताकि मैं किसी और दुनिया में गुम रहूँ और वो अपना काम आसानी से कर दें। काम तो कर लिया आपने रमेश बाबू, परंतु आप ये भूल गए कि जो फाइल आपने बदली थी उसमें लिखावट आपकी थी और इसकी पुष्टि इस रिपोर्ट में है।'

'सर आप जानते हैं मेरा नाम दामिनी है.....जो कभी सच का दामन नहीं छोड़ती। दामिनी कल भी जीती थी, आज भी जीती है और हमेशा जीतेगी..... क्योंकि सच उसके साथ है और वो सच के.....

मैंने फाइल को टेबल पर पटका और ऑफिस से बाहर जाने लगी।

हवा में लहराते हुए मेरे बालों ने राघव के मन को मेरी ओर फिर आकर्षित कर दिया...

'दामिनी...'

इस एक आवाज़ ने फिर कदमों को पल भर के लिए रोक दिया। परंतु मेरे आत्मविश्वास ने मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया और हर उस आवाज़ को अनसुना करती गई जो मुझे सच से परे रखती थी....

***

हिमाचल के स्कूल शिक्षक पवन चौहान की कहानियाँ, बाल कहानियाँ, लेख और कविताएँ वागर्थ, वसुधा, विपाशा, बया, पाखी, कथाक्रम, अक्षरपर्व, आकंठ, हिमप्रस्थ, हिमभारती, हरिगंधा, रसरंग(दैनिक भास्कर), अक्षर-खबर,,जागरण सखी, मेरी सजनी, द संडे पोस्ट, जाह्नवी, वीणा, कथा-समय, जनप्रिय हिमाचल, अहा! ज़िंदगी, हंस, लोकायत, सहारा-समय, शुक्रवार, आऊटलुक, नई दुनिया (तरंग), देशबन्धु, एब्सल्यूट इंडिया, दैनिक ट्रिब्यून (रविवारीय), दैनिक हरिभूमि (रविवारीय भारती), मध्यप्रदेश जनसंदेश, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, राष्ट्रीय सहारा, अमर उजाला, अजीत समाचार, पंजाब केसरी, नवभारत, प्रभात खबर, दिव्य-हिमाचल, आलोक फीचर्स (बिहार), गिरिराज (शिमला), शब्द -मंच पत्र-पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित हुई हैं। किनारे की चट्टान (कविता संग्रह), गुंजन सप्तक-4 (पार्वती प्रकाशन, इंदौर का साझा कविता संग्रह) है। पवन जी, साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा (राजस्थान) द्वारा बाल कहानी के लिए 'हिन्दी साहित्य भूषण' सम्मान, ''शब्द मंच'' (बिलासपुर, हि. प्र.) द्वारा लेखन के लिए सम्मानित हैं।
संपर्क: गाँव व डा. महादेव, त. सुन्दर नगर, ज़िला मण्डी (हि. प्र.)- 175018
ईमेल:
chauhanpawan78@gmail.com
फोन: 94185 82242, 98054 02242

इंतज़ार

पवन चौहान

समुद्र की लहरें आज भी उसी जोश के साथ साहिल से टकरा रही थीं जैसा वे हमेशा करती हैं। उनके जोश में कोई परिवर्तन न था। किनारे का यह स्थान जैसा एक वर्ष पूर्व था वैसा ही आज भी था। यदि परिवर्तन था तो बस इतना कि किनारे पर बालू की परत थोड़ी मोटी हो चुकी थी और जहाँ पहले प्यार की बयार बहा करती थी, हँसी के ठहाके गूँजा करते थे...आज वहाँ सिर्फ दर्द की सिसकियाँ थीं; जो समुद्र के शोर के आगे बार-बार अपना दम तोड़ रही थीं। दिल के आकार का पत्थर जिस पर प्रभात और रितिका का नाम लिखा था वह भी चट्टान के उस गुफ़ानुमा हिस्से से गायब था। प्रभात जैसा अक्सर करता था आज भी उसी पत्थर को तलाशने का असफल प्रयास कर रहा था। काफी प्रयत्न करने के पश्चात् जब उसे वह पत्थर न मिला तो वह थक हार कर बड़ी चट्टान के उस गुफ़ानुमा हिस्से के अंदर बैठ गया, जहाँ वह पहले घंटों बैठ अपनी कविता, कहानियाँ व अन्य रचनाएँ गढ़ता रहता था। दिल के आकार का पत्थर प्रभात और रितिका के प्रेम का गवाह था। सुनसान स्थान होने के कारण यहाँ बहुत कम लोगों का आना जाना था।

प्रभात को इस तरह यहाँ आते हुए एक वर्ष बीत गया था। वह सुबह ही आ जाता और पूरा दिन इसी चट्टान पर बैठकर गुज़ार देता। कभी-कभी तो रात भी यहीं गुज़र जाती थी। प्रभात दिन भर अथाह समुद्र की ओर टकटकी लगाए रहता। समुद्र की उफनती हर लहर उसके लिए आशा की किरण बन कर आती थी। उसे लगता इस बार रितिका ज़रूर दिखाई देगी। दो दिन पूर्व जब उसने समुद्र में लाल कपड़ा तैरता देखा तो उसकी आँखें चमक उठीं। ऐसा लगा मानों उसके बेजान शरीर में जान पड़ गई हो। रितिका समझकर उसे पकड़ने के लिए प्रभात ने गहरे समुद्र में छलाँग लगा दी थी। जब वह तैरता हुआ कपड़े तक पहुँचा तो वह रितिका नहीं बल्कि स्थानीय पार्टी का झंडा था। उसे देख प्रभात उदास हो गया। जोश में तो वह कपड़े के पास पहुँच गया था लेकिन अब वापिस आने की उसकी हिम्मत दम तोड़ती नज़र आने लगी थी। काफी दूर तक तैरने के कारण वह काफी थक भी चुका था। अत: वापसी का वह अभी आधा रास्ता ही तय कर पाया था कि उसे गोते लगना शुरू हो गए। वह तो भगवान् का शुक्र था कि उस दिन दो प्रेमी युगल वहाँ पर मौजूद थे। उन्होंने जैसे-तैसे प्रभात को बचा लिया वरना प्रभात समुद्र की अनंत गहराई में कहीं खो चुका होता।

बढ़ी हुई दाढ़ी प्रभात के दर्द को साफ बयान कर रही थी। चट्टान से टकराती हर लहर प्रभात से मानों कह रही थी कि प्रभात घर वापिस जाओ। तुम्हें अब यहाँ कुछ भी नहीं

मिलने वाला। लेकिन दिवाने तो दिवाने होते हैं। सब कुछ जानते हुए भी प्रभात को उम्मीद थी कि रितिका पिछले बर्ष की भाँति उसे फिर यहीं कहीं दिखाई दे जाएगी।

अतीत का पन्ना आज भी प्रभात के जहन में फड़फड़ा रहा था। रोज़ की भाँति उस दिन भी वह समुद्र की रंगीनियों को अपने कल्पना महल में बसा, कागज़ के पन्नों पर उतार रहा था कि सहसा उसकी नज़र कपड़ों में लिपटी किसी चीज़ पर पड़ी जो किनारे की ओर तैरती चली आ रही थी। उसे देखकर उसकी कलम वहीं रुक गई और वह उसका किनारे पर आने का इंतज़ार करने लगा। किनारे पर पहुँचते ही उसने देखा कि यह कोई चीज़ नहीं अपितु एक लड़की की लाश है। उसे देखते ही वह फटाफट चट्टान से उतरा और लाश को घसीटते हुए किनारे पर ले आया। उसका चेहरा साड़ी के पल्लु से ढका हुआ था। प्रभात ने पल्लु को सरकाया तो वह लाश को एकटक देखता ही रह गया। चाँद से खूबसूरत चेहरे ने उसे सम्मोहित-सा कर लिया था। यकायक उसे ख्याल आया कि बेबकूफ यह कोई ज़िंदा लड़की नहीं बल्कि एक लाश है। जैसे ही वह किनारे की ओर थोड़ा-सा और आगे उसे खींचने लगा तो उसे एक तरंग-सी महसूस हुई। लड़की की नाड़ी चल रही थी। वह ज़िंदा थी। प्रभात ने एक क्षण गंवाए बिना उसे जैसे-तैसे अस्पताल पहुँचाया।

जब लड़की को होश आया तो उसके सामने प्रभात फूलों का गुलदस्ता लेकर खड़ा था। प्रभात ने उसे फूल देने चाहे लेकिन लड़की ने फूल लेने से साफ इनकार कर दिया और उसे अजीब-सी निगाहों से देखने लगी। शायद वह इस अजनबी को पहचानने का प्रयास कर रही थी। वह प्रभात से बोली,'कौन हो तुम? और यह फूल किसलिए?'

'जी आपको होश आ गया है और मेरे लिए इससे बड़ी खुशी की बात और क्या हो सकती है। इसलिए आपको फूल.....'

प्रभात की बात को बीच में ही काटते हुए वह फिर बोली,'खुशी! मेरे होश आने पर आपको क्यों खुशी होने लगी भला? और मैं तुम्हें जानती तक नहीं।' लड़की की

बातों में थोड़ी सख्ती थी।

पास खड़ी नर्स से न रहा गया और उसने लड़की को अब तक का सारा हाल कह सुनाया; जो लड़की कुछ देर पहले आँखें फाड़-फाड़ कर प्रभात को बूरा भला कहे जा रही थी। सब कुछ सुनने के बाद अब वह खुद से नज़रें मिलाने से भी डर रही थी। शर्मिंदगी से उसका सर झुक गया था। जिस कमरे में कुछ क्षण पहले तुफ़ानी हवाएँ बह रही थीं वे अब ठंडी बयार में तबदील हो चुकीं थी।

चुप्पी को तोड़ते हुए प्रभात बोला,'लगता है अब आप स्वस्थ हो चुकी हैं। अब आपको अस्पताल से छुट्टी मिल जाएगी.....'

लड़की ने बात को बीच में ही काटते हुए कहा,'क्या आप मुझे फूल नहीं देंगें?'

प्रभात ने मुस्कुराते हुए फूलों का गुलदस्ता लड़की को थमा दिया।

'फूल बहुत सुंदर हैं।' लड़की ने कहा।

'लेकिन आपसे ज़्यादा नहीं।'

यह बात सुनकर लड़की शर्मा गई।

'आपको नहीं लगता कि थोड़ी देर पहले भी हम अजनबी थे और अब भी अजनबी ही हैं।'

'मैं आपकी बात समझी नहीं!'

'अरे भई, कम से कम हमें एक-दूसरे का नाम तो जान लेना चाहिए ताकि बात करना आसान हो जाए।'

'जी, मेरा नाम रितिका है।'

'और मेरा प्रभात।'

'क्या मैं आपसे एक सवाल पूछ सकता हूँ?'

'पूछो।'

'मेरे मन में एक बात बार-बार दस्तक दे रही है कि आप समुद्र में कैसे.....'

थोड़ी देर पहले रितिका के चेहरे पर जो चमक आई थी इस सवाल के सुनते ही कहीं गायब हो गई। रितिका ने रुआँसे स्वर में कहा,'प्रभात जी, मुझे लगता है कि इस वक्त मैं आपके इस सवाल का जबाब नहीं दे पाऊँगी। आपने मुझे एक नई ज़िन्दगी दी है। मैं आपसे वादा करती हूँ कि समय आने पर मैं आपके हर सवाल का जबाब दूँगी। प्लीज़, इस समय इस बिषय पर कुछ बात न करें।'

'ठीक है रितिका जी। आपकी मर्ज़ी के बगैर मैं आपसे कुछ नहीं पूछूँगा।'

यह बात सुनकर रितिका ने जैसे राहत की साँस ली थी।

कुछ यहाँ-वहाँ की बातों के पश्चात् प्रभात ने भी रितिका से जाने की अनुमति माँगी। 'रितिका अब मैं चलता हूँ। अपना ख्याल रखना। दवाई बगैरह सही समय पर लेना। और हाँ.....मुझे अपने घर का पता दे दो ताकि मैं तुम्हारे घरवालों को भी सूचित कर सकूँ।'

प्रभात की इस बात का रितिका ने कोई जबाब नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी रही। प्रभात के दोबारा पूछने पर भी वह ज्यों की त्यों बैठी रही। जैसे उसे साँप सूँघ गया हो। प्रभात ने रितिका के कंधों को थोड़ा झकझोर कर जैसे ही अपना प्रश्न दोहराया तो रितिका की आँखों से आँसुओं का सैलाव उमड़ पड़ा। उसकी हालत देखकर लग रहा था जैसे न जाने वह अपने अंदर कितने दुखों का पहाड़ समेटे बैठी है।

रोते-रोते वह बोली,'मेरा कोई, मेरा कोई अपना नहीं है।'

यह सब सुन प्रभात को बहुत दुख पहुँचा। वह फिर बोला,'कोई तो होगा।'

'कहा न मेरा कोई नहीं हैं। फिर क्यों बार-बार मुझे परेशान कर रहे हो।' इस बार वह गुस्से में थी।

'तो फिर इसके बाद तुम कहाँ जाओगी? तुम्हारा कहीं तो ठिकाना होगा? प्लीज़

रितिका मुझे बताओ। अगर घरवालों के साथ तुम्हारा झगड़ा हुआ है तो मैं उन्हे मनाऊँगा। मैं उनकी नाराज़गी दूर करने का प्रयत्न करूँगा। तुम मेरा विश्वास करो।'

रितिका इस बार फिर गुस्से में थी। वह रोते हुए फिर बोली,'एक बार सुनाई नहीं देता। मेरी न माँ है न बाप। तुम किसे मनाओगे? दानवी भाई या फिर चुड़ैल जैसी भाभी को। जिन्होंने पहले तो मुझे मार-मार कर अधमरा कर दिया और फिर एक रात बेहोश करके समुद्र में फेंक दिया ताकि वे दुनिया वालों की आधारहीन बातों से बचे रहें। भाई, जो हर वर्ष बहन की रक्षा का वचन देता है, इतना कमज़ोर और अत्याचारी निकलेगा मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। जिन्होंने लोगों की झूठी बातों पर विश्वास करके अपनी बहन तक को मार डालने की कोशिश की। तुम उन्हें मनाने जाओगे।'

रितिका की बातें सुनकर प्रभात हैरान ही नहीं परेशान भी हो गया। वह सोचने लगा ऐसी क्या बात हो सकती है जिसके कारण अपने तक उसे मार डालने को तैयार हो गए। अत: प्रभात ने पूछा,'तुम लोगों की किन बातों के बारे में कह रही हो। मुझे कुछ तो बताओ।'

'प्रभात क्या फायदा जानकर। सब कुछ सुनकर तुम भी मुझसे नफरत करने लगोगे। मेरे पास आने से कतराओगे। इसलिए प्रभात तुम इस बात को यहीं रहने दो। सारी बात जानकर तुम्हें भी इस बात का पछतावा ही होगा कि तुमने मुझे क्यों बचाया?'.....कुछ क्षण की चुप्पी के पश्चात् 'लोगों के ताने, उनकी घृणा झेलने से मेरा मर जाना ही अच्छा था।'

रितिका की रहस्यमयी बातें सुनकर प्रभात की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। वह अब रितिका के बारें में सब कुछ जानना चाहता था। अत: प्रभात ने फिर कहा,'रितिका तुम मुझे बताओ तो सही। ऐसी कौन-सी बात है जिसकी वजह से तुम लोगों की घृणा का पात्र बनी हो। तुमने ऐसा कौन-सा बूरा काम कर दिया है?'

'अगर तुम इतनी ही ज़िद कर रहे हो, तो सुनो। मुझे एक लाइलाज बीमारी है।'

'वह क्या?'

'एड्स!'

यह सब सुनकर प्रभात एकदम सन्न-सा रह गया। उसने कभी सोचा ही नहीं था कि इतने खूबसूरत चेहरे के पीछे दर्द का इतना बड़ा अम्बार भी हो सकता है। प्रभात को अब सब कुछ समझ आ चुका था कि दुनिया वाले रितिका के बारे में क्या-क्या बातें करते होंगे। उसे किस नज़र से देखते होंगे। वैसे भी इस बीमारी के लिए हमारे समाज का एक बहुत बड़ा भाग एक ही ताना देता है- न जाने किसके साथ इसके यौन संबंध रहे होंगे जो इसे यह बीमारी लग गई है। उस औरत के लिए यह सब सहना कितना पीड़ादायक होता होगा जिसने ऐसा कुछ किया न हो। इस दर्द को वही औरत अच्छी तरह से महसूस कर पाती है जिसके साथ यह घटित हुआ हो। प्रभात एक पढ़ा-लिखा समझदार नौजवान था। वह जानता था कि एड्स क्या है और इस तरह के रोगी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। उसने मन ही मन एक फैसला ले लिया था। रितिका को प्रभात ने पसंद तो पहली ही नज़र में कर लिया था। लेकिन अब उसने उसे अपनी जीवन संगिनी बनाने का भी निर्णय ले लिया था। रितिका को एड्स होने की खबर के बावजूद प्रभात की रितिका के लिए चाहत ज़रा भी कम न हुई थी बल्कि वह और बढ़ गई थी।

वह रितिका से मुस्कुराते हुए बोला,'फिर क्या हुआ तुम्हें एड्स है तो। क्या तुम्हें यूँ ही मरने के लिए छोड़ देना चाहिए! तुम्हें भी

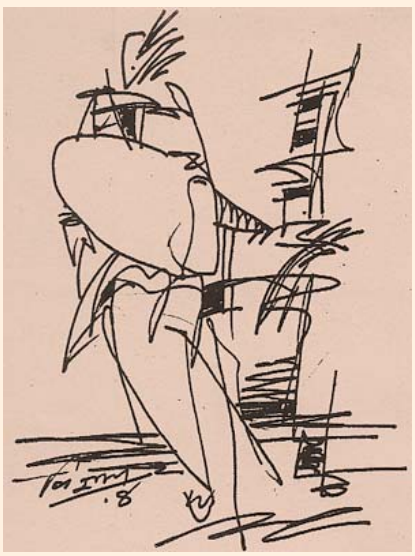

तो अपनी ज़िंदगी जीने का पूरा हक है और इसमें मैं तुम्हारा पूरा साथ दूँगा। अब तुम मेरे साथ घर चलोगी और मेरे साथ रहोगी।'

'नहीं।... नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मैं तुम पर बोझ नहीं बन सकती।'

'मैं ऐसा नहीं समझता।'

'लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगेगा।'

'परंतु तुम अब कहाँ जाओगी?'

'इसके बारे में अभी सोचा नहीं है।'

'कम से कम तुम तब तक तो रुक सकती हो जब तक तुम्हें कोई ठिकाना नहीं मिल जाता।' प्रभात जैसे अपनी ज़िद पर अड़ चुका था।

'नहीं प्रभात, ऐसा नहीं हो सकता। मेरा रोग जानकर भी तुम्हें मुझसे नफरत नहीं हुई। यह देखकर मैं आश्चर्यचकित हूँ और खुश भी। कम से कम इस दुनिया में पहली बार कोई तो इन्सान मुझे ऐसा मिला जिसने मुझे घृणा की निगाह से नहीं देखा। मुझे यहीं अकेला छोड़ने के बजाय, अपने साथ ले जाने की ज़िद पर अड़ा है। तुमने मेरे लिए यह सब सोचा, मेरे लिए यही बहुत है। मैं अपनी वजह से तुम्हारे घर वालों को परेशान नहीं कर सकती। इसलिए अपनी ज़िद छोड़ दो और मुझे मेरे हाल पर रहने दो।'

'ऐसा तो मैं हरगिज़ नहीं करूँगा। और रही मेरे घरवालों की परेशानी की बात। वो तो तुम भूल ही जाओ। हमारे घर में मेरे अलावा मेरे भैया और भाभी हैं। जो दोनों डॉक्टर हैं। वे तुम्हें प्यार से रखेंगे। मैं अपने घरवालों को अच्छी तरह से जानता हूँ। घर में दो-दो डाक्टर होने के कारण किसी और जगह से बेहतर देखभाल तुम्हारी हमारे घर में होगी। उन्हें तुम्हारे आने से बुरा नहीं लगेगा। चाहे तुम देख लेना।'

प्रभात को इस छोटे से अंतराल में ही रितिका से एक अजीब-सा लगाव हो गया था। उसे ऐसा लग रहा था मानों वह रितिका को वर्षों से जानता हो। रितिका मना करती रही लेकिन प्रभात अपनी ज़िद पर कायम रहा। और आख़िरकार रितिका प्रभात के साथ उसके घर चलने के लिए तैयार हो ही गई।

शाम को भैया और भाभी जब अस्पताल से घर पहुँचे तो आते ही प्रभात ने उन्हें अब

तक का सारा हाल सुना दिया। सब कुछ सुनने के बाद भाभी ने रितिका से कहा, 'रितिका, तुम्हें क्या लगा कि हम भी औरों की तरह तुमसे नफरत करेंगे। अरे हम डॉक्टर हैं। हम ही मरीज़ों से नफरत करने लगेंगे तो उनका इलाज कौन करेगा? और रही तुम्हारी बात। तुम तो हमारी मेहमान हो। अब तुम्हारे प्रति हमारा दायित्व और भी बढ़ जाता है। हम तुम्हें बढ़िया से बढ़िया इलाज मुहैया करवाएँगे।'

भाभी के इस अपनत्व भाव से रितिका को एक आंतरिक खुशी मिल रही थी। परंतु बावजूद इसके रितिका भाभी के चेहरे को एकटक अजीब-सी नज़रों से घूरे जा रही थी। वह भाभी को देखकर कुछ याद करने की कोशिश कर रही थी।

'.....रितिका जानती हो, एड्स का नाम सुनते ही लोग एड्स रोगी से क्यों दूर-दूर रहने लगते हैं। उनसे घृणा करते हैं क्योंकि ऐसे लोगों को एड्स की पूरी जानकारी नहीं होती। लोगों के मन में एड्स के प्रति तरह-तरह की भ्रातियाँ हैं। एड्स कोई छूआछूत की बीमारी थोड़े ही है। एड्स रोगी एक आम आदमी की तरह कार्य कर सकता है। वह भी दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाने का अधिकार रखता है। लेकिन तुम्हारे साथ जो तुम्हारे घरवालों ने किया, वह एक जघन्य अपराध है। परन्तु रितिका सभी लोग एक जैसे नहीं होते। हमारे घर में तुम जब तक चाहो रह सकती हो। तुम्हें इस घर में किसी चीज़ की कमी महसूस नहीं होगी। और.....'

रितिका अभी भी उन टटोलती नज़रों के साथ भाभी की तरफ देखे जा रही थी। इससे पहले कि भाभी आगे कुछ बोल पाती, रितिका चिल्लाई, 'डाक्टर, आपको याद है पाँच साल पहले जब पिकनिक पर गए कालेज छात्रों की बस का एक्सीडेंट हुआ था और उनमें से एक लड़की को गंभीर चोटें आईं थी।'

भाभी ने दिमाग पर थोड़ा ज़ोर डालते हुए कहा, 'हाँ....हाँ....मुझे याद आ रहा है।'

'वह अभागी लड़की मैं थी डॉक्टर। वह दिन मेरे जीवन में एक ऐसी कालिख

पोत गया कि उसके बाद मेरे जीवन से प्रकाश धीरे-धीरे मंद पड़ता जा रहा है। वह दिन मेरी ज़िंदगी का सबसे मनहूस दिन था। उस दिन डॉक्टरों की लापरवाही से मुझे एच. आई. वी. संक्रमित खून चढ़ा दिया गया। उसी का परिणाम है कि मैं आज अपने सपनों से दूर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हूँ।' रितिका की आँखों से निकलने वाली अश्रुधारा ने उसके गालों को पूरी तरह से भिगो दिया था।

'ओह माय गाड! इसका मतलब यह हुआ कि अस्पताल की लापरवाही की सज़ा तुम्हें भुगतनी पड़ रही है। खैर रितिका, जो हुआ उसे बदला नहीं जा सकता। लेकिन मैं इतना कहूँगी कि तुम्हें दर-दर भटकने की ज़रूरत नहीं है। तुम इस घर में रहोगी और हम सब मिलकर तुम्हारी देखभाल करेंगे। देखना, तुम्हें अपने इस रोग का अहसास तक न होगा।'

भाभी की सहानुभूतिपूर्ण बातों से रितिका की आँखें एक बार फिर भर आईं थीं। उसे विश्वास हो गया था कि आज भी दुनिया में नेक लोग बसते हैं। शायद तभी दुनिया आगे खिसकती नज़र आती है। .....और एक तरफ उसके अपने हैं जिन्होने लोगों की बेमतलब बातों में आकर उसे रास्ते से हटाने का पूरा प्रबंध कर लिया था।

भैया और भाभी के काम पर जाने के बाद प्रभात और रितिका घर पर अकेले होते। वे अब एक-दूसरे के साथ काफी सहज हो गए थे। बातों ही बातों में पूरा दिन कब बीत जाता पता ही नहीं चलता था। प्रभात रितिका की हर संभव सहायता करता व उसे हर कदम पर जीवन से लड़ने का हौंसला देता। दोनों टहलने समुद्र के किनारे चले जाते। उनका ज़्यादातर समय अब समुद्र के किनारे ही कटता। उन्हें वहाँ जाना बहुत भाता था। रितिका को समुद्र का यह किनारा एक अजीब-सा सकून देता था।

रितिका इस परिवार का प्यार पाकर निहाल थी। वह अपनी बीमारी की मुश्किलों को लगभग भूल चुकी थी। वह अब इस घर का छोटा-मोटा कार्य भी निपटा लेती थी। इस परिवार के किसी भी सदस्य ने इसे यह महसूस नहीं होने दिया कि वह एड्स से पीड़ित है। इस घर में रहकर रितिका की ज़िंदगी ही बदल चुकी थी। समय बीतने के साथ प्रभात और रितिका एक-दूसरे के और नज़दीक होते गए। वे मन ही मन एक-दूसरे को दिलो-जान से चाहने लगे थे। फिर वह मौका भी आया जब प्रभात ने रितिका को अपने दिल का हाल सुनाया। रितिका भी मानों कब से इस घड़ी का इंतज़ार कर रही थी। रितिका के इकरार करते ही प्रभात ने रितिका को बाहों में भर लिया था।

दोनों का ज़्यादातर वक्त अब समुद्र के उस शांत किनारे पर ही बीतता जहाँ बहुत सी चट्टानों का ढेर था। उनमें से एक हल्की गुफ़ानुमा चट्टान प्रभात को अतिप्रिय थी जिसमें बैठ कर उसने अपनी अनेकों कविता और कहानियों को जन्म दिया था। प्रभात की इन रचनाओं के बारे में रितिका कहती, 'प्रभात, जानते हो मुझे जीवन से और दुनिया से संघर्ष करने की प्रेरणा कहाँ से मिलती है?'

'कहाँ से।'

'तुम्हारी रचनाओं और इस परिवार के दिए प्यार से।'

एक दिन जब प्रभात और रितिका समुद्र के किनारे टहल रहे थे तो रितिका अचानक प्रभात का हाथ छुड़ाकर समुद्र की ओर किसी चीज़ को देखकर पागलों की तरह एकदम से दौड़ पड़ी। एक जगह पहुँचकर उसने एक पत्थर हाथ में उठा लिया जो दिल के आकार का था। प्रभात भी दौड़ता हुआ

बदहवास-सा रितिका के पास पहुँचा और फूलती साँसों के साथ बोला,'रितिका, यह क्या बचपना है? तुमने तो मुझे डरा ही दिया था। दोबारा ऐसा मत करना।..... खैर, इस तरह से भागने का सबब जान सकता हूँ।' रितिका खुशी से चहकती हुई बोली,'अरे, मैं समुद्र में डूबने के लिए थोड़े ही दौड़ी थी।...देखो मेरे हाथ में क्या है?' रितिका ने हाथ आगे की ओर करते हुए कहा।

'क्या है?' प्रभात उत्सुकतावश बोला।

'यह देखो दिल के आकार का पत्थर।'

'देख तो रहा हूँ। पर इसका क्या करना है?'

'समझ लो यह हम दोनों का दिल है। इसके एक तरफ मैं तुम्हारा नाम लिखूँगी और दूसरी तरफ अपना। फिर हम इसे इस गुफ़ानुमा चट्टान के भीतर रख देंगे। जहाँ तुम अपनी रचनाएँ गढ़ते हो। जब तक ये पत्थर रहेगा तब तक तुम्हारा और मेरा साथ होगा।'

'रितिका, यह क्या बच्चों जैसी बातें करती हो। क्या यह निर्जीव पत्थर हमारे साथ की तक़दीर लिखेगा। पागल मत बनो और उसे यहीं फेंक दो।' प्रभात ने गुस्से में कहा।

'अरे, मैं तो मज़ाक कर रही हूँ। तुम तो बेवजह ही गुस्सा हो गए।' रितिका प्यार से बोली।

परंतु प्रभात के न चाहते हुए भी उसने वह पत्थर चट्टान के अंदर रख लिया था। आज प्रभात रितिका में एक अजीब-सा परिवर्तन देख रहा था।

दोनों की दीवानगी समय के साथ बढ़ती जा रही थी। उनका एक-दूसरे के बगैर जी पाना अब मुश्किल था।

'प्रभात, देखो यह लड़की कैसी है?' भैया ने प्रभात को एक लड़की की तस्वीर दिखाते हुए बोले।

'अच्छी है।'

'इसका मतलब मैं इस रिश्ते के लिए हाँ कह सकता हूँ।' भैया ने खुशी जाहिर करते हुए कहा।

'किसके रिश्ते के लिए भैया ?'

'अरे पगले तेरे और किसके लिए?'

भैया की यह बात सुनते ही प्रभात का चेहरा मुरझा गया। लेकिन वह चुप रहा। वह भैया को अपने और रितिका के बारे में बताना चाहता था। लेकिन इस वक्त बताना प्रभात ने मुनासिब न समझा।

लेकिन प्रभात की उदासी को उसके भैया ने पढ़ लिया था। वह प्रभात से बोले,'प्रभात मेरी नज़र से कुछ भी छुपा नहीं है। मुझे तुम्हारे और रितिका के बारे में सब पता है। मैं तम्हारे प्यार और जज़्बात को समझता हूँ। लेकिन तुम जानते हो रितिका ज़्यादा से ज़्यादा -पाँच या सात साल की मेहमान है। उसके बाद उसकी मृत्यु निश्चित है। तुम्हारे सामने अभी सारी उम्र पड़ी है। फिर तुम क्यों अपनी ज़िंदगी बर्बाद करने पर तुले हो।'

'लेकिन भैया मैं रितिका के अलावा किसी और लड़की के बारे में सोच भी नहीं सकता। मुझे इस बात की परवाह नहीं है कि रितिका कितने बर्ष तक जीवित रहेगी। लेकिन यदि मुझे रितिका न मिली तो मैं ज़रूर मर जाऊँगा।' प्रभात ने अपनी बात खुलकर रख दी थी।

प्रभात की ज़िंदगी को देखते हुए और रितिका और प्रभात के प्यार के आगे भैया और भाभी को हार माननी पड़ी। वे जैसे प्रभात की बात से डर से गए थे।

दूसरे दिन प्रभात उठा तो उसने पाया कि रितिका घर में कहीं नहीं है। उसने घर में यहाँ-वहाँ हर जगह ढूँढा लेकिन रितिका उसे कहीं नज़र न आई। जब थक-हार कर घर पहुँचा और रितिका को एक बार फिर से उसके कमरे में उसे देखने पहुँचा तो उसे वहाँ रितिका तो नहीं लेकिन उसके सिरहाने के नीचे से एक कागज़ का पन्ना बाहर की ओर निकला हुआ दिखाई दिया। कागज़ पर रितिका की ही लिखावट थी। उसने उसे पढ़ना शुरु किया-

मेरे प्यारे प्रभात,

इस घर में मुझे ज़िंदगी की वे अनमोल खुशियाँ नसीब हुईं जो शायद मुझे कभी न मिलती। इस परिवार ने एक ऐसे अजनबी शख्स को अपनी आँखों में बिठाया जो एक एड्स का मरीज़ था। मैं नहीं जानती कि कैसे इस परिवार का यह कर्ज़ मैं उतार पाऊँगी। और प्रभात मैं तुम्हारे प्यार में इस कदर खो गई कि मैं अपनी हकीकत ही भूल बैठी थी। यह तुम्हारे प्यार का ही असर था। लेकिन मैं चाहकर भी सच्चाई को नहीं बदल सकती। मैं एड्स की मरीज़ हूँ और मुझे पता है कि मेरे जीवन के कुछ ही वर्ष अब शेष बचे हैं। मैंने कल तुम्हारी और भैया की बात को सुन लिया था। मैं इस परिवार की किसी भी खुशी में अड़चन नहीं बनना चाहती। प्रभात मेरी बात मानों और हकीकत को पहचानों। तुम्हें मेरे साथ रहकर दर्द और गम के सिवा कुछ नहीं मिलने वाला। और प्रभात यदि तुम मुझसे सच्चा प्यार करते हो तो तुम्हें मेरी कसम, भैया वाली बात मान लेना। मुझे बहुत खुशी होगी।

सारा पत्र आँसुओं के पानी से भरा पड़ा था जिसकी वजह से कई शब्द धुँधले पड़ चुके थे। प्रभात ने आगे पढ़ना जारी रखा।

प्रभात, मैं सदा के लिए तुमसे दूर दुनिया के किसी अनजान कोने में जा रही हूँ। जहाँ मैं अपनी ज़िंदगी के शेष बचे हुए दिन तम्हारी याद के सहारे किसी अच्छे काम में लगाऊँगी। तुम्हारी प्रेरणा को सार्थक रुप देने का प्रयास करूँगी। मुझे ढूँढ़ने का प्रयास मत करना और भैया की बात को गंभीरता से लेना। तुम हमेशा मेरे दिल में मेरे देवता बनकर रहोगे। लेकिन मुझे ईश्वर से एक शिकायत हमेशा रहेगी कि उसने मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया? उसने मेरे हिस्से की खुशियों को किसे बाँट दिया होगा? प्रभात, इस जन्म में मैं तुम्हारी हमसफर बनने के काबिल नहीं थी। मुझे माफ करना मैंने बीच रास्ते में ही तुम्हारा हाथ छोड़ दिया। लेकिन मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना रहेगी कि वह अगले जन्म में तुम्हें ही मेरा हमसफर बनाए। इस जन्म के लिए बस इतना ही....। अब जाने की इजाज़त चाहती हूँ। आइ लव यु प्रभात..... तुम्हारी प्यारी रितिका।

चट्टान पर बैठे प्रभात की यादों के सफर को किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखते ही विराम लगा दिया था। प्रभात ने नज़र उठाकर देखा तो उसकी भाभी हमेशा की तरह उसे घर ले जाने के लिए आई थी। प्रभात की आँखों से बहते खारे पानी ने समुद्र को और भी खारा कर दिया था।

***

टीना आंटी का सपना

कादम्बरी मेहरा

यूके की कादम्बरी मेहरा 25 वर्ष के अध्यापन के बाद सेवा निवृत्त हुई हैं और अब स्वतन्त्र लेखन में व्यस्त हैं। कुछ जग की, पथ के फूल, रंगों के उस पार कहानी संग्रह हैं। हिन्दी संस्थान लखनऊ का भारतेंदु हरिश्चन्द्र सम्मान, कथा यू.के. का पद्मानंद साहित्य सम्मान और एक्सेलेंट सम्मान, कानपुर से सम्मामित हैं। 'पथ के फूल' म.सायाजी यूनिवर्सिटी, बड़ोदरा, गुजरात द्वारा एम. ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में निर्धारित।

संपर्क: 35, द एवेन्यू, चीम, सुर्रे 4 , एसएम 2 , 7 क्यूए , यूके

ईमेल: kadamehra@googlemail.com

तीन महीने की प्रसूति की छुट्टी खत्म होने में केवल दस दिन शेष रह गए। प्राची को वापस अपने विभाग का चार्ज सँभालना पड़ेगा। उसकी नौकरी साधारण नहीं है। वह प्रजनन संस्थान के कैंसर में विशेष योग्यता रखती है। इंग्लैंड के इस अस्पताल में उसे अपनी कर्मठता के कारण ऊँची पदवी पर निर्वाचित किया गया था। और दो वर्ष बाद वह कंसलटेंट बन जाएगी। नई माँ बनने के कारण, परिस्थितिवश यदि उसने इस्तीफ़ा दे दिया तो सदा के लिए उसके करिअर पर धब्बा लग जाएगा। इसके अलावा यदि यह नौकरी छोड़ दी तो दूसरी पता नहीं देश के किस कोने में मिले। अभी तो उसका पति विमल भी वहीं काम करता है। हड्डियों व जोड़ों का विशेषज्ञ है। गृहस्थी बिखर जाएगी। उसकी बच्ची दो माह की है। उसे कौन देखेगा ? प्राची की माँ स्वयं दिल्ली में डॉक्टर हैं और विभागाध्यक्ष भी, ड्यूटी छोड़कर नहीं आ सकतीं। जिस सास ने पहले वर्ष से ही बच्चे के लिए उपालम्भ देने शुरू कर दिए थे, वह न तो उसकी गर्भावस्था में आ सकीं- न जचकी में और न अब। स्त्री का शरीर तो सबके लिए एक जैसा होता है चाहे डॉक्टर हो या मालिन। पहला गर्भ प्राची के लिए भी आसान नहीं था। पहले तीन मास....कच्चे पक्के दिन....मतली, पित्त, बुखार, न खाने से कमज़ोरी। सब सहकर भी पूर ड्यूटी। पति बेचारा अपनी ड्यूटी के घंटों से बंधा। घर आकर खाने दाने की चिंता। जब उल्टियाँ रुकीं तो रक्तचाप बढ़ने लगा। हाथों पैरों की सूजन। फिर भी अस्पताल में पूरी ड्यूटी देती रही। रोज़ के पाँच छह ऑपरेशन तो उसे करने ही होते थे। बाएँ हाथ की सूजन के कारण हाथ की प्रमुख धमनी फँस गई..। ऑपरेशन करना पड़ा। एक हाथ से ही चलाती रही। राम राम करके आशिमा का जन्म हुआ। फूल सी बच्ची पाकर वह सब भूल गई। दोनों पति-पत्नी जी जान से बेटी पर निछावर हो गए ! ढाई महीने पलक झपकते गुज़र गए। पर अब ? कोई बच्चा सम्भालनेवाली न मिली तो क्या होगा ? छोटा शहर है उसका। दो चार चाइल्ड माइंडर्स जो हैं, भी उन्होंने लाल झंडी टाँग रखी है यानी जगह खाली नहीं है। दूर जगह से कोई आएगी नहीं। अंत के तंत उसे बेबी क्रेश में रखना पड़ेगा। यह सोचकर प्राची के आँसू निकल आए। क्रेश उसके अस्पताल से उलटी दिशा में है। पहले बच्ची को छोड़े फिर अपने काम पर जाए। सुबह साढ़े आठ बजे उसे पहुँचना भी होता है। कैसे निभेगी यह जटिल स्थिति ? क्रेश में दो महीने से लगाकर साढ़े तीन वर्ष तक के बच्चे आते हैं। परिचारिकाएँ भागते दौड़ते बच्चों के साथ अधिक व्यस्त हो

जाती हैं। बेचारे नन्हे-मुन्ने अपनी कॉट में पड़े भ्याँ भ्याँ रोते रहते हैं। उन नाक बहाते, खींचा तानी करते बालकों के साथ यह ओस की बूँद जैसी बच्ची!! प्राची का बाँध टूट गया। जी भर कर रो ली, पर आँसू पोंछने के लिए यहाँ कौन बैठा था पास ?

थोड़ा स्वस्थ हुई तो स्वयं को समझाया कि ऐसे ही रोते रहने से तो काम नहीं बनेगा। उस दिन शुक्रवार था। वीकेंड में विमल के दोस्त बच्चे को देखने आने वाले थे। घर की रसद भी लानी थी। भारतीय रसद और मिठाई के लिए उसे पंद्रह मील दूर साउथैम्पटन जाना पड़ता था। बेबी आशिमा को पहली बार उसने कैरिकॉट में लिटाया। कार की पिछली सीट पर उसे पेटी से सुरक्षित किया। पहली बार वह अकेली उसे लेकर बाहर निकली। रोज़ हज़ारों के दिल दहला देने वाले दु:खों की कहानियाँ धीरज और संवेदना से सुननेवाली डॉक्टर आज अपनी व्यथा से नर्वस हो उठी थी। आशिमा ज़रा भी कूँ कूँ करती तो वह गाड़ी रोककर फ़ौरन चेक करती।

मिठाई की दूकान के सामने ही उसे पार्किंग मिल गई। पहले उसने पिछली सीट पर बैठकर आशिमा को दूध पिलाया और उसकी नैपी बदली। उसे अच्छी तरह शॉल में लपेटकर गोदी में लिया और एक हाथ से किसी तरह गाडी बंद करके वह दूकान में घुसी। जैस-तैसे पर्स से अपनी लिस्ट निकालकर दुकानवाली को पकड़ाई जो पिछले आधे घंटे से उसको काँच में से ताड़ रही थी। प्राची की सूजी आँखे उसके रोने की गवाही दे रही थीं। अत: सामान तौलते हुए उसने स्नेह भरे स्वर में पूछा ''आपका पहला बच्चा है?''

''हाँ आंटी, घर में कोई नहीं था इसलिए ठण्ड में बाहर लाना पड़ा।''

''कोई कामवाली नहीं रखी ? ''

''आंटी ढूँढ़ रही हूँ। कोई मिली नहीं। काम पर जाती हूँ इसलिए जिस तिस का विश्वास भी तो नहीं किया जा सकता। फिर बच्ची को कैसे सौंप दूँ ? ऐसी कोई हो जो पूरे समय घर में रहे। क्योंकि हम डॉक्टरों की ड्यूटी बदलती रहती है। अलग कमरा है मेरे पास।''

दुकानवाली की आँखों में चमक आ गई। उसने अपने घर का फोन नंबर दिया। बोली ''मुझे फ़ोन कर लेना। शायद मैं कुछ कर सकूँ।''

उसी शाम को वह प्राची के घर अपनी कार से आ पहुँची। साथ मे उसकी बहन भी थी।

दुकानवाली का नाम रानी था और उसकी बहन टीना। रानी ने बताया कि वह एक पब में किचन में काम करती है। टीना, उसकी बहन पंजाब से उसके पास विजिट करने आई है। अगर प्राची उसे रख ले तो अगले छह महीने तो कट ही जाएँगे। पता ठिकाना, कार का नंबर आदि सब लिख लेने के बाद प्राची ने हामी भर दी। टीना आंटी वहीं रहने आ गईं।

ऐसे किसी को रखना गैरकानूनी है मगर प्राची के पास कोई विकल्प नहीं था। टीना आंटी वरदान साबित हुईं। घर और बच्चा दोनों सँभाल लिया। प्राची को वह डाक्टर मिस बुलाती थीं। दिन भर बाद जब प्राची थकी हारी आती तो वह उसे हुकुम देतीं .... ''चल लम्बी लेट जा। तेरी टाँगे दबा दूँ।'' प्राची को जिस ममता भरी माँ की ज़रूरत थी वह मिल गई थी। गरीब थीं, अंग्रेज़ी नहीं जानती थीं मगर दिल की साफ़ और प्रेम से लबालब। आशिमा को वह अपने भारतीय तरीके से पाल पोस रही थीं। रोज ताज़ा सौंफ का पानी उबालतीं। बच्ची और माँ दोनों को नियम से पिलातीं। प्राची निश्चिन्त हो गई। घर साफ़ सुथरा मिलता। कपड़े इस्त्री किए हुए यथास्थान। खाना वह बनाकर रखतीं। प्राची के बालों में तेल लगा देतीं। कोई मरम्मत का कपड़ा होता वह झट सुई उठा लेतीं।

एक दिन प्राची ने पूछा कि वह खुद तो बहुत सी चिट्ठियाँ लिखती थीं मगर कभी कोई पत्र गाँव से क्यूँ नहीं आता उनके लिए। वह मंद मंद मुस्कुरा कर बोलीं। ''खबर मिल जाती है। मेरे आदमी को लिखना पढ़ना नईं आता। मैं तो चर्च वाले भाई को खत डाल देती हूँ। वही आगे खबर भिजा देता है। गाँव में इतना ही भौत है।''

''आंटी आप बड़ी उदास रहती हो। '

''बच्चे याद आते हैं। मेरी भी एक बेटी है। वो भी बच्चा जम्मने वाली है। हुई तो तीन थीं मगर दो मर गईं। जब वो बीमार पड़ीं तो मेरी सास ने डॉक्टर को नहीं बुलाने दिया। कहा बुखार खाँसी आप ही ठीक हो जावेगी। उनका बुखार बिगड़ गया निमोनिया हो गया। चल बसीं।'' आंटी अपनी आँखें पोंछ रही थीं। कोई माँ अपने पेट की जाई संतान का दु:ख कभी भूल पाती है क्या ?

''क्या उम्र थी ? ''

''पहली चार बरस की थी और दूजी दो साल की। फिर तीन बेटों के बाद लता जम्मी। तीन भाइयों की अकेली बहन। बड़ी तक़दीर वाली। मेरे मरद की लाडो। दादी ने भी कभी उसे ऊँचा बोल नहीं बोला। सोनी सुलक्खणी। दो बरस पैले उसका ब्याह किया। सोलवाँ साल लगा ही था। लाख रुपैय्या कर्ज़ा लेकर बेटी ब्याही। सब खुश थे मगर महीने बाद ससुरालवाले उसको हमारे घर छोड़ गए। उसका ससुर चार गुंडे संग ले आया। कहता था लता के ग्रह खराब हैं। क्योंकि उसकी भैंस को कट्टा पैदा हुआ। उसे चाहिए थी कट्टी जो दूध देती। पूछो यह भी कोई वजह हुई। मगर लुच्चपेशा करना था उसने।''

आंटी ने बताया कि उनका आदमी लट्ठ बल्लम लेकर चला झगड़ा करने। मगर उसे समझाया बुझाया कि आज हारकर चले जाएँगे मगर कल फिर बदला लेंगे लता से। कौन रखेगा बेटी को। अगर कोई गंदा इल्ज़ाम लगा दिया तो गाँव भर के लोगों में मुँह दिखाना मुश्किल हो जाएगा। कोई बेटों को भी रिश्ते नहीं देगा। इसलिए गाँव के पंचों ने बीच में पड़कर फैसला कराया। उसकी नीयत खराब थी। सरपंच ने उसे दरीवाली खाट पर बैठाया, चाँदी की तश्तरी में मेवा और दारू पेश किए। पूछा उसकी मंशा क्या थी? दारू डकारकर वह ज़रा पिघला तो बोला कि तीन भाई और बाप कमानेवाले हैं। वो बूढ़ा और उसका बेटा अकेला। इस मुस्टन्डी को कौन खिलाएगा?

सरपंच ने ज़रा कड़ाई से फैसला दिया कि हमारे गाँव की कोई लड़की बाप के घर आकर नहीं बैठी इसलिए उसे बहू को अपने घर ही रखना होगा चाहे थोड़ा बहुता खर्चा

पानी हमें देना पड़े। सो लता का बापू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। समधी ने साल का एक मन अरहर, एक मन चना, एक मन उरद,एक मन मूँग, पाँच मन चावल और दस मन गेहूँ माँगा। दिवाली पर पाँच हज़ार नकद।

''समझो सारे घर का साल भर का राशन सब दिया जी। लुच्चा सबसे उच्चा। पर मेरी लता सुखी नईं। सारा दिन खेतों में काम। गाय-भैंस का चारा पानी। जानवर को भी टाइम से खाना दाना चाहिए मगर मेरी लता को उसकी सास बस रात को एक रोटी और दाल खाने को देती है। न दूध न फल। रब्ब उसे पुत्तर दे वरना समधी फिर छाती पर आ चढ़ेगा।'' कहते कहते आंटी फिर से अपनी आँखें पोंछने लगीं।

प्राची की रूह काँप गई। कितनी भूख लगती है गर्भिणी को। कहाँ है धरम और मित्रता ? कैसी हैं ये स्त्रियाँ, जिन्हें पराये पेट का दर्द नहीं ? क्या क्रूरता वंशानुगत होती है ? क्या पूरी-पूरी बिरादरी संवेदना हीन हो जाती है? क्यों यह सास सिर्फ एक माँ नहीं बन सकती? दया प्रेम क्या कमज़ोरी की निशानी मान लिया गया है ? उसकी अपनी सास क्यों नहीं आई उसकी मदद करने ? कितनी बार शुरू-शुरू में वह भूखी ही पड़ी रही थी; क्योंकि हाथ के दर्द से और कमज़ोरी से उससे उठा ही नहीं गया था। तड़प कर वह टीना आंटी से बोली, ''आंटी आप कुछ करिए न। कम से कम खुराक तो पूरी मिले वरना बच्चा पनपेगा कैसे? कमज़ोर माँ अगर जचकी में दम नहीं लगा पाई तो मरने मारने की नौबत आ जाएगी। कितनी नई माएँ मर जाती हैं हमारे देश में।''

''वही तो मैं चाहती हूँ। सब उप्परवाला रच्छा करेगा। तभी तो चिट्ठियाँ डालती हूँ।''

एक दिन कमरा संवारते समय प्राची को आंटी की धर्म पुस्तक दिखी। उत्सुकता वश उसने खोली तो देखा वह ' सुखमनी साहब' का गुटका था। प्राची को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा था कि लाल कपड़े में लिपटी बाइबिल होगी। प्राची ने पूछा कि आप सिख धर्म को भी मानती हो तो आपके लोग कुछ कहते नहीं। आंटी एकदम शर्मिन्दा हो गईं। बताने लगीं कि हूँ तो मैं सिख मगर इधर आने के लिए रानी के आदमी ने मुझे स्पोंसर किया। अब वह तो ईसाई है इसलिए उसकी रिश्तेदार को भी ईसाई होना ज़रूरी है न। इसलिए उसने मुझे बप्टिज़्मा करने के लिए कहा। मैं अपने गाँव के चर्च में चोरी छुपे गई और ईसाई बन गई। उसने मेरा नाम तेजिंदर से टीना कर दिया।

''रानी आंटी आपकी सगी बहन हैं?''

''हाँ एकदम सगी। साल भर बड़ी है...।''

''वह कैसे यहाँ आ गईं ? फिर अँगरेज़ से शादी ? ''

''बस जी धियों का क्या। पैदा कहाँ होती हैं और जा पड़ती हैं कहाँ ! रानी की कहानी तो लता से भी खराब है।''

आंटी ने बताया, उनका गाँव हरियाणा और पंजाब के बीच पड़ता है। उनके बापू के घर अच्छी खेती बारी है। मगर फसल पकने से पहले कई हफ्ते किसान खाली बैठा रहता है। सिर्फ उसे रखवाली करनी होती है। सो खाट पर पड़े-पड़े चरस गाँजा पीते हैं। गाँव में सब सोचते हैं कि इंग्लैंड में बहुत पैसा है इसलिए उधर ही जाना चाहिए। लड़कियों की गुत्तें मरोड़कर,उन्हें गन्दी गालियाँ देकर, दबा घोटकर, हर तरह से घर गिरस्ती के काम सिखाए जाते हैं मगर लड़के सड़कों पर छुट्टे मज़ा करते घूमते हैं। सिगरेटें पीना, लड़कियों को छेड़ना, जीने पहनकर कमर आँखें मटकाते हैं। लंदन, अमेरिका जाकर नालियाँ भी साफ़ कर लेंगे मगर घर में खाट भी नहीं बिछाएँगे। फसल कटाई के वक्त सब मूँछें मरोड़ेंगे,साफे कसेंगे और काम करने को यू पी, बिहार के मज़दूर रखेंगे। अपने साहब ज़ादे चौकड़ियाँ जमाएँगे, सिनेमा देखेंगे। अब आजकल मोबाइल ने और जड़ें पुट्टी हैं इनकी। सब अमरीकी होना चाहते हैं। फसल बिकती है तो एक साथ ढेर सारा पैसा आ जाता है मगर आधा कर्ज़ों में चला जाता है। किसान गरीब का गरीब। न हिसाब जानते हैं न ढंग से खर्चना।

एक बार गाँव में एक परिवार का रिश्तेदार इंग्लैंड से आया। उसने खूब अपने पैसे की धाक जमाई। उसको अपने लड़के के लिए एक लड़की की तलाश थी, जो घर गृहस्थी में दक्ष हो। अपने बेटे की बहुत तारीफें की और यह भी जता दिया कि उन्हें दाज- दहेज़ नहीं लेना। आंटी के पिता झाँसे में आ गए और बड़ी लड़की राजिंदर का रिश्ता कर दिया। अगले हफ्ते वह लड़का आ गया और झट शादी हो गई। राजिंदर विदा हो गई। किसी ने यह नहीं सोचा कि वह नरक में जा रही है। यहाँ आकर पता चला कि उस लड़के ने गोरी रखी हुई थी। वह उसके घर ही पड़ा रहता था। राजिंदर को सास की चाकरी में लगा दिया। सारे घर का काम वही करती थी। ससुर सीधा सा था। कुछ ख़ास नहीं कमाता था। सास सिगरेट की दूकान चलाती थी। सास को पीने की लत थी और पीकर चंडी बन जाती थी। अपने सिद्धड़ पति और बदमाश पुत्र का सारा गुस्सा वह राजिंदर पर निकालने लगी। उस पर दोष लगाती कि तू बाँझ है। राजिंदर क्या करती चुपचाप मार खा लेती थी मगर सास का ज़ुल्म बढ़ता गया। एक दिन किसी ने सुन लिया कि कोई चिल्ला रहा है। उसने झाँक कर देख लिया। राजिंदर ज़मीन पर पड़ी थी और सास उसकी छाती पर बैठी थी। राजिंदर के हाथ उसने दबा रखे थे और बेलन से उसके मुँह पर चोट करना चाहती थी। राजिंदर सिर को इधर-उधर झटक कर अपने को बचा रही थी।

वह आदमी चिल्लाया और उसने राजिंदर को बचा लिया। पुलिस थाना हुआ। राजिंदर को सरकारी मदद मिल गई। और उससे पूछा गया कि वह वापिस भारत जाएगी या यहीं रहना चाहती थी। भारत में सब तोहमतें लगाते, उसे ही बदनाम करते इसलिए वह बिरादरी के लिहाज़ की मारी इधर ही रहने लगी। पुलिस ने उसे उन ससुरालवालों से अलग कर दिया और उन लुच्चे लोगों से दूर साउथैम्पटन भेज दिया। वह जो भी काम मिलता कर लेती। एक बार एक रेस्टोरेंट में उसे बर्तन धोने और सफाई का काम मिल गया। वहीं जो खाना बनाता था उसे रानी बुलाने लगा क्योंकि यह आसान नाम था। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे को चाहने लगे और शादी कर ली। उसका पति एरिक बहुत अच्छे स्वभाव का है।

उसकी पहली बीबी छोड़ गई थी। रानी की सहनशीलता मेहनत और सच्चाई उसे भा गई। शादी के बाद वह उसे लेकर भारत गया और हम सबसे मिलाया। पूरे चार साल बाद रानी की असलियत माँ-बाप को पता चली।

''अभी क्या रानी आंटी के बच्चे हैं?''

''हैं न। बड़ा बेटा है। प्लंबिंग का काम सीख रहा है। लड़की ड्रेस बनाना सीखती है। पुत्तर अलग फ्लैट लेकर दूसरे शहर में रहता है। बेटी संग ही रहती है। एरिक ने रानी को कार चलाना भी सिखा दिया है। अपने आप बैंक बाज़ार कर आती है। गाँव में कोई जनानी घर का सौदा नहीं लेने जाती। मरद जाते हैं और पी खा के, तमाशे देख के आ जाते हैं।''

''आंटी आप इस पैसे से कर्ज़ा उतारेंगी ?''

''पैले ऐसा ही सोचा था। पर एरिक की सलाह है कि सारा बैंक में जमा कर दूँ।''

''आपके गाँव में बैंक है ? ''

''हाँ है क्यों नहीं ? मगर कोई कोई जाता है वहाँ। जिसको पढ़ना-लिखना आता है। जनानियों को तो वैसे भी हिसाब-किताब कहाँ आता है ? मगर रानी को देखकर मैंने भी तय कर लिया है कि गाँव जाकर बैंक में अपना अलग खाता खोल लूँगी। रानी ने बताया है कि यहाँ सब औरतें अपना पैसा अपने बैंक में रखती हैं। उसपर रखने के पैसे ऊपर

से मिलते हैं। लाख रुपये के पीछे छै सात हज़ार साल का। समझो मेरी लता के खाने का खर्चा निकल आएगा। मर्द कौन सा हमें देते हैं अपनी कमाई ? ''

''कैसे ? आप जानती हो कैसे करना होगा हिसाब।''

''नहीं मगर चर्च वाले पादरी भाई की मदद लेनी पड़ेगी। जब एरिक हमारे गाँव में आया था तो बहुत शोर मचा। हमारे घर बड़ी बूढ़ियों ने बहुत फिसाद किया कि मलिच्छ को घर में नहीं घुसने देना वह गाय का माँस खाता है। हालाँकि रानी ने उससे शादी इसी शर्त पर की थी कि वह बड़ा माँस नहीं खाएगा। और एरिक ने हमेशा अपना वादा

निभाया है। मगर बुढ़ियों से कौन उलझता? इसलिए पादरी भाई ने उसे अपने घर ठहराया क्योंकि वहाँ अंग्रेज़ी कमोड वाला गुसलखाना भी था। उसने बहुत ख़ातिररदारी की। वह मद्रासी है। पहले उसका नाम जगन्नाथ होता था मगर वह किरिस्तान बन गया। चर्च वालों ने उसे जैक नैथन बना दिया। उसका बाप झाड़ू लगाता था। मगर जैक नैथन बहुत साफ़ सुथरा रहता है। पढ़ लिखकर उसने पादरी ट्रेनिंग ली। गाँव में सबसे साफ़ उसी का घर है। हमारा ग्रंथी गाय भैंसों के तबेले में रहता है। उसके घर जाओ तो पैले गोबर कीचड़ से पूरा आँगन पार करना पड़ता है। सीधे मूँ बात भी नहीं करेगा। बच्चों को गालियाँ देकर बुलाता है। जैक हमेशा हैलो बोलेगा बच्चों से। एरिक हमारे घर आकर भी बहुत खुश रहा। मेरे बाप ने दावत रखी। बताशे बाँटे। ढोलकी बजी और भाँगड़ा हुआ। एरिक और रानी भी नाचे। तभी से पादरी हमारे परिवार को जानता भालता है। मेरी चिट्ठियाँ भी वह पहुँचा देता है लता को चोरी छुपे।''

''अगर वह चिट्ठियाँ पहुँचा देता है तो आप उससे कहकर अपनी बेटी को खाना भी क्यों नहीं भिजवा देतीं ?''

''मेरी बेटी का घर अलग गाँव में पड़ता है। हमारे यहाँ अपने ही गाँव में शादियाँ नहीं करते। कभी-कभी तो बेटियाँ मर जाती हैं तो ससुरालवाले बस खबर भिजवा देते हैं।'' यह सोच कर आंटी फिर रोने लगीं।

''रोइए मत, कुछ करिए। '' प्राची की आँखें खुद ही नम हो आईं थीं।

अगले इतवार को जब वह रानी से मिलकर आईं तो खुश थीं। एरिक ने गाँव के पादरी से फ़ोन पर बात की और लता को खाना भिजवाने का इंतजाम करवा दिया। लता के गाँव की एक औरत रोज़ दुपहर को, जब लता खेत पर होती है, उसे घी वाली रोटियाँ और दाल सब्जी खिलाएगी। साथ ही लस्सी और फल भी देगी। वह चर्च की तरफ से दाई का काम सीखी है, अत: वही उसकी सेहत की देखभाल भी करेगी। पादरी भाई को टीना आंटी का आदमी इस काम के लिए 600 रुपये महीना देगा।

''अगर लता की सास को पता चल गया तो ? ''

''डरना नहीं इनसे। एरिक कहता है की डरे को सब डराते हैं। ''

''लता के ससुरालवाले उस औरत को भगा देंगे। ''

''चर्च वालों से कोई पंगा नईं लेता क्योंकि वह मुफ़्त इलाज करते हैं। दवाइयाँ बाँटते हैं। बच्चों को टीका लगाते हैं। बरसातों में आँखें दुखने आ जाती हैं तो दवाई की बूँदें डालते हैं। कान बहते हैं तो ड्रॉपर से कानों में दवाई डालते हैं। एक स्कूल भी खोला है मगर हमारे लोग वहाँ बच्चों को पढ़ने नहीं भेजते। पान गुटखा खाने को पैसे हैं मगर फीस देते नानी याद आती है। लड़के सारा दिन पतंगें उड़ाएँगे, मार पीट करेंगे, गालियाँ देंगे मगर स्कूल नहीं जाएँगे। न ही कोई काम सीखेंगे।''

प्राची सोचने लगी कि क्यों हमारे मंदिर भी बच्चों को पढ़ाने का इंतजाम नहीं करते ? सुबह की पूजा आरती के बाद ठाकुर शयन करते हैं। मंदिर बंद हो जाते हैं। फिर शाम को चार बजे खुलते हैं। इतने बड़े-बड़े आँगन खाली पड़े रहते हैं। क्यों नहीं उसमें बच्चे पढ़ लिख सकते ? इतना पैसा कहाँ जाता है ? हमारे ठाकुर सोने चाँदी से जड़े जाते हैं मगर कोई मंदिर दवाइयाँ क्यों नहीं बाँटता गरीबों को? चर्च वाले फिर अगर जगन्नाथन को जैक नैथन बना देते हैं और पढ़ा-लिखा कर पादरी बना देते हैं तो हमें बुरा क्यों लगता है ?

आंटी बताने लगीं कि हमारे लोग बस फायदा उठाते हैं। आपस में भी किसी की मदद नहीं करते। सामने देखेंगे कि कोई अपनी स्त्री या बहू बेटी को मार रहा है पर कोई उठकर बीच बचाव नहीं करेगा। कोई बड़ी बूढी मार खाती बच्चियों को उठकर बचा नहीं लेती। न कोई पासी पड़ोसी कहता है कि बहु बेटियों पर ज़ुल्म मत करो। कि बच्चों को मारना पाप है।

''औरतें तो और भी खराब। दुनिया भर की बातें रस ले लेकर कहे सुनेंगी मगर एक दूसरे की मदद नहीं करतीं। बाप दादा चाँटे मार देंगे बच्चों को मगर पास बैठाकर अच्छी बातें सिखाने का वक्त नहीं। कोई हुनर नहीं, न बात करने की तमीज। मेरा भाई इधर आया था। पिछले साल एरिक ने उसे भी

बुलाया था। जब पूछा कि क्या काम जानता है

तो उसका बोल ही नहीं फूटा। छै महीने भाँडे मल के वापिस चला गया। इधर तो सब लड़कों को लकड़ी का काम, न तो बिजली का काम, न तो टूट फुट जोड़ने का काम स्कूल में ही सीखाते हैं। रानी का बेटा सब जानता है।''

''आंटी आप फिर भी कहती हैं की लता को बेटा ही दे भगवान् ? ''

''क्या करूँ। जो अगर पहला बेटा न हुआ तो सास ने रोटी भी नहीं पूछनी। पहला बेटा हो जाने से माँ-बाप को भी देना लेना एक ही बार करना पड़ता है। वरना पहले-पहले बच्चे का दो। फिर जब दोबारा लड़का होए तो दो। हमारी रिवाजें ही बहुत खराब हैं। ''

आंटी कुछ देर चुप हो रहीं। फिर हिसाब लगा कर बोलीं कि बच्चा तो शायद उनके जाने के बाद ही होगा। इसलिए वह पादरी भाई से कहकर एक मोटर का इंतजाम करेंगी और लता को अपने घर ले आएँगी। इसपर तो सास कुछ नहीं कहेगी। क्योंकि उसे देख-भाल करन का ज़िम्मा नहीं लेना पड़ेगा।

''बहू की सेवा करते नानी मरती है। जब बच्चा आ जाए तो बनारसी सूट माँगती हैं। न देओ तो लड़की की शामत। यह भी कोई धर्म हुआ ? रानी के लड़का हुआ या लड़की दोनों बारी एरिक के सारे रिश्तेदारों ने उसको प्रेजेंट दिए। बच्चों को दिए सो तो गिनो ही मत। एरिक की बुड्ढी चाची आए दिन केक बनाकर रानी को खिलाने आती थी। ये सिर्फ हमारे हिन्दुस्तान में उलटा माँगते हैं। अरे भाई ख़ुशी तुम्हारे घर आई है। लड़की के माँ-बाप का कंघा क्यों करते हो ? कोई टैक्स देना है राजा का ? फिट्टे मूँ।'' कह कर आंटी चुप हो रहीं पर फिर कुछ मन में विचार जगा। बड़े इत्मीनान से फैसला किया।

''जो मेरी लता ने बेटी जन्मी तो मैं उसे अपने पास ले आऊँगी और चर्च के स्कूल में पढ़ने भेजूँगी।'' टीना आंटी की आँखों में भविष्य का सुनहरा सपना तैर रहा था।

***

लघुकथा

सिस्टम

संदीप तोमर

महानगर का प्रत्येक चौराहा व्यस्त, लाईटों से नियंत्रित ट्रेफिक...जैसे ही रेड लाईट होती एक साइड की गाड़ियों में ब्रेक लग जाते....तकनीकी ने मनुष्य को यांत्रिक बना दिया, जिसे लोग सिस्टम कहते हैं। महानगर तो जैसे चलते ही सिस्टम से हैं। एक सिस्टम ये भी है कि चौराहे पर गाड़ियाँ रुकते ही अख़बार, खिलौने इत्यादि बेचने वाले गाड़ियों की ओर दौड़ पड़ते हैं। कभी छोटे बच्चे अपनी कमीज़ निकाल कर हाथ में ले शीशे साफ़ करने लगते हैं और एक रुपये के सिक्के के लिए हाथ फैलाने लगते हैं। किसी को दया आ जाए तो शीशा उतार कर उन्हें सिक्का पकड़ा दे वर्ना गाड़ी तो साफ़ हो ही गई।

अभी रेड लाईट हुई तो 14-15 साल की साधारण नैन-नक्श की एक छरहरी लड़की एक कार की तरफ दौड़ी। वह इस कदर ग़रीब थी कि शरीर को ढकने के लिए पूर्ण कपड़े भी नहीं थे। बदन अधिकांश उघड़ा हुआ था, दुपट्टे की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। उसकी स्थिति उसकी ग़रीबी को बयाँ करने के लिए काफी थी...

सलेटी रंग की हौंडा सिटी के शीशे पर उसने दस्तक दी। काला शीशा नीचे सरका। लड़की ने कार में बैठे युवा से याचना भरी दृष्टि से कहा--''साहब एक गुलाब ले लीजिए ना,आज तो एक भी नहीं बिका।''

युवक ने कला चश्मा नीचे सरका कर उसके बदन को ऊपर से नीचे तक भरपूर निहारा। थोड़ी गर्दन शीशे से बाहर निकाली, बोला-''ऐसी बात है, चलो हम सारे फूल खरीद लेते हैं। एक काम करो, फूल गाड़ी में पीछे रख दो।''

'जी बाबू जी।'

'कितने पैसे हुए?'

'बाबूजी 300 सौ रुपये...'

'अरे मेरा पर्स पास ही मेरे शो -रूम पर है, तुम गाड़ी में बैठो, मैं तुम्हें वहाँ से पैसे दे देता हूँ।'

लड़की खुश थी कि उसके सारे फूल बिक गए। उसने खिड़की खोली और गाड़ी में बैठ गई।उसे लगा आज सारे दिन धूप में नहीं भटकना पड़ेगा।वह सोचने लगी, बाबूजी कितने अच्छे हैं, उन्होंने उसे गाड़ी में भी बैठाया है, आज तक तो लोग उसे गाड़ी छूने भी नहीं देते थे। लाईट के ग्रीन होते ही हौंडा -सिटी ने रफ़्तार पकड़ ली थी।

वह लड़की फिर कभी उस चौराहे पर दिखाई नहीं दी। रेड लाइट पर गाड़ियों के रुकने और ग्रीन होने पर स्पीड पकड़ने का सिस्टम जारी है..

***

संपर्क: D 2/1 जीवन पार्क, उत्तमनगर, नई दिल्ली - 110059
ईमेल: gangdhari.sandy@gmail.com
फोन: 8377875009

किऊ गार्डन के पेड़

पंजाबी कहानी : गुरनाम गिल
हिन्दी अनुवाद: शशि सहगल

गुरनाम गिल 15 सितंबर, 1943 को जन्मे पंजाबी के एक जाने माने प्रवासी कहानीकार हैं। भारत से इंग्लैण्ड जाकर बसे लोगों की पीड़ाएँ लगभग एक सी हैं। अतीत-राग, मूल्यों का संघर्ष, नस्ली भेदभाव का सामना और एक बेगानापन। किऊ गार्डन के पेड़ जड़ों से उखड़े और बाहर जाकर अपनी जड़ें जमाने की कोशिश में ज़िन्दगी काट देने के कहानी है। किऊ गार्डन के पेड़ बाहर से लाकर ब्रिटेन में रोपे तो जाते हैं लेकिन उनपर फल नहीं आता। यही हालत प्रवासियों की है और वे यह पीड़ा भोगते रहने के लिए अभिशप्त हैं।

संपर्क: एफ़-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
ईमेल: partapsehgal@gmail.com
फोन: 9899166929

इंग्लैण्ड देखने का मन था। जिस व्यक्ति ने कोई परदेस यात्रा न की हो उसे तो और भी अधिक दिलचस्पी होती है। यह सब तो भाई साहब की कृपा है। अगर वे विलायत न आए होते तो मेरा शौक कहाँ पूरा होना था। भारत में एक टीचर की सामर्थ्य परिवार को पालने तक की सीमित होती है।

कल रात की बात है। भाई साहब और उनका दोस्त सुभाष पब लेकर गए। मैंने पहली बार पब देखा था। ऐसी जगह बीयर पीने का मज़ा अलग ही होता है। नशीला माहौल। गलीचे बिछे हुए। सुन्दर और कीमती फर्नीचर। खूबसूरत और मुस्कराहट बाँटती बार-मेड्ज़। एक पतली सी, नीली आँखों और लम्बे काले बालों वाली और उसके सुडौल अंग। मन हो रहा था कि बीयर पीता जाऊँ और उसे देखता रहूँ। शायद मैं उसे लगातार देखे जा रहा था, इसीलिए भाई साहब ने कहा, ज़्यादा नहीं देखते। मुझे लग रहा था जैसे मैं इन्द्रपुरी में बैठा होऊँ। मेरे मुँह से स्वाभाविक रूप से निकला था-''चलो भाई साहब, आखिर आपके बहाने हमने भी स्वर्ग देख ही लिया है।''

''कोई बात नहीं धीरे-धीरे स्वर्ग की परतें खुलेंगी तो सब कुछ पता चल जाएगा।'' मुझे संबोधित करते हुए सुभाष ने कहा।

भाई साहब पहले हल्का सा हँसे और फिर ऊपर छत की ओर देख कर कहने लगे-''हम पहले-पहल जब आए थे तो हमें भी यही भ्रम हुआ था।''

''पर इसमें भ्रम की कौन सी बात है? आप स्वयं कहते हैं कि यह तो यहाँ किसी भी साधारण काम करने वाले का जीवन है। काम के बाद की ऊब को बहलाने का साधन। भारत में ऐसी जगह रोज़ जाना तो किसी जज के भी बूते से बाहर की बात है।'' अपने 'खुद' को जानने के लिए बात की तह तक जाना चाहता था।

सुभाष ने जग जितने बड़े गिलास को एक ही साँस में आधा करते हुए कहा-''तेरे घूमने का समय कम है और इन बातों को समझने के लिए यहाँ लम्बे अर्से की ज़रूरत है। जैसे गाँव के किसान के लिए गन्ने का रस, दही-लस्सी, साग और मूलियाँ आदि साधारण चीज़ें हैं पर महानगर का वासी इन्हीं चीजों को तरस जाता है। ऐसे ही ये बीयर और बार महानगरों की चमक है। मज़दूर को कोल्हू का बैल बनाए रखने के लिए। इन सभी बातों के पीछे साम्राज्य के हितों का हाथ होता है।'' सुभाष ने मुझे समझाने की कोशिश की, पर बात मुझे अभी तक स्पष्ट नहीं हुई थी।

भाई साहब ने सुभाष को संबोधित करते हुए कहना शुरू किया-

''वास्तव में हमें परदेश में रहना ही नहीं आया। हमारी उदासी और अकेलेपन का यही एक कारण है।''

तब मुझे ''उदासी और अकेलापन'' जैसे शब्द बड़े बेकार और अजीब से लगे थे। मैंने मन ही मन सोचा कि यह तो खाते-पीते मौत को छड़ियाँ मारने वाली बात हुई। कैसा अकेलापन और कौन सी उदासी। ऐश कर रहे हैं। रंगीन टी.वी. और नई कारें-नवाबों सा ठाठ-बाट है।

हमने गिलास खाली किए और घर लौटने को बाहर निकले। वह सुंदर सी बार-मेड अभी भी मुस्कराती और मटकती हुई गिलास भरे जा रही थी।

रास्ते में सुभाष ने भाई साहब को कहना शुरू किया-''तुम्हें शायद याद हो या न हो।

जब गुरबख्श सिंह इंग्लैण्ड आया था तो वह दो दिन हमारे घर रुका था तो उसने भी यही कहा था कि सज्जनों भविष्य में जीना छोड़ो। न तो परदेश आया कोई लौटा है और न ही अपने भारत जाकर रहना है। बेहतर होगा कि यहाँ के लोगों से साँझ पैदा करो। यहीं पर अपने परिवार बुला कर रहो। इतिहास साक्षी है कि परदेश आए लोग अपने देश में कम ही जाते हैं। सिर्फ उनके टैलीग्राम जाते हैं। इसलिए ''आज'' को जीना सीखो। जो 'आज' नहीं जी सकता उसे ''कल'' भी जीने का तरीका नहीं आएगा। 'कल' सदा 'आज' से बेहतर ही होता है।''

''हाँ हाँ, मुझे अच्छी तरह याद है। जब मैंने उन्हें कहा था कि आप खुद तो परदेश से लौट कर अपने देश में रह रहे हो, और हमारी हिम्मत तोड़ रहे हो'', तब हँसते हुए उन्होंने कहा था कि ''यार सभी थोड़े ना गुरबख्श बन सकते हैं।''

''भाई बात तो एकदम सच है, पर हर किसी ने गुरबख्श सिंह थोड़े न बन जाना है।'' हम सभी ने एक स्वर में कहा।

पहले दो हफ्ते तो मैं बोर सा हो गया। घर में अकेला बैठा-बैठा ऊब जाता। समय बिताने के लिए यह भी अच्छा ही हुआ कि भाई साहब मुझे रोज़ एक भारतीय फिल्म दे जाते जिसे मैं वीडियों पर लगा कर देख लेता था। वे दोनों जने छह बजे घर लौटते थे। बच्चे चार बजे आते थे। वे आते ही फ्रिज में कुछ ढूँढ़ने-ढूँढ़ने के बाद या तो टी.वी. को चिपक जाते या अपने कमरों में चले जाते। मैं उनसे घुलने-मिलने की कोशिश करता पर वे मुझमें कोई दिलचस्पी न दिखाते। इस कारण उनके घर में रहते हुए भी मैं अकेला ही महसूस करता।

वीक-एण्ड का मैं हमेशा ही बेसब्री से इंतज़ार करता रहता था, क्योंकि उस दिन भाई साहब मुझे कहीं न कहीं घुमाने फिराने ले जाते थे। कभी किसी दोस्त या रिश्तेदार के घर या कभी कोई नई जगह दिखाने। एक बार इतवार का दिन था। हल्का सा गर्म और धूप वाला महीना चाहे जून का था, पर धूप चैत मास जैसी थी। भैया भाभी ने मुझे समुद्र दिखाने का कार्यक्रम बना लिया। मैं बड़ा

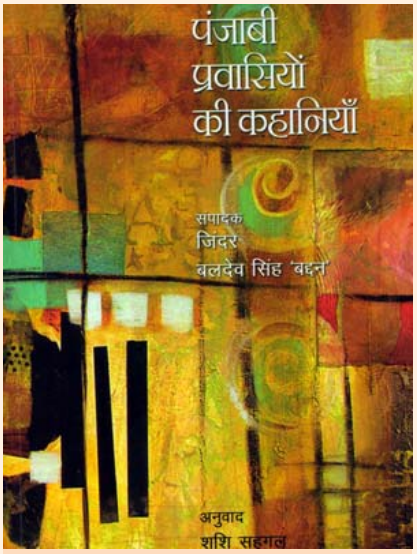

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'प्रवासी पंजाबियों की कहानियाँ' से साभार

खुश था। मैंने कभी भी समुद्र नहीं देखा था- अगर देखा भी था तो बस फिल्मों में। उसी के आधार पर मैंने अपनी किसी कहानी में समुद्रतट के वातावरण को चित्रित किया था। लेकिन इस इतवार मैं वास्तविक समुद्र देखने जा रहा था। हमारे साथ सुभाष और उसका परिवार भी जा रहा था। भाई साहब और सुभाष की बड़ी पक्की दोस्ती थी। दोस्ती वहीं होती है। जहाँ समान विचार और मानवीयता के गुण साँझे होते हैं।

कारों में एक घंटे के सफर के बाद हम समुद्र तट पर आ पहुँचे थे। नीले पानी की लहरें किनारों पर इस तरह बढ़ती आ रहीं थीं जैसे हर आने वाले को ''जी आया नूँ'' कह कर स्वागत कर रही हों। दोनों परिवारों के बच्चे फ़न-फेयर के खेल तमाशों की ओर भाग गए। भाभी और सुभाष की पत्नी दोनों उनके पीछे हो लीं। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो माएँ ऐसा ही करती हैं। बच्चों को किसी आदमी के साथ-साथ चलने की ज़रूरत नहीं रहती। हम तीनों लोग 'बीच' पर चलने लगे। वहाँ की रौनक देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वहाँ पर गोरों का कोई त्योहार हो। भाई साहब समुद्र के पानी के गुण बताते जा रहे थे। इस पानी में अनेक प्रकार के मिनरल होने से इसमें नहाते समय हमारा शरीर, रोम छिद्रों द्वारा इनको जज़्ब कर लेता है। ''आप लोग तो महीने दो महीने में एक बार यहाँ आते रहते होंगे?'' मैंने पूछा।

''कहाँ यार! जब से हम इंग्लैण्ड आए हैं, पता नहीं दूसरी या शायद तीसरी बार आए हैं। इतनी फ़ुरसत कहाँ? और दूसरा अपने शौक की भी बात होती है।'' सुभाष ने उत्तर दिया।

''जैसे हम लोग गोरों के बीच रह कर भी इनसे सामाजिक तौर पर घुलमिल नहीं सके, वैसे समुद्र के पास रहते हुए भी हम इससे दूर ही रहते है।''

भाई साहब समुद्र को दूर तक देखते हुए बोले, जैसे उन्होंने समुद्र के दूसरे छोर का अनुमान लगा लिया हो।

पानी-लहरों के रूप में किनारे पर अपने पद-चिन्ह बनाता हुआ आ रहा था। रेत पर बैठे लोग सरकते हुए किनारे पर आ रहे थे। कुछ गोरी युवतियाँ ब्रा उतार कर औंधी लेटी हुई थीं। जब पानी उनके नीचे आ गया तो सीने पर तौलिया रखे वे दूर किनारे पर फिर से लेट गईं लेकिन शरारती पानी, उनसे छेड़-छाड़ करने को, उनके पीछे ही चला आ रहा था। एक भारतीय औरत साड़ी समेत ही नहा रही थी कि वह साड़ी के होते हुए भी जैसे नग्न सी हो गई थी।

''यार, हम भी नहा कर देखें।'' लगता था जैसे कुलबीर भाई साहब के मन में भी लहरों से खेलने की उमंग अंगड़ाई ले रही थी। ''रहने दो, हम लोग कभी नहाए नहीं ना, इसलिए शर्म सी आती है।'' सुभाष ने दुविधा वाली बात कह दी।

इतने में एक तराशे हुए बदन जैसी मेम हमारे पास से निकलती हुई, आगे पानी की ओर जाने लगी। धूप और मालिश के कारण उसका मोम सा शरीर ताम्बई रंग का सा लग रहा था।

''यार इन औरतों को अपना जिस्म तराश कर रखने का कितना शौक है।'' भाई साहब उसकी देह को देखते हुए बोले। सच में, उसके शरीर पर आवश्यकता से अधिक, रत्ती भर भी चर्बी नहीं थी। ''उधर अपनी औरतों को देखो, गुँधे हुए आटे की परात जैसे पेट। ढले हुए पुट्ठे...।'' सुभाष ने तुलना करते हुए कहा।

''अपने यहाँ आदमियों का भी शरीर गोरों के मुकाबले में यही हाल है। हम भी

इसमें शामिल हैं। कपड़े उतारने में यो ही शर्म नहीं आती।'' भाई साहब बात करते-करते ज़रा रुक गए, हम फिर उधर पालथी मार कर बैठे एक गुजराती से दिखने वाले बंदे की ओर इशारा कर के बोले-''ये देख, कैसे मटके सा पेट निकाले बैठा है, जैसे किसी ने अपनी जाँघों पर बड़ा तरबूज़ रखा हो। महात्मा बुद्ध सा नहीं लग रहा?''

''फिर हम दोनों इतने खराब तो नहीं। चल उतार कमीज़।''

''चल यार, तू कब-कब कहता है।''

उन्होंने पानी में छलांग लगाई। मन तो मेरा भी बहुत हुआ, पर मैंने लम्बी सी नेकर पहनी हुई थी, इसलिए मैं शर्माता ही रह गया। उन्होंने मुझे सागर में कूदने के लिए कई इशारे किए, पर ठंड लगने का बहाना बना कर मैं किनारे पर ही खड़ा रहा।

लगभग आधे घंटे बाद, उन्हें कुछ सर्दी सी महसूस हुई और वे बाहर निकल आए।

''यार बड़ा मज़ा आ गया। हमने यों ही शर्माते रहना था।''

''घटियापन का ज़्यादा अहसास भी बुरा होता है। हमारी तुलना में गोरों में कौन सी खास खूबी है? सिवाय सफेद चमड़ी के।''

टाइम देखा तो शाम के चार बज चुके थे। सुभाष को प्यास लगी और उसने बीयर पीने की इच्छा ज़ाहिर की। लेकिन भाई साहब ने सलाह दी कि घर पहुँच कर पार्क वाले पब में बैठ कर पिएँगे।

कार में आते ही मुझे उनकी बातों से ऐसा लगा कि जैसे भाई साहब की शिकायत काफ़ी हद तक दूर हो गई हो। उनके चेहरे पर न तो किसी उदासी की परछाईं थी और न ही मानसिक अकेलेपन की। उल्टा, मुझे तो ऐसा महसूस हो रहा था कि वे अपने जीवन-वृक्ष की जड़े इस विदेशी धरती के माहौल में जमते हुए महसूस करने लगे हैं। उनकी रूह उनके बच्चों जैसी लग रही थी।

घर से जाते हुए, हम तीनों लोग पार्क वाले क्लब में पहुँच गए। हम लोग अपने गिलास भरवा कर अभी एक टेबल पर बैठे ही थे कि शरारती से गोरे लड़कों की टोली जान-बूझ कर हमारे पास आ बैठी, किसी शरारत के इरादे से। वह उनकी हरकतों से साफ लग रहा था।

थोड़ी देर बाद उनमें से एक गोरे ने हमारी ओर चेहरा घुमाया और कहा-''...गैट लाईटर?''

''सॉरी, वी डोंट स्मोक।'' सुभाष ने छोटा सा जबाब दिया।

''बट, यू डू ड्रिंक...।''

फिर वे सभी ज़ोर-ज़ोर से ऊँचा-ऊँचा हँसने लगे।

इतने में एक लाल टी-शर्ट वाला, बिल्डर किस्म का गोरा ज़ोर से डकार लेता हुआ सुभाष से पूछने लगा-''वट इज़ योर नैशनेलिटी?''

''ब्रिटिश''-सुभाष का उत्तर संक्षिप्त था।

इस बात पर वे फिर सभी हँसने लगे।

एक शरारती सी मुस्कान के साथ उस गोरे ने फिर पूछा-''आई मीन, वट कन्ट्री यू कम फ्रॉम?''

''चल छोड़ यार। इन्हें क्या पता नहीं है? ऐसे ही साला छेड़ने की बात करता है। चल आज घर बैठ कर पीते है। और थके भी हुए हैं।'' यह कहते हुए भाई साहब खड़े हो गए, साथ में हम भी।

काऊंटर की एक ओर से बाहर निकलने लगे। काले बालों वाली बार-मेड ने मुस्कराते हुए हमें 'बाय' कहा। यह वही गोरी थी जिसकी मुस्कराहट ने पहले ही दिन मेरा दिल लूट लिया था। पर आज मुझसे 'बाय' का जवाब भी न दिया गया। उसकी मुस्कान मुझे बड़ी फ़रेबी सी लगी। मुझे ऐसा लगा कि इन मुस्कानों का कोई अर्थ नहीं होता, जैसे यह केवल आदत कोई होती हो।

घर आकर बैठते ही भाई साहब ने व्हिस्की के बड़े-बड़े पैग गिलासों में डाले और पब वाली बात भाभी जी को सुनाने लगे।

''मैं तो हमेशा यही कहती हूँ कि अगर पीना बड़ा ज़रूरी है तो घर बैठ कर पीओ। इन पबों-क्लबों में क्या रखा है?'' सुनते ही भाभी जी की यह प्रतिक्रिया थी।

''पर डैडी आप तीन लोग थे। तीनों ही जवान। आपसे उन्हें चार लगाते'' पप्पू बोला।

''कंजर, इतना क्या कम है कि हम खुद अपने घर आ गए हैं। तुम्हें उठा कर नहीं लाना पड़ा।''

''हमने सोचा, कल तेरे चाचा को किऊ-गार्डन दिखाना है। कल तक तो साबुत बचे रहें।'' सुभाष ने भी पप्पू से मसख़री की। चाहे पहले की तुलना में मैं इंग्लैण्ड के बारे में काफी कुछ जान चुका था, लेकिन फिर भी आए दिन, मेरे लिए कुछ न कुछ नई बात होती। ''किऊ गार्डन किस बला का नाम है?'' मैं यह जानने के लिए उत्सुक था।

आख़िर मैंने भाई साहब से पूछ ही लिया कि ''किऊ गार्डन'' क्या चीज़ है?''

''दूसरे देशों से लाए गए फूल, पौधे, पेड़ और दूसरी वनस्पतियाँ है जो इंग्लैण्ड के मौसम में नहीं हो सकते।''

''फिर उन्हें यहाँ कैसे उगाया और लगाया गया है,'' मैं बड़ा हैरान था।

''इन्होंने बहुत खर्चा कर के शीशे के बड़े-बड़े कमरे बनाए हुए हैं, जहाँ धूप भी पड़ती है और सूर्य की गर्मी भी। लोहे के पाइपों द्वारा भाप को अंदर भेज कर, भारत के सावन-भादों जैसा मौसम बनाया जाता है। ऐसे मौसम में गन्ना, कपास, मक्की, केला तथा अन्य सैकड़ों प्रकार के पौधों को मौसम के अनुकूल रखा गया है। पवन-पानी और ऋतुओं को पौधों के अनुकूल रखने का यत्न किया जाता है। आम और जामुन के भी बहुत से पेड़ों को, उनके अस्तित्व को बचाए रखने के लिए उन्हें इस वातावरण में जीने को विवश किया जाता है।''

मैंने देखा भाई साहब को नशा हो चुका था। गिलास की व्हिस्की को खत्म करते हुए कहने लगे-

''भाई! मेरे और सुभाष जैसे तुझे यहाँ पर और भी बहुत से लोग मिलेंगे। हम सभी किऊ गार्डन के पेड़ हैं। हमारी जड़ें ऊपरी हैं। इस धरती के वातावरण में हमने अपनी जड़ें जमाने की बहुत कोशिश की, पर साली जम ही न सकीं। या फिर हमें जमानी ही नहीं आईं। किऊ गार्डन में लगे आम के पेड़ों का यहाँ पर अस्तित्व तो अवश्य कायम है, पर उन पर कभी भी बौर नहीं लगता। बस यहाँ पर ऐसी ही हमारी हालत है''।

***

हॉलीवुड वॉक ऑफ़ फेम
(Hollywood Walk of Fame)

लोम्बार्ड स्ट्रीट
(Lombard Street)

कुछ खूबसूरत गलियाँ कैलिफोर्निया की

मंजु मिश्रा

चाइना टाऊन
(China Town)

मेडन लेन
(Maiden Lane)

अगर आप सही मायने में घुमक्कड़ हैं और किसी जगह की आत्मा को छूना चाहते हों तो वहाँ के गली कूचों में चक्कर ज़रूर लगाएँ। रहन-सहन, खाना-पीना, सभ्यता, संस्कृति, भाषा बोली ये सब अपने असली रूप में आज भी गलियों में ज़िंदा मिलेंगे। काव्यात्मक ढंग से कहें तो गलियों में किसी भी शहर की, देश की साँसे धड़कती हैं, वहाँ एक अलग सी खुशबू होती है जो किसी भी जगह के वजूद को ज़िंदा रखती है।

तो आइए आज चक्कर लगाते हैं कैलिफ़ोर्निया की कुछ गलियों में ....

मेडन लेन (Maiden Lane)

ये है सैनफ्रांसिस्को की Maiden Lane - 1906 में आए भूकंप से पहले इस का नाम हुआ करता था, मोर्टन स्ट्रीट (Morton Street), उसके बाद इसके नए रूप का नाम लन्दन और न्यूयॉर्क की गलियों के नाम का अनुसरण करते हुए रखा गया मेडन लेन। 1955 में वहाँ के स्थानीय व्यवसाइयों के प्रयासों के फलस्वरूप इस गली में दिन में कारों का आना जाना निषिद्ध कर दिया गया। आज भी सुबह 11 बजे से शाम 5 बजे तक इस गली में कारों का आना जाना निषिद्धकर दिया गया है। इस गली में ढेरों बुटीक, गिफ्ट शॉप इत्यादि हैं। यह गली सैनफ्रांसिस्को की एक खास पहचान है।

लोम्बार्ड स्ट्रीट (Lombard Street)

सैनफ्रांसिस्को की लोम्बार्ड स्ट्रीट को दुनिया की सबसे क्रुकेड स्ट्रीट होने का तमगा हासिल है। यह स्ट्रीट रशियन हिल पर हयडे और लैवेनवर्थ स्ट्रीट के बीच में लगभग 600 फ़ीट लंबी एक बहुत खड़ी ढलान वाली एक तरफा (one way), सिर्फ ऊपर से नीचे की ओर एक ब्लॉक लंबी सड़क है ;जिस में बहुत ही घुमावदार 8 मोड़ हैं जिन हेयर पिन टर्न्ज़ कहा जाता है। यहाँ पर गाड़ी की रफ़्तार मात्र 5 मील प्रति घंटा है, यहाँ पर गाड़ी

संपर्क: 3966, चर्च हिल ड्राइव,
प्लेअसेण्टों, कैलिफोर्निया-94588
ईमेल: manjumishra@gmail.com

सैन्टाना रो
(Santana Row)

चलाना सचमुच बहुत हिम्मत और दक्षता का काम है, मुझे तो बैठ कर आने में ही दिल काँप जाता है, हालाँकि कार की इस साहसिक सवारी में मज़ा बहुत आता है। लोम्बार्ड स्ट्रीट का पश्चिमी छोर प्रेसिडिओ बुलेवार्ड से होते हुए पूर्व की तरफ काऊ होलो तक जाता है।

चाइना टाऊन (China Town)

विश्व के हर कोने और हर शहर में चाइना टाऊन मिलेंगे। अमेरिका में तो उन्हें रेल की पटड़ी डालने के लिए लाया गया था और बाद में वे यहीं बस गए। आइये अब चलते हैं सैनफ्रांसिस्को के ही एक और मज़ेदार इलाके में, यहाँ की गलियाँ बड़ी रंगबिरंगी हैं। यहाँ है सैनफ्रांसिस्को का चाइना टाउन खाना-पीना, खरीदारी, मनोरंजन यहाँ आपको सब मिलेगा, अगर आप संगीत प्रेमी हैं तो लाइव पर्फारमेंस भी है आपके लिये।

सैनफ्रांसिस्को का चाइना टाउन किसी भी लिहाज से पीछे नहीं है आपको अपने गलियों और चौबारों की याद दिलाने में। यहाँ पर घूमते हुए इधर-उधर से ग्राहकों को बुलाती हुई दुकानदारों की आवाज़ें पल भर में भारत की गलियों की सैर करा लाती हैं

चाइना टाउन के साथ-साथ यहाँ एक जापान भी है, लिटिल इटली भी है, और भी गलियों के अंदर बहुत सी ऐसी गलियाँ हैं जो अपने अंदर-अंदर एक देश एक सभ्यता एक इतिहास को ज़िंदा रखे हुए हैं।

जापान टाउन में एक लैंटर्न परेड भी होती है। बॉन या ओबॉन नाम का यह त्यौहार अपने पुरखों की याद में मनाया जाता है। यह प्रथा जापान में 500 से भी अधिक वर्षों से चली आ रही है।

हॉलीवुड वॉक ऑफ़ फेम (Hollywood Walk of Fame)

आइये अब सैनफ्रांसिस्को से निकल कर लॉस एंजेल्स की तरफ चलते हैं यहाँ एक बहुत ही प्रसिद्ध स्ट्रीट है जिसका नाम है हॉलीवुड वॉक ऑफ़ फेम। यह गली हॉलीवुड बुलेवार्ड पर गोवर स्ट्रीट से ला ब्रिआ एवेन्यू तक 1.3 मील लंबी पूर्व से पश्चिम की ओर जाती है। लोगों मे इसके प्रति दिलचस्पी का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि NPO Plog Research नाम की कंपनी द्वारा किए गए एक सर्वे के अनुसार इस को देखने के लिए साल में लगभग 10 मिलियन लोग आते हैं। इस स्ट्रीट पर 2600 से भी अधिक चमकीले पंचकोणीय सितारे जड़े हुए हैं। यह सितारे मनोरंजन के क्षेत्र में अभिनय, संगीत, निर्देशन, फिल्म निर्माण,थियेटर इत्यादि उपलब्धियों के लिए प्रतीक चिन्ह के रूप में लगाए गए हैं।

सैन्टाना रो (Santana Row)

लॉस एंजेल्स से वापस बे एरिया, सिलिकॉन वैली के बीचों-बीच सैनहोजे कैलिफ़ोर्निया स्थित सपनों की दुनिया सी खूबसूरत स्ट्रीट सैन्टाना रो ... (377 Santana Row, San Jose) का भी एक चक्कर लगा ही लीजिए। सैन्टाना रो शॉपिंग और हैंगआउट के लिए किसी खूबसूरत परीलोक की कल्पना से कम नहीं है। 4-5 ब्लॉक में एक ही जगह पर लगभग हर बड़ा ब्रांड, फैंसी रेस्टोरेंट्स, हर ब्लॉक में खूबसूरत सजावट, एकदम फंतासी दुनिया सा रंगीन खूबसूरत माहौल। सब मिल कर सेंटाना रो जाने के अनुभव को एक न भूलने वाली प्यारी सी याद बना देते हैं।

ये तो बस एक झलक भर है, आते-जाते रहिये यहाँ की गलियों में, बहुत कुछ है आपके साथ बाँटने को, कुछ सुनेंगे कुछ सुनाएँगे, कुछ दिल को बहलाएँगे तब तक.....

भूली बिसरी यादों से
दिल को बहलाना अच्छा लगता है,
नई पुरानी गलियों में
फिर-फिर आना अच्छा लगता है.....

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2017

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पांडेय जी और साहित्य महोत्सव

लालित्य ललित

चुनांचे आए दिन पांडेय जी के जीवन में कुछ न कुछ घटता रहता हैं। कभी कुछ खट्टा तो कभी कुछ मीठा।

पांडेय जी अपने इलाके के बड़े जाने-माने लेखक थे। खूब पैरोडी करते। लोग वाह-वाह भी करते। अपने हुनर का लोहा मनवाने में वे बड़े पक्के थे। पूजा पाठ भी करते। तुलसी के पौधे में जल अभिषेक करते। माथे पर चन्दन का टीका लगाते। मंदिर भी तभी जाते जब उनके ऊपर कोई संकट मंडरा रहा होता।

वैसे शादी -शुदा थे, पर आम आदमी की तरह थोड़े दिल फैंक भी थे। अब दिल है तो जाहिर है किसी पर भी आ सकता है। आख़िर ज़ोर थोड़े ही हैं, कि रोक के रखे।

पांडेय जी खुश तब हुए, जब उनके नाम से कहीं से पत्र आया कि आपको एक साहित्य महोत्सव में शामिल होना हैं। कृपया अपना मेल आई डी बतला दें, अपना परिचय और फोटो मेल कर दें। फिर क्या था, पूरे इलाके में ख़बर आग की तरह फैल गई, पांडेय जी को सरकार की तरफ से निमंत्रण। कई देशों के लेखक कई भाषाओं में एक जगह एकत्रित होंगे। कुछ अपने मन की कहेंगे, कुछ अपने मन की सुनेंगे।

बहरहाल मोहल्ले की बिल्लो से विलायती राम पांडेय ने अपना ईमेल आईडी बनवा लिया। अपना परिचय शिक्षक रामवतार त्यागी से तैयार करवा लिया। वे सब बातें अपने परिचय में लिखवा लीं, जन्म से लेकर देहाती शिक्षा तक। सम्मानों का ज़िक्र,अपनी दो पुस्तकों का नाम। माता-पिता का नाम।

रामप्यारी ने आलमारी से निकाल कर सिल्क वाले कुर्ते में इस्त्री कर दीं। सिल्क का कुर्ता उनकी थुल थुली देह पर दमकने लगा। फोटो खींच कर टीटू ने अपने समार्ट फोन से उनको भी फोटोशॉप में जा कर स्मार्ट बना दिया था।

परिचय संबन्धित कार्यलय में भिजवा दिया। तय समय के भीतर हवाई जहाज़ की टिकट भी आ गई। अब तो पांडेय फूले न समाए। मन खुश। तन खुश। ऐसे इतराने लगे जैसे किसी नवयौवना को जवानी की हवा कुछ देर पहले लगी हो।

पत्नी उनका इतराना भाँप चुकी थीं। कहने लगी-देखो जी! बाहर की कोई आलतू फ़ालतू चीज़ मत खाना। आप का पेट चल जाता हैं। अपनी दवाई शुगर की भी रख लो और पीली गोली का पत्ता भी, जाने कौन घड़ी काम आ जाए।

आवश्यक निर्देश और पत्नी का दिशा उद्बोधन प्राप्त कर विलातयी राम पांडेय विमान में सवार हो गंतव्य की ओर उड़ चले। शुद्ध शाकाहारी थे। सुन्दर सी विमान परिचारिका आते-जाते निहार लेती। पांडेय जी इसी गलत फहमी में बैठे रहे, शायद यह कोई पिछले

संपर्क: बी-3/43, शकुंतला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063
मोबाइल 9868235397

जन्म का कोई कनेक्शन निकाल रही हो, जबकि उन्हें यह नहीं पता था कि उनको यह ट्रेनिंग दी जाती है कि अपने कस्टमर्स के साथ मुस्कराते हुए पेश आया जाए।

नाश्ते के बाद जब पांडेय जी लघुशंका को उत्सुक हुए। मामला उन्हें दीर्घ शंका का महसूस हुआ। मन में बुद बुदाते रहें। ऐसा न हो, वैसा न हो। मौसम संभल गया। उधर परिचारिकाओं की आदत होती हैं, पाँच दस पैसेंजर लघुशंका को उठे नहीं कि उनकी बैचेनी अधीर हो जाती हैं। तुरंत उनके हाथ में माइक आ जाता है-सभी यात्रियों से अनुरोध हैं, बाहर का मौसम खराब हो गया, सब से अनुरोध है कि अपनी सीट की बेल्ट बाँध लें और टॉयलेट का प्रयोग न करे।

पांडेय जी ने हलकी सी सूचना हाथ धोते-धोते सुन लीं थीं। प्रभु को याद करते करते अपनी सीट पर आ कर धँस गए। उनको दीर्घ शंका की शंका अब किसी और टापू में समा गई।

ख़ैर विमान अपनी जगह पहुँचा। एयरपोर्ट पर तख्ती लिए एक व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा में था, उसने प्रदेश के मुताबिक सम्मान करते हुए पटका और गुलदस्ता भेंट किया। पांडेय जी को ऐसे लगने लगा शायद यह वह सुनहरा अवसर है कि उनका लेखन सफल हुआ, उनके भीतर का लेखक गद् गद था। उबोधन भव्य होटल। जीवन में लेखक को और क्या चाहिए। वैसे लेखक जाति वह प्रजाति हैं जो अपना खर्च करने में परहेज़ करती हैं। पांडेय भी कौन से दूध के धुले थे।

अगले दिन भव्य कार्यक्रम में कई लेखकों से मिलने का मौका मिला। पांडेय जी हिन्दी के कवि थे। उनके गले में प्रतिनिधि का बिल्ला और साथ में एक गाइड का सुख उनको ख़ास आभा प्रदान कर रहा था।

ख़ैर समारोह में पांडेय जी ने अपनी कविताओं का पाठ किया। लोगों ने देर तक तालियाँ बजाई। पांडेय जी फूले न समाए। उनका गाइड उनकी हर एंगल की तस्वीर ले रहा था। पांडेय जी ने अपने उद्बोधन में कहा-आज कविता अपने उद्देश्यों और अपनी बेचैनियों के साथ सामयिक मनोभाव की वह भूमि तैयार कर चुकी हैं, जिसके आगे व्यवस्था के प्रति विद्रोह हैं, कुठाराघात हैं। उसका डट कर सामना हमारा लेखन निश्चित ही कर रहा हैं। हमारा धर्म लेखन के प्रति प्रतिबद्ध है, हमारी चिंताएँ बेहद मौलिक है, जो कोई भी तरीका नहीं छोड़ना चाहतीं। पांडेय जी के उद्बोधन के बाद अनेक रचनाकारों ने उनको शुभकामना प्रदान की। फोटो धड़ा धड़ खींचे गए।

अगले दिन की फ्लाइट थी। समय से एयरपोर्ट पहुँचना था। ट्रैफिक बहुत ज़्यादा हो गया। पांडेय जी बैचेन। कहीं विमान निकल गया तो कैसे पहुँचेंगे चुनांचे कहते है, न कि संकट की घड़ी में प्रभु ही एक मात्र चिंतक और इक हितैषी की मुद्रा में होता है जो आपका नि:शुल्क ख्याल रखता हैं। आख़िर कैशलेस के ज़माने में कोई तो है जो आपका अपना हैं। एयरपोर्ट पर कार ने सही समय पर पहुँचा दिया। खुश होकर पाँच सौ का नोट विलातयी राम पांडेय ने अपने गाइड को थमा दिया। गाइड ने खुश हो कर पांडेय के पाँव छू कर आशीर्वाद प्राप्त किया। पांडेय जी की इस यात्रा में महज पाँच सौ रुपये खर्च हुए, पर मन की ख़ुशी जो इस साहित्य महोत्सव में मिली उसकी कोई कीमत नहीं थी। लौट आए अपने पांडेय जी। स्थानीय अखबारों के फ्रंट पेज पर पांडेय जी की उपलब्धि भरे सचित्र समाचार थे। ग्वालियर के चब्बूमल इलाके के विलातीराम पांडेय का ब्रह्मपुत्र साहित्य महोत्सव, गुहावटी में सम्मान। अख़बार पढ़ कर उनका मन बल्लियों उछलने लगा जैसे किसी प्रेमिका ने उन्हें उम्र की इस दहलीज़ पर आकर पुन: प्रपोज किया हो। पत्नी रामप्यारी ऐसे गले लग कर मिली जैसे विलायती राम पांडेय को पकिस्तान सरकार ने रिलीज़ किया हो जो चुनांचे गलती से बॉर्डर क्रॉस कर गए हो और आज विदेश मंत्रालय की मशक्कत के बाद उन्हें सशरीर मुक्त किया हो। भाग्यवान अब तो बस करो, देखो बिल्लो कैसे फोटो पे फोटो खींचे चले जा रही हैं। आप अपने हो, कोई पराए तो नहीं। फोटो सेशन जारी हैं, जारी है खुशियों का मेला।

***

लघुकथा

सुनील गज्जाणी

सौदा

''साहब ! मैंने ऐसा क्या कर दिया जो मुझे बर्खास्त कर दिया'' वृद्ध चपड़ासी बोला! ''तुमने तो सिर्फ अपना कर्त्तव्य निभाया था, जिससे मुझे आघात पहुँचा'' अधिकारी बोला!

''साहब! मैं समझा नहीं ?''

''ना तुम बारिश में कई दिनों से भीग कर ख़राब हो रहे फर्नीचर को महफूज़ जगह रखते और ना ही नया फर्नीचर खरीदने की जो स्वीकृति मिली थी, वो निरस्त होती।'' अधिकारी ने लाल आँखें लिए प्रत्युत्तर दिया।

***

नौकरी

वो जगह-जगह से ज़ख्मी हो कर खूँखार कुत्तों के बीच से नन्हें पिल्लै को बचा लाया। वहाँ एकत्रित हुए लोगों ने उसके पशु प्रेम पर उसे शाबाशी दी। मगर वो अपने ज़ख्मों को भूल सोच रहा था ''अगर पिल्लै को कुछ हो जाता तो मालिक मुझे नौकरी पे थोड़े ही रखते। मुझे नौकरी के लिए फिर दर-दर भटकना पड़ता।''

***

साम्यवाद

''माँ कितना अच्छा होता कि हम भी धनी होते तो हमारे भी यूही नौकर-चाकर होते ऐशोआराम होता''!

''सब किस्मत की बात है, चल फटा-फट बर्तन साफ़ कर, और भी काम अभी करना पड़ा है!''

माँ-बेटी बर्तन माँजते हुए बातें कर रही थी! ''माँ! इस घर की सेठानी थुलथुली कितनी है और बहुओं को देखो हर समय बनी-ठनी घूमती रहती हैं, पतला रहने के लिए कसरतें करती है, घर का काम-काज, रसोई का काम, बर्तन-भाँडे आदि माँझे तो कसरत करने की ज़रूरत ही नहीं पड़े!''

''बात तो ठीक है.., बस हमें भूखों मरना पड़ेगा!''

***

sgajjani@gmail.com

फादर की तलाश में

डॉ. अतुल चतुर्वेदी

एक अदद् मुकम्मल फादर हो लाइफ में तो बहुत सारे संकट आसानी से हल हो जाते हैं। फादर शक्तिमान टाइप का हो तो कहने ही क्या। जिनके फादर हैं ढंग ढांग के उनके सुख पूछिए ज़रा। कई नौनिहालों के व्यक्तित्व में तो फादर का डी. एन. ए. जीवन भर ही उछाल मारता रहता है। ये खांटी फादरपना ही है कि वे बेसाख्ता किसी की भी गिरेबाँ पकड़ लेते हैं, किसी को भी सरेराह रौंद देते हैं और अंतत: वी का निशान दिखाते हुए रौब से छूट जाते हैं। किसी भी शो में बेरोकटोक घुस जाते हैं किसी भी कन्या का सरेआम अपहरण कर लेते हैं ये उनके फादरपने के उदात्त गुण ही हैं। लेकिन ये फादरपना सबमें हो ज़रूरी नहीं। कई बार लफाड़ी, दबंग बापों की संतानें गलती से दब्बू, घोंचू भी पाई जाती हैं। लेकिन इससे क्या फादर यदि नामचीन हों या अच्छे ओहदे पर हों तो झंडू से झंडू संतान में भी आत्मविश्वास का संचार पैदा हो जाता है।

हमारा देश फादरों का देश है। यहाँ तरह-तरह के फादर हैं। बाहुबली फादर से लेकर जुगाड़ू और मक्कार फादर तक। मजबूर फादर तो खैर हमारी राष्ट्रीय पहचान हैं। उनका रोनू चेहरा तो आप कहीं भी देख सकते हैं, जो सदा सहानुभूति की तलाश में भटकता दिख जाएगा। जवान लड़कियों के फादर कि यह विडंबना शाश्वत है। शायद तभी किसी शायर ने लिखा - बेटियाँ जब जवान होती हैं, बाप का इम्तिहान होती हैं। यदि आपके फादर किसी रसूखात वाली जगह पर हैं या थोड़ा भी प्रभावशाली हैं तो आपका कैरियर भी किनारे लग जाएगा। जीवन संघर्षों के अथाह समुद्र में आप भी एक दीप स्नेहभरा, गर्व भरा मदमाता बन सकेंगे। जिनके फादर कहीं कुछ हैं उनसे पूछिए इसका परम सुख। उनकी चाल देखिए। उनका समस्याओं के प्रति नज़रिया देखिए। उनकी जीवनशैली ही बता देती है कि बंदे के फादर में है कुछ दम। वो न बेरोज़गारों की लंबी लाइन से हलकान होता है न आर्थिक मंदी

संपर्क: 380, शास्त्री नगर - दादाबाड़ी - कोटा-9
ईमेल: achatchaubey@gmail.com
मोबाइल : 9414178745

के दौर से परेशान। उसके लिए हर दिन अच्छा दिन है। हर सरकार अच्छी सरकार। हर रिश्ता एक सीढ़ी और हर बाधा एक पुल। वो क्यों चिंता करे बढ़ते सर्विस टैक्स और दामों की। उसके तो है न फादर ...कर रहे हैं न कमाई दोनों हाथों से। समर्थ फादरयुक्त संतान कॉलेज जाने के लिए फोर व्हीलर खरीदती है। और हर माह दस-पन्द्रह हज़ार का सामान ऑन लाइन आर्डर करती है। वीक एंड में पार्टी और इयर एंड में कहीं बाहर तफरीह का समृद्ध आयोजन। फादर हों समर्थ तो जीवन जीने का मज़ा ही कुछ अलग है। तमाम तकलीफें चुटकियों में हल हो जाती हैं। संडास में महँगा मोबाइल गिराते हुए न ग्लानि बोध होता है और न लड़कियों को सरेराह छेड़ते हुए कोई भय बोध। जीवन निर्भय कटता है। जिनके फादर प्रशासन या पुलिस में हैं उनके तो दोनों हाथ घी में हैं। अव्वल तो वो दो रंगों में गाड़ी के पीछे बोल्ड अक्षरों में लिखवाते हैं पुलिस। आधे लोग बेचारे यह देखकर ही दबाव में आ जाते हैं क्योंकि भारतीय पुलिस की जैसी भद्र और शालीन छवि जनमानस में हैं सब जानते हैं।

और फिर करेला और नीम चढ़ा। फादर पुलिस में ...। मन स्वच्छन्द और निर्भय हो जाता है। कामनाएँ उत्पात करने को मचलने लगती हैं। कानून बाँदी सा लगता है। व्यवस्था क्रीत दास सी। बेरोकटोक मल्टी प्लैक्स जाइए, किसी भी स्टैण्ड पर बिन शुल्क गाड़ी लगाइए। छोटी-मोटी नोंक झोंक की परवाह कतई न कीजिए। रोग शोक कुछ नहीं व्यापै। कोंचिगों और स्कूलों में फीस माफ करवाइए अपनी और सखाओं की। इस बहाने आपकी टी आर पी भी बढ़ती है। एक समूह तैयार होता है। पुलिस की नौकरी में फिजीकल टेस्ट में किसी का बाप भी आपको नहीं रोक सकता। रिटन टेस्ट में थोड़ा टेका लगा लीजिए। फादर कहीं भी हों बस उनमें फादरपना कूट-कूट के भरा होना चाहिए यही शर्त हैं एक आदर्श फादर की। उनमें संतान के प्रति अंध मोह हो, उसकी अयोग्यता के प्रति विरक्ति भाव सा हो और संतान के लिए किसी भी हद तक रिस्क उठाने की अपूर्व क्षमता हो। ये सब गुण हों तो संतान को दुबले होने की ज़रूरत ही नहीं है न फादर संभाल लेंगे न सब। फादर टीचर हैं तो स्कूल जाने की ज़रूरत नहीं। प्रेक्टिकल में तो मार्क्स पूरे के पूरे समझो वो भी साल भर बिना प्रयोगशाला झांके। फादर रेलवे में हैं तो रेलवे आपके बाप की है। जहाँ चाहें जाएँ, जहाँ चाहें आएँ। जहाँ चाहें थूकें, जो चाहें ढोएँ। जब चाहें रिजर्वेशन उपलब्ध। नहीं भी है तो ठाठ से ए सी के कूपे में बैठ कर जाएँ। सबै ट्रेन गोपाल की। यहाँ कृपया गोपाल की जगह अपने बाप का नाम रख दें। सप्ताह में चार दिन दिल्ली, जयपुर की यात्रा कर लें। बीच-बीच में स्टेशनों पर पकौड़े और कोल्ड ड्रिंक का लुफ्त उठाते जाएँ। है न टी टी ई अंकल आपके फादर के दोस्त। और फादर तो हैं ही रेलवे में एकाउंट सेक्शन में। देखिए जीवन में यही भाईचारा हमेशा काम आता है। इंसान क्या साथ लाया था जो साथ ले जाएगा। बस यह व्यवहार ही है जो जीवन भर इंसान याद करता है। और यहाँ तो व्यवहार भी सरकार के खर्च पर बन रहा है तो काहे की कोताही। मुझे रेलवे में यही भाईचारा बहुत अभिभूत करता है। ऐसा अद्भुत तालमेल कम विभागों में ही है। इतना बेहतर समन्वय काश ट्रेन समय से चलाने में भी हो तो जनता की किस्मत ही सँवर जाए।

इधर पुलिस, रेलवे और रोडवेज़ कर्मचारियों को देख देख राजनीतिज्ञों में भी एक न्यूनतम आपसी समझ विकसित हो रही है। भाई इस पाँच साल तुम तो अगले पाँच साल हम। न तुम हमारी खोलो न हम तुम्हारी खोलें। ढके रहने का जो सौन्दर्य है वो खुलेपन में कहाँ। इसलिए परस्पर साहचर्य भाव से काम चलाओ। न तुम हमारी जड़ें खोदो न हम तुम्हारी। क्योंकि जड़ों में क्या रखा है वही संचय की सड़ांध। दुष्प्रवृत्तियों के रेंगते बैक्टीरिया और वाइरस। अरे राजनीति क्या लोकतंत्र के चरागाह में राजतंत्र का स्वतंत्र विचरण। यहाँ भी कुछ फादर हैं जिनके होनहारों का टिकट पक्का है। और जीत गए तो मंत्री पद पक्का। फादर अपनी विरासत को आगे न बढ़ायेंगे तो क्या उस रामखिलावन कार्यकर्ता को जो गला फाड़-फाड़ के बीस साल से नारे लगा रहा है। धत्त तेरे की उस फटीचर को टिकट देंगे का। पार्टी का भट्टा बैठाना है क्या। फादर फिल्म स्टार हैं, निर्देशक हैं तो कैरियर की चिंता नको। मिल ही जाएगा ब्रेक। कट ही जाएगी ज़िंदगी। कुल मिलाकर सारा दारोमदार फादर पर ही है। इस देश में पिता का नाम बहुत मायने रखता है। फादर हैं तो रास्ते शार्टकट हो जाते हैं नहीं तो चलते चलते चप्पलें घिस जाएँगी लेकिन मंज़िल हाथ न आएगी। फादर हैं तो सही रास्ता बताने वाले मिल जाते हैं, छाँव, पानी, पुल, सीढ़ियाँ मिल जाते हैं। आप दौड़ में अव्वल आ जाते हैं। आप बिना दौड़े भी जीत सकते हैं। आप बिना लिखे भी परीक्षा में टॉप कर सकते हैं। आप महत्त्वपूर्ण नहीं हैं आप पर लगा ठप्पा महत्त्वपूर्ण है। हम लोग ब्रांड में विश्वास रखते हैं। निष्ठावादी देश है हमारा। राजा ही नहीं उसके कुत्ते को भी पूजते हैं हम। आभा मंडल से आक्रान्त हो हमारी दुमें हिलने लगती हैं। गर्दन नत हो जाती है।

जिनके फादर कुछ नहीं है वे मेरी तरह जीवन भर कलम घसीटते हैं। गोड़े फोड़ते हैं, हाँफते हैं। तुम हो ही इसके लायक क्योंकि तुम्हारे फादर कुछ नहीं हैं। बिन गॉड फादर भविष्य अंधकारमय है। अरे भाई जैविक पिता नहीं तो दैवीय पिता ही ढूँढ़ लो। नित उसका गुणगान करो। अपने ग्रुप पर उसकी फोटो डालो। उसकी पूँछ पकड़ कर तुम भी तिर जाओगे। जो काम मौलिक पिता नहीं कर पाते गॉड फादर करवा देते हैं। उनकी प्रतिभा अकूत है। इसलिए यदि सुरक्षित जीवन की आस है तो एक अदद् फादर ढंग का तलाश लें। समर्थ और जुगाड़ू सा जो आपका जीवन सँवार सके। इन झंझावातों में टिका सके आपका कैरियर। बल्कि आप स्वयं में एक फादरपना विकसित करने की कोशिश करें। यानी की थोड़ी सी चालाकी, बहुत सारा मोह और स्वार्थ धृतराष्ट्र टाइप का देखिएगा फिर आपकी संतानें कितना आपको सराहेंगी। जीवन सुफल हो जाएगा सचमुच। आप अक्खा जीवन ड्राइंग रूम की शोभा बढ़ाते रहेंगे, महकते रहेंगे तस्वीरों में सदा।

***

प्रवासी हिन्दी कहानी और समलैंगिकता
(महिला कहानीकारों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मधु संधु

पुरुष का पुरुष के प्रति और स्त्री का स्त्री के प्रति यौनिक एवं रोमांसपूर्ण आकर्षण समलैंगिकता के अंतर्गत आता है। अंग्रेज़ी में समलैंगिक पुरुषों के लिए 'गे' और स्त्रियाँ के लिए 'लेस्बियन' शब्द प्रयुक्त होता है। जबकि स्त्री पुरुष दोनों से संबंध को बायोसेक्सुएलिटी या उभयलैंगिकता कहा जाता है। समलैंगिकता, उभयलैंगिकता या ट्रान्सजेंडर के लिए एल. जी. बी. टी. शब्द भी प्रयुक्त होता है। समलैंगिकता के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता, भले ही इसके पक्ष और विपक्ष में बहस हमेशा चलती रही है।

विश्व की प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति में समलैंगिकता का किसी न किसी रूप में उल्लेख मिल ही जाता है। स्कन्ध पुराण और भागवत पुराण में ऐसे सम्बन्धों का उल्लेख है। महाभारत में भी अर्जुन और शिखंडी के प्रसंग मिलते हैं। प्राचीन यूनानी देवता होरेस के बारे में भी ऐसी कहानियाँ मिलती हैं। अरस्तू और सिकंदर भी होमो माने गए हैं। लियोनार्दो दा विंची को समलैंगिक होने के कारण दो बार कानूनी कार्यवाही का सामना करना पड़ा। आयरिश साहित्यकार आस्कर वाइल्ड को होमो होने के कारण 19वीं शती यानी महारानी विक्टोरिया के शासन काल में दो साल जेल में बिताने पड़े। आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के जनक, गणितज्ञ और कम्प्यूटर विशेषज्ञ एलेन ट्यूरिंग को होमो होने के कारण केमिकल कैस्ट्रेशन की सज़ा भुगतानी पड़ी। 1954 में 41 वर्ष की आयु में उनका उस साइनाइड से निधन हो गया, जिसे उन्होंने सिरिन्ज द्वारा सेब में भर कर खाया था। मशहूर कम्पनी एपल के लोगों में जो सेब है, उसे ट्यूरिंग के सिरहाने पाए सेब से प्रेरित माना जाता है।

उर्दू शायर फिराक गोरखपुरी और मीर तकी मीर की समलैंगिकता की अफवाहें भी मिलती हैं।

अब समय बदल गया है। एपल के सी. ई. ओ. टिम कुक तो कहते हैं कि उन्हें अपने गे होने पर गर्व है। भारत के अँग्रेज़ी लेखक विक्रम सेठ, फैशन डिज़ाइनर रोहित बल, फिल्म निर्देशक ऋतुपर्णो घोष भी गे हैं।

1967 में इंग्लैंड और वेल्ज़ के एक एक्ट ने समलैंगिकों को अनेक बरबरताओं से मुक्त किया। 1974 में अमेरिका और विश्व स्वास्थ्य संग ने मान लिया कि समलैंगिकता रोग न होकर यौन चयन है। 1981 में नार्वे और उसके बाद डेन्मार्क, स्वीडन, हौलैंड, आयरलैंड ने भी समलैंगिकों से भेद-भाव न रखने के कानून बनाए। 1993 में नार्वे में समलैंगिकों को साथ रहने और शादी की रजिस्ट्रेशन की अनुमति मिल गई। 1994 में समलैंगिकों को अमेरिका के कुछ हिस्सों में सविधान द्वारा समस्त अधिकार मिल गए। 1996 में हंगरी में भी समलैंगिक शादी को मान्यता मिल गई। 2001 में नीदरलैंड और 2005 में कैनेडा और स्पेन में समलैंगिक या गे विवाह को मान्यता मिली। दक्षिण अफ्रीका, बेल्जियम में भी समलैंगिक विवाह मान्य कर दिए गए हैं। फ्रांस और दूसरे देशों में समलैंगिक विवाह का विरोध भी कम नहीं हुआ। 2009 से पहले भारत में समलैंगिकता अपराध थी। लेकिन सर्वोच्च

संपर्क: 13, प्रीत विहार, जी टी रोड ,
पोस्ट ऑफिस -आर.एस. मिल
अमृतसर - 143104, पंजाब
madhu_sd19@yahoo.co.in

न्यायालय ने एक याचिका के कारण 2009 में भारतीय संविधान की धारा 377 के अंतर्गत इसे अपराध मानने से इंकार कर दिया। जबकि 2014 में स्थितियाँ पूर्ववत् हो गईं, होमोसेक्सुएलिटी गैर कानूनी मान ली गई। फिर भी आज बहुत से देशों ने हेट्रोसेक्सुयल संबंधों की तरह होमोसेक्सुयल संबंधों को भी मान्यता दे दी है।

समलैंगिकता जैसे विषय पर कलम चलाना हमेशा से जोखिम और हिम्मत का काम रहा है। 1920 के आसपास प्रकाशित पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के कहानी संग्रह 'चॉकलेट' और महाप्राण निराला के 'चातुरी चमार' में समलैंगिक कहानियाँ मिलती हैं। 1941 में इस्मत चुगताई को लेस्वियंस पात्रों पर लिखित कहानी 'लिहाफ़' के लिए अश्लीलता का आरोप और मुकदमा झेलना पड़ा। बहुत से धर्मों में समलैंगिकता को पाप माना जाता है, जिनमें हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, यहूदी धर्म भी हैं। ईसाई और यहूदी धर्म के कुछ संप्रदाय ही समलैंगिकता को स्वीकार करते हैं। समाज या परिवार भी समलैंगिक या उभयलैंगिक को सहज भाव से नहीं स्वीकारता।

प्रवासी हिन्दी कहानी आज अपने चरम उत्कर्ष पर है और इसमें महिला लेखिकाओं का अवदान विशेष स्थान रखता है। निश्चित है कि उन देशों का वातावरण और चिंतन स्तर भारत से थोड़ा अलग है। ऐसे में समलैंगिक और उभयलैंगिक लोगों तथा उनके आत्मीयों की पीड़ा, चीत्कार, विवशताएँ, संत्रास, घुटन, उद्वेलन को प्रवासी महिला कहानीकारों ने पूरे साहस, उत्तरदायित्व और आत्मीयता से स्वर दिया है। दिव्या माथुर एक शाम भर की बातें में लिखती है- होमोसेक्सुयल, लैस्वियंस, गे और हाइट्रोसेक्सुयल, होना अभिन्न हिस्सा है वहाँ की संस्कृति का । टी. वी. कार्यक्रमों में यही लोग छाए रहते है।

उभयलैंगिकता सबसे विषम स्थितियों को जन्म देती है। न व्यक्ति स्वयं को समझ पाता है और न उसे परिवार या समाज स्वीकार पाता है। ऐसे में भेद खुलने पर वह अपराध जगत् में भी प्रवेश कर सकता है और आत्महत्या भी। दिव्या माथुर की 'गवाही' परामनोविज्ञान, अपराध, कुंठाओं और उभयलैंगिकता की कहानी है। नीरज और राज, प्रीति और राधिका में मैत्री है। नीरज गे है। वह नहीं चाहता कि किसी को भी, खासकर पत्नी राधिका को पता चले कि वह गे है। वह पाइनवुड क्लब जाया करता है। सत्ताईस वर्षीय डेविड गोल्ड सब जानता है। वह उसकी पत्नी राधिका को बताने की धमकी देता है। नीरज क्लब के आसपास ही उसका कत्ल कर देता है। डेविड की भटकती आत्मा आधी रात को वहाँ से

गुज़र रहे राज का पीछा करती है। वह सहायतार्थ नीरज को बुलाता है। आत्मा उन्हें वहाँ ले जाती है, जहाँ लाश पड़ी है। लाश को वे सड़क किनारे रखते हैं। वहाँ पड़ा एक कफ़लिंग उठा नीरज जेब में डाल लेता है, जो शायद कत्ल के दिन गिर गया था। पुलिस के समक्ष सारा केस स्पष्ट हो जाता है। यानी सामाजिक, पारिवारिक शर्मीदगी के कारण गे नीरज हत्यारा बन जाता है।

सुधा ओम ढींगरा की आग में गर्मी क्यों कम है (द्विलैंगिक) बायो-सेक्सुएल शेखर और उसके परिवार के मूक चीत्कार, घुटन, आँखें चुराने और समाज में मुँह न दिखा सकने वाली स्थिति की कहानी है। तीन छोटे-छोटे बच्चों के अवसादग्रस्त पिता शेखर ने माल गाड़ी के आगे आ आत्महत्या कर ली है। रेलवे फाटक के पास खड़ी कार से उसका आत्महत्या का पत्र भी मिला है। पत्र में शेखर ने स्वीकार किया है कि बायो-सेक्सुअल जीवन के कारण वह जान दे रहा है। साक्षी ने पुलिस से उस पत्र को सार्वजनिक न करने का विनम्र अनुरोध किया है। सोचती है कि लोग, रिश्तेदार, बच्चे क्या कहेंगे। पत्नी और अन्य अन्त्येष्टि के लिए जुटे हैं। साक्षी जड़ हो गई है। उसकी आँखों में पानी नहीं। उसे तो पता ही नहीं चला कि शेखर बायो- सेक्सुअल है। शादी के लगभग 9 वर्ष बाद एक शाम जल्दी लौट आने पर उसने जेम्ज़ और शेखर को बेडरूम में आपत्ति जनक हालत में देखा, तो उसके पाँवों तले से ज़मीन निकल गई। पता शेखर को भी नहीं था। उसे भी जेम्ज़ के संपर्क में आने पर ही पता चला। वह उस देश भारत से है, जहाँ पुरुष पर- स्त्री से तो संबंध बना सकता है, लेकिन पर- पुरुष से नहीं।

अरुणा सब्बरवाल की क्लब क्रोलिंग में आशीष/ऐश, कर्ण, थॉमस, जस्सी बचपन के मित्र हैं। बमिघम के अंतर्राष्ट्रीय दंके क्लब में सभी आते हैं। ऐश का डांस है। उसके बाद सभी को बियर-बार में मस्ती करनी है। ऐश को बीते वर्ष की यादें ताज़ा हो आती है। जब उन्होंने क्लब क्रोलिंग का कार्यक्रम बनाया था। क्लब क्रोलिंग यानी सारी रात एक से दूसरे, तीसरे, चौथे क्लब में जाना और अंत में वे गे क्लब में गए थे, जहाँ गे रोबर्ट उन्हें अपने घर ले गया था। उसका मन ऐश पर आ गया था और इन बचपन के दोस्तों को भी पहली बार पता चला था कि थॉमस गे है। बात खुलने पर थॉमस की पत्नी उसे सहज भाव से छोड़ कर चली जाती है और उसके क्रिश्चियन माता- पिता भी इस स्थिति को स्वीकारने में हिचकिचाते हैं।

अनिल प्रभा कुमार की दीवार के पार गे किशोर क्रिस की त्रासदी लिए है। माता-पिता मैरी और पीटर अलग हो चुके हैं। बेटा क्रिस माँ के पास है। स्कूल खत्म होने पर कॉलेज जाने से पहले वह माँ को बताता है कि वह होमो है और माँ की प्रतिक्रिया से लगता है कि वह अस्वीकार कर दिया गया है। वह होमो बेटे की माँ होना स्वीकार नहीं कर पा रही। हॉस्टल का भारतीय रूममेट एरिन/ अरुण सब जान जाता है। वह कमरे में चोरी से वेबकैम लगा क्रिस के अपने प्रेमी के साथ अंतरंग क्षणों को दूसरे कमरे में दोस्तों के साथ बैठ कर देखता है और फिर विडियो अन्तर्जाल पर सार्वजनिक कर देता है। जब कुछ और खोने का डर नहीं होता तो आदमी निडर हो जाता है। परिणामत: क्रिस आत्महत्या कर लेता है और अरुण को एक साल की जेल होती है। मैरी का उस धर्म से ही विश्वास उठ जाता है, जो होमो को पापी मानता है। यहाँ उस किशोर की त्रासदी है, जिसे न समय पर माँ का साथ मिला, न मित्रों का। परिवार, समाज, धर्म कानून सब उसके खिलाफ हैं। आत्महत्या ही उसकी नियति है।

पति- पत्नी यानी विवाहितों के पास ऐसे अनेक अधिकार होते हैं, जिनसे गे वंचित

हैं। कम- कर, बीमा, छुट्टी, उत्तराधिकार आदि। अनिल प्रभा कुमार की कतार से कटा घर होमो सेक्सुएलिटी का लैस्वियंस रूप लिए है। कहानी लैस्वियंस के जीवन संघर्ष, अधिकार वंचित होने के दंश के साथ-साथ उनके बच्चों को मिलने वाले घृणा, अपमान, तिरस्कार को भी चित्रित करती है। शर्ली और मिशेल गे हैं। साथ रहती हैं और अस्पताल से स्पर्म लेकर उन्होंने राबी को जन्म दिया और जैरा को गोद लिया है। जैरा तो अभी छोटी है, लेकिन राबी स्कूल जाता है और उसे बच्चों से तरह-तरह की बातें सुननी पड़ती हैं। कुछ बच्चे उससे खेलना पसंद नहीं करते, कुछ धर्म का हवाला देकर उसे डराते हैं। जबकि वह जैरा, शर्ली मम्मी, मिशेल मॉम- सबसे बेइंतहा प्यार करता है। टीचर और काउंसिलर उसे समझती हैं। अमेरिका में गे जोड़े बच्चा तो कर या ले सकते हैं, लेकिन उनके पास न विवाह का अधिकार है, न पेंशन का, न साथी के लिए छुट्टी का, न जायदाद के हस्तांतरण का। इसी बीच आंदोलन होता है और गे विवाह का और दूसरे अधिकार पा लेते हैं और शर्ली तथा मिशेल भी शादी करके कानूनी जोड़ा बन जाते हैं, लेकिन कोर्ट से वापिसी पर किसी का कार पर अंडा फेंकना लोगों के मन में छिपी घृणा का ही द्योतक है। कानूनी अधिकार पा लेने के बाद भी गे के लिए समाज में कोई सामान्य अथवा सम्मानीय स्थान नहीं है।

प्रवासी लेखिकाओं ने समलैंगिकों के दुखों के साथ-साथ समलैगिकों के असामान्य, अराजक और आपराधिक व्यवहार का भी अंकन किया है। उषा वर्मा की रौनी में ब्रिटेन में अनाथ बच्चे को अध्यापक हयूबर्ट अपनी वासना का शिकार बनाता है। सात वर्षीय नीग्रो रोनी की माँ जेल में थी और पिता का पता नहीं। उसका जीवन सोशल वर्कर और फॉस्टर पेरेंटस के बीच भटक रहा है। उसे 'ब्लडी निगर' कहा जाता। 'सारे काले चोर होते हैं'-कहा जाता। विद्यार्थी और अध्यापक दोनों उसे अपमानित करते, पीटते हैं। स्कूल में प्रोबेशन पर आई रीमा सब देखती और महसूसती है। उसके बीमार होने पर आराम के लिए कहती है। मिस्टर हयूबर्ट के बच्चे के प्रति अमानवीय व्यवहार/ समलैंगिकता को जान, सोशल वर्कर के समक्ष गवाही देने को तैयार होती है।

कविता वाचक्नवी की पाप भारत के संदर्भ में लैस्वियंस वार्डन को चित्रित करती है। बिन माँ की बेटी संध्या को पिता कठोर अनुशासन में पालते हैं, उसके संस्कारों का पूरा ख्याल रखते हैं। लेकिन बड़ी हो रही बेटी को हॉस्टल छोड़ आते हैं। यहाँ वह मंजुला के संपर्क में आती है, लेकिन इसे गलत आशय से देख उसका जीवन यातनामय बना दिया जाता है। देखने में हॉस्टल में कठोर अनुशासन है। लड़कियों को भी लड़कियों से दूर रखा जाता है, पर वार्डन ही यहाँ होमो है। अनाचारों में डूबी है।

प्रवासी महिला कहानीकारों की लेखनी में अथाह हिम्मत, साहस और बल है। उनकी चेतना पूरी संवेदना से दैहिक, भौतिक या दैविक असंगतियों का चित्रण करती है। जिन विषयों को समाज और साहित्यकार अश्लील, अस्पृश्य, असंगत, बेकार मान मौन धारण कर लेता है, आँखें चुराकर कर रह जाता है, उन पर भी उन्होंने पूरी संवेदना और ईमानदारी से लिखा है। ब्रिटेन से अरुणा सबबरवाल, दिव्या माथुर, उषा वर्मा हो, अमेरिका से सुधा ओम ढींगरा, अनिल प्रभा कुमार हो या फिर कविता वाचक्नवी-सभी ने इस अछूते और त्याज्य विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

-000-

संदर्भ:

दिव्या माथुर, एक शाम भर बातें, हिन्दी बुक सेंटर, दिल्ली, 2000, दिव्या माथुर, 2050 और अन्य कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2011, सुधा ओम ढींगरा, कमरा न. 103, हिन्दी साहित्य निकेतनम बिजनौर, उ.प्र 24701, 2013, अरुणा सब्बरवाल, क्लब क्रॉलिंग सरिता, 1 अप्रैल 2015,अनिलप्रभा कुमार, कतार से कटा घर, हिन्दी समय, उषा वर्मा, रौनी, अभिव्यक्ति, समय: 28 अप्रैल, 2012, कविता वाचक्नवी, पाप, पाखी, फरवरी 2013

लघुकथा

घर की इज़्ज़त

शकुन्तला पालीवाल

आज फिर घर की इज़्ज़त को घर में सिर झुकाए उदास घुसते देखा तो घर के सभी मर्दों का खून खौल उठा। एक के बाद एक सभी उस पर बरस पड़े। आख़िर क्यूँ न बरसे उनके घर की बेटी को आज किसी ने फिर अभद्र टीका टिप्पणी से आहत किया। ये कैसे बर्दाश्त किया जाए? ये इलाका कुछ वर्षों से ऐसा ही होता जा रहा है, जहाँ आए दिन कोई न कोई अप्रिय घटना महिलाओं के साथ घटित होती रहती है। अभद्र टीका टिप्पणी करना यहाँ आम बात है। आज घर की इज़्ज़त को खुब हिदायतें मिली-मुँह ढक कर बाहर निकलने की, शाम होने से पहले घर लौट आने की और भी बहुत। अगले दिन वह नकाब ओढ़े निकली। जब दो-चार लोगों के समूह को उसने अपनी तरफ घूरते देखा तो वो वहीं ठिठक गई। तभी उस समूह में से किसी की आवाज़ आई-ज़रा नकाब हटा के चेहरा दिखा दो अपने चाहने वाले को नाम बताती जाओ और भी न जाने बहुत कुछ। मगर आज वो डरी और सहमी नहीं, आख़िर क्यूँ डरे -सहमे? उसने हिम्मत जुटाई। समूह के पास जाकर उसने नकाब हटाया, कहना तो वो बहुत कुछ चाह रही थी मगर रूंधे गले से यही कह पाई- चाचा जी ये मैं हूँ आप ही के घर की इज़्ज़त! जवाब सुन चारों ओर सन्नाटा पसर गया।

***

संपर्क: 27,श्री नन्दलाल अग्रवाल, अग्रसेन नगर, उदियापोल, उदयपुर-313001 फोन: 09468967195

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा

डॉ. नीलाक्षी फुकन
नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका

हिन्दी भाषा की परम्परा

भाषा के बगैर किसी भी देश की संस्कृति मूक होती है। भाषा के ज़रिये ही संस्कृति रूपी नदी बिना किसी बाधा से निरंतर आगे बढ़ती चलती है। समाज के कुछ पुरातन तत्त्वों को छोड़कर और आधुनिकता के नियमों को स्वीकारकर चलते रहना ही जीवित भाषा की निशानी है। शुरूआत से ही संस्कृत, ब्रज, अवधी, अरबी, फार्सी, तुर्की जैसी भाषाओं के शब्दों को अपनाकर सबके संग घुलमिल जाने की अपनी प्रवृत्ति को उजागर करती चली आई है हिन्दी भाषा। विश्व के दरबार में भारतवर्ष ही अकेला वह देश है जिसकी जनता के कंठ से भिन्न-भिन्न भाषाओं की गूँज सुनाई पड़ती है। 21 मान्यताप्राप्त राष्ट्रीय भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी को राजभाषा के रूप स्वीकृति प्राप्त हुई है। 2001 की भारतीय जनगणना के अनुसार भारतवर्ष में 122 प्रमुख भाषाओं के साथ-साथ 1599 अन्य भाषाएँ भी शामिल हैं। इस भाषाई विविधता के बीच हिन्दी ही केवल वह धागा है जो देश की सारी जनता को एकता के सूत्र में बाँधे हुए है। हिन्दी राष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ सामाजिक संस्कृति का स्वरूप भी प्रस्तुत कर रही है। साथ ही अंतरराष्ट्रीय अखंडता का संबंध भी प्रस्तुत करने में सक्षम हुई है। हिन्दी के अक्षर, शब्द, उच्चारण, वाक्य-संरचना के आधार पर देखा जाए तो यह भाषा दूसरी भाषाओं की अपेक्षा जनता के ज़्यादा करीब है, लोक भाषा की विशेताओं से संपन्न तथा समृद्ध है और इसके कुछ ख़ास ध्वनिगत लक्षणों के कारण ही छोटे से छोटा बच्चा भी बहुत जल्द इसको दोहरा सकता है, समझ सकता है, बोल सकता है। या यूँ कहिये कि हिन्दी भाषा के साथ खेल सकता है। अधिकतर लोगों का यही कहना है कि हिन्दी भाषा दूसरी भाषाओं की अपेक्षा बहुत ही सरल और सहज है और देश के हर एक कोने के लोग आसानी से इसके ज़रिये अपने भावों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। तभी तो मुगलों के समय से यह एक लिंगुआफ्रांका' (लोक भाषा) के रूप में लोगों में प्रचलित हो गई और 1947 में स्वाधीनता के बाद अपनी एक नई पहचान ''आफिशियेल लैंगवेज़'' का ख़िताब लेकर देश की प्रगति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की कौशिश में लग गई। लेकिन बीसवीं शताब्दी में इसकी अस्मिता लड़खड़ाती हुई देखी गई। बदलते हुए वातावरण, औद्योगिकरण और लोगों की पाश्चात्य समाज एवं भाषा संस्कृति की ओर बढ़ती हुई आसक्ति ने इसके अस्तित्व को सिमटने पर मजबूर कर दिया। प्रगति के पथ पर चलते हुए बहुत से भारतीयों को अपने ही देश में इसकी कुछ ज़्यादा आवश्यकता महसूस नहीं हुई। सरकार को भी इसके प्रचार-प्रसार की ओर कोई ठोस कदम उठाते हुए नहीं देखा गया।

हाँ यह ज़रूर है कि इक्कीसवीं शताब्दी में आकर इसने अपनी खोई हुई मर्यादा और सम्मान को फिर से वापस पाया और तब सरकार का रूख भी बदलने लगा। हम भारतीय हमेशा से पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति को अपनाने की होड़ में लगे रहते हैं। लेकिन अब

संपर्क: 549, पायलट हिल ड्राइव ,
मोर्रिस्विल्ल, नॉर्थ कैरोलाइना-27560 ,

पश्चात्य समाज भी हमारी भाषा-संस्कृति के अस्तित्व को समझने लगा है और उसको अपनाने के लिए आगे बढ़ा है, जो खुद ज़्यादातर भारतीय भूल गए थे। मानों अब उलटी गंगा बहने लगी है। हमारे लिए यह अति गौरव का विषय है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक लम्बे अर्से के बाद हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार, विस्तार पूरे विश्व में ज़ोर-शोर से होने लगा है। इस विस्तार और विकास का प्रमुख कारण है भारतवर्ष की मज़बूत होती हुई अर्थव्यवस्था और विदेशी कम्पनियों को यहाँ एक लाभाम्बित बाज़ार की मौजूदगी का एहसास। विदेशों में उत्पादित चीज़ें जैसे नहानेवाले साबुन से लेकर टीवी, फोन, कपड़े, खाद्य-पदार्थ, गाड़ियाँ, टेकनिकल दुनिया से जुड़ी हुई अनेकानेक चीज़ों का प्रचलन हिन्दुस्तान के बाज़ारों में लगातार बढ़ने लगा है। इन सारे बाज़ारों की भाषा, यानी आम जनता की भाषा है हिन्दी। भारतवर्ष के उत्तरीपूर्व राज्यों से लेकर पंजाब, राजस्थान तक और कश्मीर से लेकर दक्षिण भारत तक के ज़्यादातर लोगों को हिन्दी आती है। बालीवुड की फिल्मों तथा गानों का इसमें बहुत बड़ा योगदान है जो कभी नकारा नहीं जा सकता। साथ ही सारी विदेशी कम्पनियों को यह बात स्पष्ट रूप से पता चल गई है कि भारतीय जनता के दिलों तक पहुँचने के लिए, आम जनता की भाषा में ही बातचीत करनी होगी, बाज़ार की चाल चलनी होगी और वह बाज़ार की चाल हिन्दी के बगैर नहीं चली जा सकती। ऐसी अदला-बदली में विनिमय व्यवस्था में दोनों पक्ष ही लाभाम्बित होते हैं। ऐसे विनिमय के ज़रिये ही भाषा ज़िन्दा रह सकती है और फल-फूल सकती है। इस बदलते हुए परिवेश में, भाषा के स्वरूप में भी बदलाव आने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

क्यों सीखे हिन्दी ? हिन्दी से विद्यार्थी कैसे लाभाम्बित होंगे ?

चूँकि सॉफ्टवेयर कंपनियों, कोर्ट-कचहरी, कल-कारखाने, पर्यटन विभाग, तीर्थस्थल, वेबदुनिया में व्यवहारिक हिन्दी की प्रयोजनीयता दिन व दिन बढ़ती जा रही है तथा देश-विदेश के स्कूल-कॉलेज और विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा-साहित्य का शिक्षण कार्य लगातार बढ़ने लगा है, इसलिए हिन्दी के पेशावरों के लिए अब समय आ गया है कि वे हर एक छात्र के मन में हिन्दी के प्रति साकारात्मक रुचि पैदा करें। हिन्दी भाषा सीखने से होनेवाले फायदों के बारे में अच्छी तरह से विद्यार्थियों को समझाएँ। दुनिया की सबसे व्यापक रूप में बोली जाने वाली पाँच भाषाओं में से हिन्दी एक है और इस भाषा में प्रवीणता दक्षिण एशियाई सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक और धार्मिक ज्ञान के एक विशाल खज़ाने से लाभाम्बित होने में उपयोगी साबित हो सकती है। साथ ही विश्व के सबसे लोकप्रिय और विपुल फिल्म उद्योग बॉलीवुड की भी भाषा है हिन्दी। हिन्दी भाषा का ज्ञान भारतीय और कई देशों की बहु-सांस्कृतिक आयाम में काम के लिए बहुत लाभदाई है। दक्षिण एशियाई देशों में यात्रा के लिए और पेशा-जीविका एवं व्यवसाय चलाने के लिए भी बहुत उपयोगी है। इसके अलावा, अमेरिकी सरकार ने भी राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के लिए हिन्दी भाषा को ''महत्त्वपूर्ण भाषाओं'' के रूप में समाविष्ट किया है। हिन्दी भाषा के अध्ययन से विश्वविद्यालय के सामान्य शिक्षा कार्यक्रम (General Education Program, Humanities requirements, Global Knowledge) की भी शर्तें पूरी हो जाती है।

क्योंकि मुझे अमरीकी विश्वविद्यालयों में पढ़ाते हुए काफी अर्सा हो गया है और इसलिए मैं अपने अनुभव के ज़रिये बता सकती हूँ कि किन-किन कारणों से विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी हिन्दी पढ़ते हैं। बहुत से विद्यार्थी जिनकी रुचि अंतर्राष्ट्रीय विषयों से संबंधित होती है, इंटरनेशनल स्टडिज़ के अंतर्गत हिन्दी सीखने के लिए आते हैं। इंटरनेशनल राजनीति, अर्थव्यवस्था, कानून, विमन स्टडिज़, एंथ्रोपोलॉजी जैसे विषयों के विद्यार्थी जो भारत जाकर के इन विषयों पर रिसर्च करना चाहते हैं वे भी हिन्दी पढ़ते हैं। विश्व साहित्य (World Literature) के विद्यार्थी भी दक्षिण एशियाई साहित्य South Asian Literature) के अंतर्गत हिन्दी भाषा-साहित्य पढ़ना चाहते हैं। कुछ विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य में मेजर और माइनर करने की सुविधा भी उपलब्ध है। अमरीका में पैदा हुए बहुत से भारतीय मूल के बच्चे भारतवर्ष के मेडिकेल कॉलेजों में दाखिला लेना चाहते हैं और इसलिए वहाँ जाने से पहले हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। अमरीका की तकनीकी दुनिया खास तौर पर आई टी सेक्टर में काम करनेवाले भारतीय पेशावरों के प्रभुत्त्व ने यहाँ की जनता को भी हिन्दी भाषा-संस्कृति की ओर आकर्षित किया है ताकि वे अपने सहकर्मियों के साथ आसानी से बातचीत कर सकें, संबंध बढ़ा सकें और भारतीय संस्कृति को अच्छी तरह समझ सकें। लेकिन ज़्यादातर विद्यार्थी ''लैंग्वेज रिक्वायरमेंट'' पूरी करने के लिए आते हैं, जिनकी रुचि भाषा के सौन्दर्य, गहराइयों, जटिलताओं को सीखना नहीं है फिर भी परीक्षा में अच्छे अंक पाने की गहरी ख्वाहिश रखते हैं। ऐसे विद्यार्थियों से निपटना अपने आप में एक चुनौती है।

हिन्दी शिक्षण की आवश्यकताएँ और समस्याएँ

विश्वविद्यालयों में सोलह हफ़्तों के अंदर विद्यार्थियों को देवनागरी लिपि के साथ साथ हिन्दी भाषा, सहित्य, संस्कृति के बारे में ज्ञान देना कुछ आसान काम नहीं है। इस कठिन काम में सफलता प्राप्त करने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है। किसी भी भाषा का शिक्षण भाषा विज्ञान के ज्ञान के बिना सफल नहीं हो सकता। इसलिए सबसे ज़रूरी है कि भाषा के पेशावरों को उस भाषा के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए। हिन्दी भाषा किस प्रकार काम करती है, प्रयोग में लाई जाती है और छात्रों को किन तरीकों से यह अपनी ओर आकर्षित करती है इन सारी बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चहिए। एक सफल शिक्षण प्रक्रिया में बहुत सी चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है। अहम भूमिका रखती है सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम (Syllabus), शिक्षण की सामग्रियाँ (जैसे किताबें, प्रिंटआउट, इंटरनेट के संसाधन, ऑडियो /

वीडियो इत्यादि), एक अच्छा शब्दकोश, शिक्षण की विभिन्न शैलियाँ और एक्टिविटिज़ जिसके ज़रिए छात्रों को बोलचाल की क्षमता में बढ़ावा मिलता है और आत्मविश्वास बढ़ता है। भाषा सीखाते समय यह बहुत आवश्यक है कि रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में व्यवहित शब्दों और वाक्यांशों पर ज़ोर दिया जाए। ऐसे शब्दों और वाक्यांशों के लिए फ्लैश कार्ड का इस्तेमाल किया जा सकता है।

कम समय में भाषा का ज्ञान प्रदान करने के लिए एक सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम का होना अति आवश्यक है जो सम्पूर्ण सेमेस्टर की रूप-रेखा या ढाँचा प्रस्तुत करता है। यह ज़रूरी है कि सिलेबस में पाठ्यक्रम के बारे में विस्तार रूप से विवरण के साथ-साथ मुख्य उद्देश्य तथा परिणाम (Turn Out) के बारे में भी साफ़-साफ़ लिखा होना चाहिए। पढ़ाई के दौरान सम्पूर्णत: सिलेबस का पालन करते हुए हर एक दिन की शिक्षा भी सिलेबस की रूपरेखा के आधार पर होना चाहिए। विद्यार्थी की कक्षा में नियमित रूप से उपस्थिति पाठ्यक्रम की सफलता के लिए अनिवार्य है सिवाय धार्मिक त्योहारों और स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के। विद्यार्थी के लिए आवश्यक है कि कक्षा में आने से पहले पाठ की तैयारी करके आए और कक्षा के अंतर्गत विषय से सम्बन्धित भावों और विचारों का आदान-प्रदान करे। यह ज़रूरी है कि सिलेबस में होमवर्क, क्वीज़ेस, प्रोजेक्टस, प्रेज़ेंटेशनस, परिक्षाओं, ग्रेडिंग प्रणालियों के बारे में भी विस्तार से वर्णन होना चाहिए। परीक्षा के बाद विभिन्न विषयों की ग्रेडिंग सम्बन्धी विश्लेषण होना चाहिए ताकि परीक्षा के बाद विद्यार्थियों को अपने विचार और अभिव्यक्ति में संशोधन लाने का मौका मिले। भाषा सीखनेवाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए समय-समय पर पुरस्कारों की व्यवस्था भी होनी चाहिए। हमारे विश्वविद्यालय में हर साल के आख़िर में प्रत्येक क्लास के दो उत्कृष्ट छात्रों को ''एवार्ड आफ एक्सेलेंस इन हिन्दी'' (Award of Excellence in Hindi), ''एवार्ड आफ डेडिकेशन इन हिन्दी'' (Award of Dedication in Hindi) का प्रमाण पत्र दिए जाते हैं। हाईस्कूलों में हिन्दी सीखकर Seal of literacy और Global Education Certificate भी हासिल कर सकते हैं।

अमेरिका के विश्वविद्यालयों में ज़्यादतर भारतीय मूल के विद्यार्थी (native speakers) होते हैं। हिन्दी के पेशावरों को नेटिव स्पीकर्स और नान-नेटिव स्पीकर्स के बीच के अंतर को ध्यान में रखते हुए दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए और दोनों को एक सूत्र में बाँधकर शिक्षण कार्य चलाना चाहिए; जिसे हम ''डिफरेंशिएट लर्निंग'' (Differentiate Learning) कहते हैं। साथ ही बहुत आवश्यक है कि भाषा का संरचनात्मक स्वरूप, शब्द-विन्यास, स्पष्टीकरण, सरलीकरण, उच्चारण संबंधी बातों को ध्यान में रखा जाए। कुछ विद्यार्थियों के लिए एस्पिरेटेड और अनएस्पिरेटेड (aspirated and unaspirated) अक्षरों के बीच का अंतर पहचानना तथा उच्चारित करना बहुत कठिन होता है। इसलिए बहुत दफ़ा खाना के स्थान पर ''काना'', ''फूल की जगह ''पूल'' सुनने को मिलता है। डेंटल (Dental) और रेट्रोफ्लेक्स्ड (Retro flex) अक्षरों में अंतर और उच्चारण को लेकर अमेरिका के बच्चों को काफी मुशकिलों का सामना करना पड़ता है। वे दाँत, दंडा, ठंडा, धन्यवाद जैसे शब्द बहुत मुशकिल से बोल पाते हैं।

सांस्कृतिक रूप से सक्षम सेवाएँ प्रदान

अमरीका में बढ़ती हुई भारतीय आबादी के कारण यहाँ के शहरों में भारतीय त्योहार भी ज़ोर-शोर से मनाए जाने लगे। इसलिए यह ज़रूरी है कि हिन्दी के विद्यार्थियों को समय-समय पर विभिन्न भारतीय त्योहारों की जानकारियाँ देते रहना चाहिए साथ ही उन्हें उन त्योहारों से जुड़ी हुई धार्मिक कहानियों, खान-पान एवं कला संस्कृति से जुड़ी हुई बातों से अवगत करते रहना चाहिए। क्लास में हो या क्लास के बाहर, जैसी भी सुविधा उपलब्ध हो विद्यार्थियों को रोज़-मर्रा ज़िंदगी के विभिन्न पहलुओं का अनुभव मिलना चाहिए और यह काम कूकिंग क्लास के ज़रिए हो, रेस्टोरांट में साथ में मिलकर खाना खाने में, इंडियन दुकानों में जाकर चीज़ों को देखने में, धार्मिक क्षेत्रों की यात्रा के ज़रिये, मूवी थियेटर, फिल्म फेस्टिवल, कवि सम्मेलनों मंम जाने में सम्भव है। इसके साथ ही विद्यार्थियों को अलग-अलग सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेने का अवसर भी मिलना चाहिए। चाहे खुद ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन कर या कम्युनिटी में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेने का मौका प्रदान कर। कई साल पहले मैंने अपने विद्यार्थियों को लेकर एक फैंशन शो किया था जिसमें भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के अलग-अलग पहनावों को प्रदर्शित किया गया था। उस प्रदर्शन में भाग लेनेवाला एक अमरीकन छात्र जिसको कश्मीरी कपड़े पहनने का मौका मिला था, कुछ दिन पहले जब वह मुझे एक एयरपोर्ट पर कुछ ही क्षणों के लिए मिला तो उसने बताया कि उस प्रदर्शन में भाग लेने का अनुभव वह कभी नहीं भूल सकता। अभी हाल ही में दिखाए गए भारतीय खान-पान तैयार करने की एक एक्टिविटी के बाद हमारे अपने खान-पान के प्रति रुचि जागृत करने तथा भोजन बनाने की प्रणाली के प्रति आकर्षित कराने के लिए एक छात्रा की माँ ने मुझे बहुत धन्यवाद दिया।

सुप्रसिद्ध न्यूरोलॉजिस्ट और दार्शनिक गेरहार्ड रॉथ (Gerhard Roth) ने कहा है कि अगर कोई व्यक्ति किसी एक विशेष संस्कृति में लगभग बीस साल तक बड़ा हुआ है तो वह अन्य संस्कृतियों की पूरी समझ कभी नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि उसका मस्तिष्क पूरी तरह से उसी सांस्कृतिक तत्त्वों से भरा हुआ होता है; जिसमें अन्य सांस्कृतिक तत्त्वों के लिए स्थान ही नहीं रहता। इसीकारण अमरीकी विश्वविद्यालयों में आकर हिन्दी की पढ़ाई करनेवाले भारतीय मूल के विद्यार्थियों को हिन्दी कक्षाओं में अपनेपन का एहसास होता है, सुरक्षित महसूस करते हैं। बहुत से हिन्दी के विद्यार्थियों ने मुझे बताया है कि यह स्वीकार कर चुके है कि हिन्दी के ज़रिये वे अन्य विद्यार्थियों के साथ एकता के सूत्र में बंधकर खुदको अपनी संस्कृति से जुड़ा हुआ

पाते हैं और उनके बीच की दोस्ती और भी गहरी हो जाती है। वे अपने माता-पिता से विरासत में मिले हुए संस्कारों को अपना कर आनेवाले समय में अपनी खुद की एक पहचान बनाने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

यहाँ अमरीका में सरकार की तरफ़ से स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों तथा सैनिकों में हिन्दी की शिक्षा के साथ-साथ अनेक कम्पनियों के कर्मचारियों को भी हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अमेरिका के बहुत से विद्यालयों के सूचना विवरणिकाओं (Brochures) में हिन्दी को शामिल किया जा रहा है। स्कूल के दाखिला संबंधी जानकारियों को निर्दिष्ट फोन नम्बर पर कॉल करके हिन्दी भाषा में हासिल करने की सुविधा भी उपलब्ध है। हिन्दी भाषा से जुड़ी हुई शिक्षण तथा दूसरी नौकरियाँ भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। साथ ही अखबार पत्रों में, बैंकिंग और बीमा के क्षेत्र में, मोबाइल और कम्प्यूटर जगत में भी हिन्दी का प्रभुत्त्व बढ़ने लगा है। बढ़ती हुई ख्याति के साथ-साथ अनेक समस्याएँ भी सामने आई हैं, जो हिन्दी के पठन-पाठन से जुड़ी हुई हैं। बदलते समय के अनुसार इन समस्याओं का समाधान किया गया तो आनेवाले दशक में हिन्दी का एक नया रूप हमें देखने को मिल सकता है। आजकल अमरीकी विश्वविद्यालयों में भाषा शिक्षण के अंतर्गत एक्टफैल एंड स्टारटाक (ACTFL and STARTALK) के द्वारा बताए गए विषय प्रधान, छात्र उन्मुख शिक्षण प्रक्रिया पर ज़ोर दिया जा रहा है। इस प्रक्रिया से विद्यार्थियों की बोलचाल की क्षमता में हुए बदलाव को हर कोई देख सकता है। लेकिन बहुत से विश्वविद्यालयों में व्याकरण पर आधारित किताबें पढ़ाई जाती है जो विद्यार्थियों को भी पसंद है। एक्टफैल एंड स्टारटाक (ACTFL and STARTALK) के बताए गए प्रणाली का पालन करने के लिए हमें ऐसी किताबों की ज़रूरत है जो जल्द से जल्द लिखी जानी चाहिए। ऐसी किताबों के न होने की वजह से बहुत से शिक्षकों को प्रिंट आउट सम्बंधी अनेक मुशकिलों का सामना करना पड़ता है।

जिस रूप में अमरीका और भारत में हिन्दी पढ़ाने की माँग बढ़ गई है लेकिन उस मात्रा में योग्य शिक्षकों की कमी हर जगह देखी जा रही है। ऐसे में नेटिव स्पीकर्स (Native Speakers) जिनको पढ़ाने का अनुभव नहीं और व्याकरण संबंधी बातों की भी पूरी तरह से ज्ञान नहीं होती उनको भाषा शिक्षण का काम सौंपना पड़ता है। विश्वविद्यालयों के हिन्दी के पेशेवरों को व्याकरण संबंधी सही ज्ञान होना बहुत अनिवार्य है ताकि वे अच्छी तरह उसका व्याख्यान कर पाए और विद्यार्थी व्याकरण के शुद्ध रूप का प्रयोग करने में हिचकिचाए नहीं। उदाहरण के लिए: ''I ate roties'' ''मैंने रोटियाँ खाईं।'' अगर कोई लड़का कहता है तो ''मैंने रोटियाँ खाया।'' क्यों व्याकरण के अनुसार शुद्ध नहीं है। तो इस प्रसंग में परफैक्ट टन्स (Perfect Tense) की गठन संबंधी सारी बातें, सकर्मक क्रिया (Transitive Verbs), आबजेक्ट के लिंग (Gender of the Object), संख्या (Number) जैसी सारी बातें बतानी होंगी ताकि छात्रों के मन की जिज्ञासाएँ सम्पूर्णत: पूरी हो। जिस प्रकार अमरीकी विश्वविद्यालयों में सेमेस्टर के अंत में विद्यार्थियों द्वारा क्लास का इवालुयेशन यानी मूल्यांकन किया जाता है उसी प्रकार भारतवर्ष में भी हिन्दी कक्षा के विद्यार्थियों से राय लेनी चाहिए। इस मूल्यांकन के द्वारा हमें भी बहुत कुछ सीखने, समझने को मिलता है जैसे छात्रों की प्रतिक्रिया, उनकी ज़रूरतें, उनको आगे बढ़ाने के तरीकें, और उन मूलयांकन के आधार पर फिर से सिलेबस-पाठ्यक्रम तैयार करना अनिवार्य हो जाता है।

अमरीकी विश्वविद्यालयों में कई सालों से हिन्दी भाषा पढ़ाके मैंने यह महसूस किया है कि हिन्दी साहित्य के साहित्यिक तत्त्वों और काव्य तत्त्वों का अध्ययन अध्यापन उस मात्रा में नहीं हो पाता है जिस मात्रा में भारतीय विश्वविद्यालयों में हो रहा है। ऐसी स्थिति में ऐसे विषयों पर साहित्यिक आलोचनाएँ, अलोचनात्मक संगोष्ठियाँ तथा बैठकों का अयोजन करते रहना चाहिए ताकि पेशावरों का साहित्यिक तत्त्वों, मूल्यों के साथ सम्बन्ध बना रहे। गूगल हैंगआउट, स्काइप, फेस टाईम जैसे इंटरनेट संसाधनों के उपयोग से इस कार्य को और सफल बनाया जा सकता है जिससे कि हिन्दी के पेशावर दूसरे भाषा विशेषज्ञों से बातचीत कर सकें और अपना विचार विमर्श रख सकें। समय-समय पर शिक्षकों और छात्रों दोनों को अपने लेख, कविताएँ, कहानियाँ विभिन्न आनलाईन मेगज़ीन्स, पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहना चाहिए। अनुवाद कार्य के लिए भी पेशावरों तथा विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। संसार की लगभग तीन हज़ार लिखित भाषाओं में उपलबद्ध ज्ञान को अगर हिन्दी में अनुवाद किया जाए तो हिन्दी पाठक तो लाभाम्बित होंगे ही साथ ही हिन्दी साहित्य का खज़ानों में कितनी बढ़ोती होगी उसका अंदाज़ा लगाना बहुत मुशकिल होगा। ठीक उसी प्रकार अगर हिन्दी की कहानियों, कविताओं, उपन्यासों, चिंतनपरक लेखों, आलोचनायों को उन सारी भाषाओं में अनुवाद किया जाए तो न जाने कितने लोग हिन्दी की ओर आकर्षित हो सकते हैं और भाषाओं के बीच सदैव के लिए एक मैत्री भाव पैदा हो सकता है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद्र, रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, मुक्तिबोध, निराला, नागार्जुन, राहुल सांस्कृत्यायन आदि के प्रसिद्ध काव्यों का अनुवाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में हुआ है। इसी प्रकार आधुनिक साहित्यकारों की किताबों का भी अनुवाद होते रहना चाहिए। जैसे आधुनिक हिन्दी साहित्यकार अजय नावरिया के द्वारा रचित दलित साहित्य की बहुत सारी किताबों का अनुवाद अंग्रेज़ी, इटालियन, जापानी, चीनी जैसी भाषाओं में हुआ है। हिन्दी कहानियों पर आधारित बॉलीवुड फ़िल्में भी लगातार बन रही है जो हिन्दी साहित्य के लिए एक शुभसंकेत है। हम एक ऐसे ''अनलाइन डिसकशन फोरम'' (Online Discussion Forum) की शुरूआत कर सकते हैं जिससे कि अमेरिका के हिन्दी भाषा के विशेषज्ञों के साथ-साथ भारत के हिन्दी विशेषज्ञों को भी इसमें शामिल किया जा सके। इस फोरम के माध्यम से हिन्दी भाषा साहित्य के अनेक विषयों पर विचार विमर्श करने के साथ-साथ आधुनिक भाषा शिक्षण प्रक्रिया से भी

लोगों को अवगत कराया जा सकता है और साहित्यिक तत्त्वों पर अलोचनात्मक व्यक्तव्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ''स्टडि एब्राड'' (Study Abroad) कार्यक्रम के द्वारा भी भाषा को सीखने-सीखाने के अनेक अवसर प्रदान किए जा सकते हैं। अमरीकी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को AIIS (American institute of Indian studies) और AIFS (American Institute of Foreign Study) छात्रवृत्तियों (Scholarships) के द्वारा भारत में हिन्दी पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है। यह ज़रूरी है कि अलग-अलग विज्ञापनों के द्वारा लोगों को हिन्दी पाठ्यक्रमों के बारे में जानकारी दी जाए। हिन्दी शिक्षकों की कमी होने के कारण से बहुत से स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय आपस में सहयोग करके टेली कांफ्रेंस (Tele -Conference) के द्वारा हिन्दी शिक्षण कर रहे हैं। दूसरे विश्वविद्यालय या संस्थाओं को भी इस तरह के कार्यक्रम शुरू करना चाहिए।

बड़ी अजीब बात है कि यहाँ अमरीका में ज़्यादा से ज़्यादा लोग हिन्दी सीखना चाह रहे हैं पर भारत में अभी भी कितने ही परिवार ऐसे हैं जो हिन्दी सीखना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। जब तक हिन्दी के प्रति ऐसी मनोवृत्ति खत्म नहीं होती तब तक हिन्दी का मानदंड ऊँचा नहीं हो सकता और मानदंड को ऊँचा बनाने में सबसे आवशयक यह है कि हिन्दी को पैसा कमाने का ज़रिया बनाया जाए। हिन्दी को एक कमाऊ भाषा के रूप में प्रस्तुत किया जाए ताकि भविष्य में लोग इसकी ओर अधिक आकर्षित हों और आशा है कि भारत सरकार भी इस दिशा में ठोस कदम उठाएगी। अंग्रेज़ कवि स्पेंडर ने कभी लिखा था कि हिंदुस्तान के लोग अपनी इतनी समृद्ध भाषाओं के रहते हुए अंग्रेज़ी में रचना क्यों करते हैं, समझ में नहीं आता।

जिस तरह से चीन, जापान, रशा, फ्रांस आदि अपनी-अपनी भाषाओं को साथ लेकर प्रगति कर रहे हैं अब समय आ गया है कि हिन्दी को भी साथ लेकर देश की गरिमा बढ़ाई जाए।

***

ग़ज़लें

शिवकुमार अर्चन

संपर्क:
१० प्रियदर्शिनी ऋषि बैली, ई-8 गुलमोहर एक्सटेंशन, भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो.- 0942537184

चोंचें अलग-अलग हैं, तो दाने अलग-अलग
इस दौर में हैं भूखे के माने अलग-अलग
पेड़ों पे परिंदे नहीं दिखते है आजकल
सबने बना लिए हैं ठिकाने अलग-अलग
बस शोर हो रहा है कोई गीत नहीं है
गायक अलग-अलग हैं घराने अलग-अलग
ये आदमी इंसान कभी हो नहीं सका
कहने को आए कितने ज़माने अलग-अलग
यह बात कि खतरे में है इज़्ज़त की ज़िंदगी
किस किस के घर मैं जाऊँ बताने अलग-अलग
जो भी मिला है मुझको यहाँ ग़मज़दा मिला
हर एक के हैं ग़म के फ़साने अलग-अलग

***

परों की उड़ानों से यारी बहुत है
मगर आसमाँ भी शिकारी बहुत है
अंधेरी बहुत है हमारी ये दुनिया
उन्हें चाँदनी की ख़ुमारी बहुत है
हर इक शेर पर उसके बजती है ताली
वो शाइर तो कम है मदारी बहुत है
जो लड़की अभी रेम्प पर से है गुज़री
है कपड़ों में लेकिन उघारी बहुत है
कहाँ उनको पिज़्ज़ा, कहाँ उनको बर्गर
ग़रीबी तो रोटी की मारी बहुत है
सियासत के खेलों को समझो ज़रा तुम
जो राजा है अपना भिखारी बहुत है
बड़ी शान उसकी, बड़े ठाट उसके
ये कम जानते हैं उधारी बहुत है
ये मालूम था तू न आएगा लेकिन
तेरी राह हमने निहारी बहुत है

***

मैं बाज आया अब ऐसी तीरगी से
धुँआ आने लगा है आरती से
मिली मोहलत न इतनी बन्दगी से
जो मिल पाते ज़रा हम ज़िंदगी से
हथेली पर नए सूरज उगाओ
अँधेरे बढ़ गए हैं रौशनी से
कलम अश्कों की गंगा डुबोकर
लिखे है गीत मैंने बेकली से
अधूरी प्यास का इक सिलसिला हूँ
नदी छोटी है मेरी तश्नगी से
समय के पाँव में छाले पड़े हैं
ज़रा देखो उतर कर पालकी से

***

हम फ़क़त एक बूँद थे, बादल हुए
फिर किसी की आँख का काजल हुए
जिस तरह हो तोड़िए ख़ामोशियाँ
मुद्दतें गुज़रीं यहाँ हलचल हुए
वक़्त का सूरज तपा कुछ इस तरह
बहने वाले लोग भी दलदल हुए
मिल सका न प्यार का पानी जिन्हें
उन दरख़्तों के न मीठे फल हुए
मेरे आँसू, मेरे ग़म, जोशे-जुनूँ
तुम कभी परचम कभी आँचल हुए
आदमी-दर-आदमी की खोज में
जाने कितने कारवाँ ओझल हुए
तेरी ख़ातिर अय मेरी जाने-ग़ज़ल
हम कभी ग़ालिब कभी सहगल हुए

***

दर्द ओ-ग़म इज़्तिराब रहने दे
जिगर में इंकलाब रहने दे
जानता हूँ मैं हक़ीक़त इनकी
फिर भी आँखों में ख़्वाब रहने दे
मत हटा जाम सहर होने तक
इसमें थोड़ी शराब रहने दे
ये भरम ही तो मेरा जीवन है
अपने रूख पर नकाब रहने दे
मेरी आँखों में अय मेरे मौला
आग रहने दे आब रहने दे
बाद मुद्दत के तू मिला है मुझे
अब पुराना हिसाब रहने दे
मैं फरिश्ता नहीं हूँ इंसा हूँ
जो हूँ अच्छा खराब रहने दे

***

प्रवासी साहित्यकार है कौन ?

विक्रम बाली

मैं कोई लेखक नहीं बस एक सजग पाठक हूँ और मैरीलैंड में रहता हूँ। पढ़ने का शौक है और साहित्य में रुचि होने के कारण अंतरजाल पर छाईं सभी ई-पत्रिकाओं, प्रकाशित पत्रिकाओं, वेब पत्रिकाओं का नियमत पाठक हूँ। बस एक विषय पर कुछ चर्चा करना चाहता हूँ। विभोम-स्वर में दृष्टिकोण स्तम्भ देखा तो लगा मैं भी अपना दृष्टिकोण दे सकता हूँ। शायद यह स्तम्भ उन्हीं पाठकों के लिए है, जो स्वयं लिख नहीं सकते पर पढ़ने के बाद कई शंकाओं से घिरे रहते हैं और उन्हें वे कहीं व्यक्त भी नहीं कर सकते।

वर्षों से प्रवासी, प्रवासी साहित्य, प्रवासी साहित्यकार, प्रवासी कहानी, प्रवासी कविता के बारे में लेख, वाद- विवाद पढ़ता रहा हूँ। प्रवासी विशेषांक भी पढ़े। पर एक नुक़्ता अभी भी मुझे स्पष्ट नहीं हुआ कि प्रवासी साहित्यकार है कौन ? बस एक बात समझ पाया हूँ, कि मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, टुबैगो, फीजी आदि देशों के लेखक वहाँ जन्मे-पले हैं। अत: असल में वे ही देश वासियों के लिए प्रवासी हैं। उनका लेखन ही पूरी तरह से वहाँ के जीवन से ओत-प्रोत है। मानता हूँ अभिमन्यु अनत का उपन्यास 'लाल-पसीना' प्रवासी साहित्य की एक अनमोल कृति है। पर अन्य देशों यानी यूरोप, ब्रिटेन, अमेरिका, कैनेडा इत्यादि देशों के कई साहित्यकार (महिलाएँ) तो शादी के बाद और पुरुष विद्यार्थी या इन दोनों ही परिस्थितियों में इन देशों में आए। उम्र बीत गई उनकी इन देशों में। ब्रिटेन की उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर, उषा वर्मा, कादम्बरी मेहरा, अचला शर्मा, डेनमार्क से अर्चना पैन्यूली, शारजाह से पूर्णिमा वर्मन, आबूदाबी से कृष्ण बिहारी और अमेरिका से उषा प्रियंवदा, सुषमा बेदी, सुधा ओम ढींगरा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार आदि। और भी बहुत से ऐसे साहित्यकार जो इसी श्रेणी में आते हैं। किसी का नाम छोड़ना मेरा इरादा नहीं बस नामों का उदाहरण दे रहा हूँ मुद्दे पर आने के लिए।

इन सबके लेखन में देखें तो विदेश का असली चेहरा पाठकों के सामने आता है। उषा प्रियंवदा और सुषम बेदी के उपन्यासों के बाद डेनमार्क की अर्चना पैन्यूली का उपन्यास 'वेयर डू आई बिलॉन्ग?' और नया उपन्यास 'पॉल की तीर्थ यात्रा' तथा सुधा ओम ढींगरा का उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' आज चर्चा में हैं। 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' जैसा उपन्यास वही लेखक लिख सकता है, जिसने वर्षों इस धरती की धूप-छाँव सही है। यहाँ के हर उतार- चढ़ाव को भोगा है। मेरा कहने का अभिप्राय जिन रचनाकारों ने अपना जीवन विदेश में होम किया वे भी प्रवासी लेखक हैं। हाँ जो लेखक भारत में जीवन बिता कर, खाए-पिए अघाए रिटारमेंट के बाद अपने बच्चों के पास रहने या कुछ समय के लिए उन्हें मिलने आते हैं, उन्हें भी प्रवासी साहित्यकार कहना या उनके लेखन को भी उसी स्तर पर देखना न्याय संगत नहीं लगता। कई तो वर्षों पहले भारत लौट गए और आज भी अपने आप को प्रवासी लेखक कहते हैं।

प्रवासी साहित्य के सही मूल्याङ्कन के लिए प्रवासी साहित्यकार कौन हैं? के लिए मापदण्ड बनाने होंगे-

1) दूसरी पीढ़ी के लेखक (मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, टुबैगो, फीजी आदि देशों में) 2) पहली पीढ़ी के लेखक जिनका जीवन विदेशों में बीत रहा है।

इन सबके साहित्य का यह अवश्य गुण होना चाहिए कि दोनों श्रेणी के साहित्य में विदेश की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, सरोकार ज़रूर हों। जिनके नाम मैंने लिए हैं, उनके साहित्य में अपने-अपने देश का बखूबी वर्णन ही नहीं वहाँ की जिज्ञासाओं का समाधान भी है। अब जो कुछ महीनों के लिए, कुछ वर्षों के लिए विदेशों में रहने आते हैं, उनका विदेशों को देखने और वहाँ के लिए लिखने का नज़रिया बस भारतीय संस्कृति के साथ तुलनात्मक होकर रह जाता है। जबकि विदेश को जी कर लिखने वालों की मनोदशा ही और होती है। वे यहाँ के यथार्थ से परिचित होते हैं और दोनों देशों की सांस्कृतिक मनोवृत्तियों और विरोधाभासों का भी भान होता है उन्हें। मैंने 'अभिव्यक्ति' पर सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है?' पढ़ी। पढ़ कर स्तब्ध रह गया। मैं ऐसे इलाके में स्वयं गया हूँ, हर शहर में ये एरिया हैं। वर्षों वहाँ की ख़ाक छानकर ही ऐसी कहानी लिखी जा सकती है। भीतर-बाहर तबाही मचा दी इस कहानी ने। लगा की कोई प्रवासी कहानी पढ़ी।

पिछले वर्ष भारत के कुछ साहित्यकार मित्रों ने साहित्यिक सभाओं में साथ चलने के लिए कहा। मैं उन सभाओं में गया। वहाँ उन लोगों को प्रवासी सम्मानों से सम्मानित होते देखा; जिन्हें मैं भी जानता था और वे अपने जीवन के अंतिम वर्षों में यहाँ बच्चों के पास रहने आए हैं। बस कुछ लेख लिखे हैं और कुछ कविताएँ। जब मैंने अपने साहित्यकार मित्रों से कुछ कहना चाहा तो उन्होंने मुझे यह कह कर चुप करा दिया, इनके पुराने कनेक्शन हैं। विदेश में रह रहे हैं तो प्रवासी सम्मान ही इन्हें मिलेगा। उस यात्रा में मुझे ऐसे कई अनुभव हुए। बहुत निराशा हुई। यह जेन्युइन प्रवासी लेखकों के साथ बेइंसाफ़ी है। अब कैसे समझ में आए कि प्रवासी साहित्यकार है कौन? शोध-छात्र कैसे अंतर कर पाएँगे? क्या वहाँ भी कनेक्शन काम नहीं करेंगे? मैंने कई शोध आलेख पढ़े, अंतरजाल पर बिखरे हुए हैं, उन लेखकों को प्रवासी कहा गया है, जो विदेश की धरती को हाथ लगा कर लौट गए। हो सकता है प्रवासी साहित्य के आलोचक, समीक्षक और पुरोधा मेरे विचारों से सहमत न हों; क्योंकि वे हर विषय को बृहत् पटल पर देखते है। पर कई बार छोटी-छोटी शंकाओं से ही बड़े समाधान मिलते हैं।

***

प्रवासी साहित्य और उपन्यासकार उषा प्रियवंदा

संध्या चौरसिया

विगत कुछ वर्षों से प्रवासी हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकारों को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श होते रहे है। परन्तु अनेक व्यक्ति इस संकल्पना से परिचित नहीं हैं। जब हम प्रवासी हिन्दी साहित्य की बात करते है, तब हमारे समक्ष बहुत सारे प्रश्न उठ खड़े होते है- 'प्रवासी' शब्द से क्या अभिप्राय है? और प्रवासी साहित्य, प्रवासी हिन्दी साहित्य या प्रवासी भारतीय साहित्य किसे कहते हैं? इसका स्वरूप कैसा होता हैं? इस साहित्य की सृजनात्मकता कैसे होती है? हम किन्हें प्रवासी साहित्यकार कह सकते हैं? इस प्रकार हमारे समक्ष अनेक प्रश्न उभर आते हैं? इन सभी प्रश्नों पर समय-समय पर विद्वानजन पत्र-पत्रिकाओं एवं अपनी पुस्तकों के माध्यम से विचार-विमर्श करते रहे हैं।

भारतीय मूल के अनेक जन विश्वभर में फैले हुए हैं। जिन्होंने विदेशों को अपनी कर्मभूमि बना लिया है। इस बात में कोई नवीनता नहीं है और प्रवासी साहित्य भी नवीन नहीं हैं परन्तु इसी बीच बीसवीं शताब्दी के प्रवासी भारतीयों ने भारतीय अस्मिता की खोज के लिए प्रयासरत रहे हैं। आज के प्रवासी साहित्य और पूर्ववर्ती प्रवासी साहित्य में हम अंतर पाते है। लगभग पैंतीस-चालीस वर्शों से प्रौद्योगिकीकरण के कारण तकनीक विकसित हुआ हैं। आज के समाज में प्रौद्योगिकी ने अपनी चरम सीमा को लाँघती गई है। कहीं-न-कहीं इससे प्रवासी हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ है। प्रवासी भारतीय साहित्य के कारण भारत से दूर रहते हुए भी भारत से बहुत सन्निकट होते गए हैं। ''भारतीय मूल के विदेशों में रहने वालों के सृजनात्मक लेखन को प्रवासी साहित्य कहा जाता है और जिन्होंने 'हिन्दी' को केंद्र में रखकर या माध्यम बनाकर या हिन्दी में लिखा है वे 'प्रवासी हिन्दी साहित्यकार' हैं तथा यह बहुत समृद्ध 'प्रवासी साहित्य' हैं।''1

प्रवासी हिन्दी साहित्य के अंतर्गत कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, यात्रा-वृतांत, संस्मरण, आत्मकथा आदि का सृजन हो रहा है। प्रवासी साहित्यकारों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। इन साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से इतिहास, मिथक, सभ्यता को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने प्रयासों से प्रवाहित रखा। प्रवासी हिन्दी साहित्यकार मॉरीशस, कनाडा, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, अमेरिका, यूरोप, ब्रिटेन आदि स्थानों को अपनी कर्मभूमि बनाया है।

संपर्क:
(शोधार्थी)
हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

अगर हम अमेरिका के प्रवासी भारतीय साहित्यकारों पर ध्यान दें, तो उनमें से हमारे सामने सबसे सशक्त साहित्यकार आते है- उषा प्रियंवदा, सुषमा बेदी, सुधा ओम ढींगरा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी आदि। अगर हम चाहे की इन सभी का नाम लिए बिना हिन्दी साहित्य का इतिहास पूर्ण हो सकता है, तो यह केवल हमारी गलतफ़हमी ही है क्योंकि ये सभी साहित्य हिन्दी प्रवासी साहित्य में अपना अलग स्थान रखती हैं। प्रवासी साहित्यकार साठ के दशक में अपने साहित्य के माध्यम से प्रकाश में आए। जिसमें से उपन्यासकार 'उषा प्रियंवदा' विशेष स्थान रखती हैं हम आगे उनके उपन्यास पर प्रवासी/भारतीय साहित्य को वर्तमान परिदृश्य के संदर्भ में समीक्षा करने का प्रयास करेंगे।

उषा प्रियंवदा के लेखन में हम अमेरिकी जीवन की झलक साफ तौर पर देख सकते है। हम उनके साहित्य में अमेरिकी जीवन शैली की भिन्नता एवं विचारों की स्वतंत्रता और रहन-सहन में खुलापन देखने को मिलता है। हम उनके साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों की टकराहट खुले तौर पर देख सकते है। उषा प्रियंवदा ने अपनी लेखनी के माध्यम से हमारे हिन्दी साहित्य को समृद्ध तो किया ही है, साथ-ही-साथ हमारा परिचय एक ऐसे साहित्य से भी करवाया, जिससे हिन्दी जगत् अभी तक अपरिचित था।

उनके उपन्यास- पचपन खम्भें लाल दीवारें (1962), रुकोगी नहीं राधिका (1968), शेषयात्रा (1984),अन्तर्वंशी (2000), भया कबीर उदास (2007) उन्होंने उपन्यास विधा के साथ-ही-साथ कहानी विधा पर भी अपने हाथ आजमाए हैं। उनकी कहानी-संग्रह- फिर बसंत आया (1961), ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (1961), एक कोई दूसरा (1966), मेरी प्रिय कहानियाँ (1974), कितना बड़ा झूठ (1988), शून्य तथा अन्य रचनाएँ (1996), मेरी कहानियाँ (2000), सम्पूर्ण कहानियाँ (2006), बनवास (2009)।

उषा प्रियंवदा के सभी उपन्यासों एवं कहानियों में कहीं-न-कहीं विदेशी परिवेश नज़र आता है। उषा जी की नायिका कभी भारत से विदेश में जाती है या विदेश से भारत में, उन्होंने अपने साहित्य में विदेश में रहने वाले भारतीयों के जीवन में होने वाली समस्याओं को उभारा हैं। उनका पहला उपन्यास 'पचपन खम्भें लाल दीवारें' की नायिका सुषमा है। जो अपने परिवार की आर्थिक रूप से सहायता करती है। वह अपने भविष्य, अपने जीवन के बारे कभी में नहीं सोचती बल्कि अपनी माँ, भाई-बहन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अपने आपको पूरी तरह समर्पित करती है। वह कभी अपने विवाहिक जीवन या किसी अन्य सुख के बारे में नहीं सोचती। इसी बीच नील नाम के पात्र से वह मिलती है जो उसे पसंद करता है और विवाह करके अपने साथ विदेश ले जाना चाहता है। वह कुछ समय बाद हालैण्ड चला जाएगा। सुषमा नील से कहती है कि ''मेरी बहुत ज़िम्मेदारियाँ है। तुमसे तो कुछ भी छिपा नहीं है। पक्षपात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और भाई, सब मुझे ही करना है।''2 नील सुषमा से पूछती है कि ''सुषमा क्या मेरे लिए कोई आशा नहीं है? तुम मेरे प्रति इतनी क्रूर क्यों हो गई हो?''3

वह दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते है इसके बाद भी सुषमा अपने कर्त्तव्य के लिए अपने प्रेम को छोड़ देती है। इस उपन्यास में उन्होंने सुषमा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी दृष्टि के प्रति आदर भाव लिखाया है। नील के जाते है सुषमा फिर से अंधकार में चली जाती है जहाँ उसके लिए कोई आशा की किरण नज़र नहीं आती है।

उनका दूसरा उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र राधिका है। जिसकी माँ की मृत्यु पहले ही हो चुकी है वह अपने पिता के साथ रही है। वह अपने पिता को प्रेम करती है और चाहती है कि पिता का पूरा ध्यान उस पर ही रहे। परन्तु उसके पिता विद्या से विवाह करना चाहते है। यह बात जैसे ही राधिका को पता चाहती है, वह अपने पिता से घृणा करने लगती है। वह अपने पिता के विवाह का विरोध अपने ही ढंग से करती है। वह डैन के प्रति आकर्शित है और इस कारण वह डैन के साथ विदेश चली जाती है। डैन ने राधिका से कहा है कि ''तुम्हें नई तरह से एडएस्ट करने में समय लगेगा, मैं जानता हूँ, मुझसे छूटने पर दु:ख भी। तुममें युवावस्था की लचक है और तुम शीघ्र ही इस दु:ख पर विजय पा लोगी। मैं तुम्हें रिजेक्ट नहीं कर रहा हूँ। मुक्त कर रहा हूँ।..... राधिका तुम मुझमें अपना पिता की जगह.... मेरा तो स्वतंत्र व्यक्तित्व है।''4 विदेश जाते ही डैन के व्यवहार में परिवर्तन आता है, डैन राधिका से दुर्व्यवहार करता है और राधिका को छोड़ देता है। वह फिर अपनी पढ़ाई समाप्त करके भारत वापस आ जाती है। भारत लौटने के बाद वह अपने परिवार जनों से मिलती है और फिर वहीं अपना स्वतंत्र घर बनाती है। जब उससे पूछा जाता है कि तुमने डैन से विवाह किया था या नहीं। तब वह उत्तर देती है ''कोई सवाल ही नहीं उठता था। डैन ने मुझे विदेश जाने में सहायता ज़रूर दी थी नहीं तो यहाँ बैठे-बैठे मुझे क्या पता चलता कि कौन-सी यूनिवर्सिटी में अप्लाई करूँ?''5 इस बीच उसके जीवन में दो अन्य व्यक्ति भी आते है- अक्षय और मनीष। राधिका अक्षय को पसंद करती है और अक्षय भी। परन्तु अक्षय राधिका को उसके अतीत के कारण स्वीकार नहीं कर पाता। वहीं दूसरा व्यक्ति मनीष भी उसे पसंद करता है। परन्तु राधिका मनीष को प्रेम नहीं करती; क्योंकि वह उसे निष्ठा पूर्ण प्रेम नहीं कर सकता है; क्योंकि मनीष के अन्य स्त्रियों के साथ भी संबंध रहते है। वह एक के साथ जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है। मनीष कहता है कि ''कब तक मुझे रिजेक्ट करती रहोगी? मैं तुम्हें पूर्ण रूप से स्वीकार करूँगा, तुम्हारे मूड्स, तुम्हारी समस्याओं, तुम्हारे विगत सहित.... क्या तुम अक्षय को वचन दे चुकी हो?''6 यह बात सुनकर राधिका की आँखों में आँसू आ जाते हैं। वह सोचती है कि ''अक्षय को मैं सब कुछ दे सकती थी यदि स्वीकार करता।'' 7 फिर भी उपन्यास के अन्त तक आते-आते राधिका मनीष के साथ रहने का निश्चय करती है।

'शेष यात्रा' उपन्यास में उषा जी ने नारी

जीवन पर होने वाले अत्याचारों को रेखांकित किया है। इस उपन्यास में नायिका अनु की कथा मुख्य है। इस पात्र के इर्द-गिर्द ही कथा बुनी गई है। अनु का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से कर दिया जाता है। जो विदेश में रहता है। उससे विवाह होने के पश्चात् वह उसे भी अपने साथ विदेश ले जाता है। उसने भी वही सपने देखे थे जो एक लड़की अपनी शादी के देखती है और अपने पति के बारे में सोचती है; परन्तु वहाँ जाकर उसके सारे सपने टूट जाते है और तब होता है उसके जीवन का संघर्ष। वहाँ जाकर उसे पाता चला है कि जिससे उसका विवाह हुआ है। उस व्यक्ति के अन्य स्त्रियों के साथ भी संबंध रहे है और अब भी वह अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में है। ज्योत्स्ना कहती है कि ''अनु तुम भला-बुरा सोचो। इस लीक को क्यों पकड़े बैठी हो? अपने को गला रही हो। प्रणव तो हमेशा से ही ऐसा था, कभी किसी का होकर रहा है? शादी से पहले भी तो उसके कितने संबंध रह चुके हैं। नई-नई नर्से, हम लोग तो सब जानते हैं देखते आए हैं। सोचा था तुम्हें पाकर सुधर जाएगा।... शिकागो में उसकी परमानेंट गर्लफ्रैंड है। डायवोर्सी उससे तो खुल्लम-खुल्ला उसका संबंध है, सारे डॉक्टर जानते है। जब भी शिकागो जाता है, उसी औरत के पास ठहराता है।''8 यह सब पाता चलने के बाद वह ना तो भारत लौट सकती है और न ही वहाँ रहना चाहती है। अनु का दिल टूट जाता है। वह कुछ समय के लिए पागलों जैसे व्यवहार करने लगती है। दिव्या उसे समझती है कि उसे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए, जीवन के प्रति उदास होने के बजाए। इस तरह के विवाह के संबंध में बंधे रहने से अच्छा है वह उससे मुक्ति पा ले।

कुछ समय के पष्चात् अनु मेडीकल की परीक्षा में पास होकर डॉक्टर बना जाती है उसके बाद नोबेल विजेता टीम में शामिल हुई है। और जिस अस्पताल में वह कार्य करती है। वहाँ प्रणय मरीज़ बनकर आता है। आज परिस्थिति अलग है। अनु प्रणव को बताती है कि ''कुछ था, कुछ नौकरियाँ की। कुछ क़र्ज़ लिए, एक बार शुरूआत करके, फिर छोड़ने का सवाल ही नहीं उठा। किसी न किसी तरह से पेट के बल रेंगते हुए सैनिक की तरह मैंने यह पुल पार कर ही लिया।''9 प्रणय का जीवन अब अनु के हाथ में हैं। जब प्रणय अनु को देखता है। तब वह वहाँ से बिना कुछ कहे अपने-आप चला जाता है।

उषा जी इस उपन्यास के माध्यम से आधुनिक समाज की अहम समस्या को उठाती है। मध्यवर्गीय समाज में ऐसा माना जाता है जो लोगों विदेश में नौकरी करते है अगर उनका रिश्ता उनकी बेटी के लिए आए तो बेटी सौभाग्यशाली मानी जाती है और तब माता-पिता उस व्यक्ति की बिना जाँच-पड़ताल कराए अपनी बेटी से विवाह करवा देते है। उनकी बेटी से सत्य की साक्षात्कार उस समय होता है। जब व्यक्ति के हाथ में कुछ नहीं रह जाता है।

'अन्तर्वंषी' उपन्यास में उन सभी भारतीय परिवारों की जीवन शैली को लिया गया है। जो प्रवास में सिर्फ इसीलिए बसे हुए है कि उन्हें बेहतर अवसर मिल सके। वनश्री का विवाह शिवेष के साथ हो जाता है और उसे अपने साथ ले जाता है। वनश्री विदेष में जाकर वाना बना दी जाती है। जो अपने पति के कारण घर के खर्चो के लिए काम करती है। वाना अपने जीवन से उदास हो जाता है और तभी अचानक उसे उसके बचपन का प्रेमी राहुल मिल जाता है। पहले तो राहुल वनश्री को पहचान नहीं पाता। फिर बातों-बातों में राहुल वाना से कहता है- ''मगर अन्दर मन तो भारतीय रहता है और ऊपर की त्वचा भी।''10 फिर बाद वे मिलते-जुलते रहते हैं। वाना अपने पति शिवेष से प्रेम नहीं करती है। शिवेष ड्रग का काम भी करने लगा है। जिससे वह पुलिस के द्वारा पकड़े जाने पर कभी जेल जा सकता है। इसी कारण वाना अपने पति शिवेष का साथ छोड़कर देती है। और राहुल के साथ रहने का निष्चय करती है। क्योंकि वाना पहले राहुल के कारण गर्भवती हो चुकी थी। तब उसकी माँ उसे किसी अन्य स्थान पर ले जाती है और कहती है कि उसका बच्चा मर गया। विदेश में अचानक ही उसे राहुल मिल जाता है।

उषा जी ने अपने इस उपन्यास में विदेश में रहने वाले व्यक्तियों की परिस्थितियों का चित्रण किया है कि हमें अपने देश में बैठकर ऐसा लगता हैं कि पश्चिम का जीवन बहुत सरल होता है। परन्तु ऐसा नहीं है विदेश में समस्याएँ और अधिक बढ़ जाता है।

'भया कबीर उदास' उपन्यास में एक ऐसी महिला लिली पांडये की कथा है जो अमेरिका में पीएॅच.डी कर रही है। वह तीस की आयु पार कर चुकी है। उसे पता चलता है कि उसे स्तन कैंसर है। वह इस कारण अकेली एवं उदास हो जाती है। वह अपना जीवन सामान्य स्त्रियों जैसा जीना चाहती है। इस दृश्टि से इस उपन्यास की कथा नई है जो अपने आप में बहुत सारे प्रश्नों को उठाती है कि क्या समाज के पुराने मानदण्ड आज भी वैसे है जैसे पहले हुए करते थे कि समाज में आज भी सुंदरता व्यक्तित्व से अधिक महत्त्व रखती है? इस पूरे उपन्यास की कथा डायरी शैली में लिखी गई है।

स्पष्ट है कि हम प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य को पढ़कर विदेशों के अनेक अनुभवों, भावनाओं, संवेदनाओं से जुड़ सकते हैं। यह बात भी स्पश्ट होती जाती है कि मानवीय संवेदनाओं को देशकाल की मर्यादाओं में बाँधा नहीं जा सकता। उषा प्रियंवदा का साहित्य प्रवास में रह रहे भारतीय व्यक्तियों का साहित्य है। वे इन परिस्थितियों को इसी कारण इतनी सहजता से लिख सकी क्योंकि वह स्वयं अपने देश से दूर है और वहाँ के अनुभवों को जी रही हैं। सफल प्रवासी साहित्यकार के रूप में समाने आई।

***

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-2-पचपन खम्भें लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 134, 3-उपरिवत्, पृ. 149,4-रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 29, 5-उपरिवत्, पृ. 23, 6-उपरिवत्, पृ. 108, 7-उपरिवत्, पृ. 111, 8-शेष यात्रा-उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृ. 67, 9-उपरिवत्, पृ. 135,10 अन्तर्वंषी-उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 11

राजस्थान की मालती सत्संगी 1991 से नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका आईं और तब से वे यहीं रह रही थीं। साहित्य प्रेमी, साहित्य पारखी और पुस्तकों के प्रति समर्पित वह एक ऐसा व्यक्तित्व थीं, जिनकी कमी नॉर्थ कैरोलाइना के साहित्य जगत् को खलेगी। एक पाठक कितना बड़ा आलोचक और समीक्षक हो सकता है, वे उसका एक जीता जागता उदाहरण थी। मृदु भाषी पर दृढ़ता से अपनी बात कहने वालीं मालती सत्संगी ढींगरा फ़ाउण्डेशन में बहुत सम्मानीय स्थान रखती थीं। सम्मानों के लिए आई पुस्तकों के अंतिम दौर की वे पाठिका थीं और निर्णायक मंडल की वे सदस्य। निष्पक्ष राय देती थीं और बस कृति के प्रति उनकी निष्ठा रहती थी। लेखक के नाम की ओर ध्यान नहीं देती थीं। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया साहित्य के प्रति अनुराग होने के लिए लेखक होना ज़रूरी नहीं हालाँकि वे कभी-कभी हिन्दी-चेतना पत्रिका के लिए स्तंभ लिखती थीं। जब भावों का अतिरेक हो जाता था, तब कलम उठाती थीं। हिन्दी चेतना को छोड़ने के बाद जब विभोम-स्वर निकालने का निर्णय हमने लिया तो विभोम-स्वर का आरंम्भ भी उन्हीं के आशीर्वाद से हुआ। कवि सम्मेलनों और कवि गोष्ठियों की वे शान होती थीं। वे पुस्तकें पढ़कर दूसरों को पढ़ने के लिए हमेशा प्रेरित करती थीं। और पुस्तकों की दुनिया में बेहद मस्त रहती थीं। ढींगरा फ़ाउण्डेशन, विभोम-स्वर और नॉर्थ कैरोलाइना का साहित्यिक जगत् उन्हें, उनके साहित्य और हिन्दी के प्रति योगदान के लिए हमेशा याद करता रहेगा। इस वर्ष ढींगरा फ़ाउण्डेशन के सम्मान उनकी सम्मानीय राय से वंचित रह जाएँगे। इस वर्ष सम्मानों के अंतिम दौर की पुस्तकें वे पढ़ नहीं पाईं। 12 जनवरी 2017 को वे हमें छोड़ कर चलीं गईं, हम सबकी ओर से उन्हें हार्दिक विनम्र श्रद्धांजलि.....

अनछुई, नई नकोरी यादें....

सुधा ओम ढींगरा

पंजाब के जालन्धर शहर से 1982 में मैं शादी के बाद अमेरिका के सेंट लुईस शहर में आई। पति डॉ. ओम ढींगरा वहाँ की मॉन्सेंटो कम्पनी में वैज्ञानिक थे। आठ वर्ष वहाँ रहने के बाद 1991 में हम नॉर्थ कैरोलाईना के कैरी शहर में आ गए। यहाँ दवाइयों की कम्पनी ग्लेक्सओ में ओम जी तरक़्क़ी लेकर आए थे।

अमेरिका के पेशेवरों का यही चलन है, जहाँ अच्छा पद और धन मिला, वहाँ चले जाते हैं। शहर बदलना यहाँ आम बात है पर मेरे लिए बहुत बड़ी चुनौती थी, वॉशिंगटन विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने की नौकरी छोड़नी पड़ी थी। नया शहर, नया माहौल, बेटा छोटा था।

सेंट लुईस में घर बनवाया था, उसे बेच कर कैरी में घर लेना फिर उसे स्थापित करना श्रम साध्य काम थे।

हालाँकि एन सी स्टेट यूनिवर्सिटी में मेरे आने से पहले ही वॉशिंगटन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष ने यहाँ के हिन्दी विभाग को मेरे बारे में बता दिया था और यहाँ के विश्वविद्यालय में पढ़ाना भी शुरू कर देती। पर मन नहीं माना। तय नहीं था, नए शहर में घर बनवाना पड़ेगा या बना बनाया मिलेगा। बेटे के लिए स्कूल भी ढूँढ़ना था। ओम जी के पद की चुनौतियाँ और प्रतिबद्धताएँ मैं समझ गई थी। उनके पास समय की कमी होने से वे मेरा किसी काम में हाथ बटा नहीं सकते थे।

यह वह समय था जब अमेरिका में कोई घरेलू या बाहरी हेल्प नहीं थी । सब काम हमें स्वयं ही करने पड़ते थे। मानसिक उहापोह और भीतरी द्वंद्व से एक बार फिर उलझी हुई थी। पहले सेंट लुईस आकर इसी तरह के दौर से गुज़री थी। तब देश नया था। अब शहर नया था। उसी समय भारत से दु:खद समाचार आया। मेरे मम्मी की हार्ट अटैक से मृत्यु हो गई थी। उन दिनों सासु माँ मेरे साथ थीं। उनके पास बेटे को छोड़कर मैं जालन्धर माँ के अन्तिम दर्शनों के लिए चली गई। लेकिन निराशा हाथ लगी। उन दिनों पंजाब आंतकवाद की आग में जल रहा था। दिसम्बर का महीना था, यहाँ से जहाज़ मौसम की ख़राबी की वजह से लेट उड़ा था और फिर दिल्ली से जालन्धर की गाड़ी जो चार घंटे में पहुँचनी थी, वह आठ घंटे में पहुँची। गाड़ियों में यात्री गोलियों से भूने जा रहे थे। हमारे बाद की गाड़ी में पचास यात्री आतंकवाद का शिकार हुए थे। मेरे अमेरिका पहुँचने तक देश और विदेश में परिवार चिंतित रहे।

घोर उदासी में मैं लौटी थी। माँ की अंतिम बिदाई में शामिल नहीं हो पाई थी। मेरी माँ डॉ. शशि बाला शर्मा मेरी अच्छी दोस्त थीं। उनके जाने का मुझे सदमा लगा था। मैं बेहद निराश थी। लोगों में मिलना-जुलना बंद कर दिया था। शहर भी नया था और मैं ज़्यादा लोगों को जानती भी नहीं थी।

1992 की बात है। भारतीय समुदाय इतना फैला हुआ नहीं था; जितना अब है। नए पुराने

मित्रों की सब बातें सबको पता होती थीं। मेरी मनोदशा से परिचित एक मित्र के आग्रह पर मैं और ओम जी उनके यहाँ पार्टी में गए। वे चाहते थे कि मैं घर से बाहर निकलना शुरू करूँ। विदेशों में मित्र सप्ताह के अंत में ही पार्टियों में मिल पाते हैं। पार्टी हम प्रवासियों के लिए मेल-जोल का एक साधन मात्र होती है। वहाँ सभी मेरी मन:स्थिति से वाकिफ़ थे। अचानक एक छोटे कद की अत्यंत खूबसूरत महिला, जिनके माथे पर बड़ी सी लाल बिन्दी लगी थी, मेरे पास आईं और मेरे सिर पर हाथ रख कर कहने लगीं 'उदास मत हो, मैं भी तुम्हारी माँ हूँ।' उनके माथे की बिन्दी से कितनी ममता टपकी, मैं उसे शब्दों से बयाँ ही नहीं कर सकती। जो अहसास हुआ उसे सिर्फ़ रूह से महसूस किया जा सकता है।

उनका नाम मालती सत्संगी था। शहर में आते ही कल्पना नाथ, एक सरल, सौम्य व्यक्तित्व से मेरी पहचान हुई थी, उनकी वे माँ थीं। उस दिन से वे मेरी माँ बन गईं और मैं उनकी दूसरी बेटी। उनकी अपनी बेटी कल्पना तथा बेटे आमोद, अजय और संजय के परिवार मेरे परिवार हो गए। वे सब यहीं रहते हैं।

यह सब इसलिए लिखा है ताकि आप समझ सकें कि मेरी और मालती मम्मी का परिचय किन परिस्थितियों में हुआ था। कुछेक मुलाकातों के बाद पता चला मालती मम्मी को पढ़ने का शौक है, जुनून की हद तक। साहित्य मेरा भी जुनून है। बस दो साहित्य प्रेमी आपस में मिल गए थे। हम बहुत अच्छी दोस्त भी बन गई थीं। उन्होंने प्रेमचंद से लेकर अब तक तकरीबन हर साहित्यकार को पढ़ा हुआ था। मुझे अपने यहाँ की लाइब्रेरी पर गर्व है। आधुनिक लेखक से लेकर पुराने से पुराने लेखक की अनमोल कृतियाँ मेरे पास सुरक्षित हैं। मम्मी ने उस लाइब्रेरी की सभी पुस्तकें पढ़ीं। वे सरिता और कादम्बरी की भारत से पाठिका थीं और यहाँ मेरे पास आने वाली हर पत्रिका की भी पाठिका बनीं।

बेहद सौम्य व्यक्तित्व, मृदु स्वभाव की स्वामिनी, नज़ाकत और नफ़ासत से साड़ी पहने, साड़ी से मैच करती चूड़ियाँ, मैच करती बिंदी लगा कर, साड़ी के रंग का पर्स पकड़े जब वे पार्टी या किसी महफ़िल में प्रवेश करतीं तो सभी की आँखें उनकी गरिमा को निहारने के लिए ज़रूर उठ जातीं। पूरा परिवार उनके साथ होता, ऐसा लगता जैसे राजस्थान की कोई रानी आ रही है। मम्मी जयपुर से थीं और दयालबाग़ के सत्संग की भक्त थीं। कर्मठ इतनी थीं कि बच्चों के स्कूल जाने के बाद वे स्वयं कॉलेज जाने लगीं थीं और बीए फर्स्ट ईयर किया।

मिश्री की तरह घुली आवाज़ में वे किसी किताब को पढ़ने के बाद मेरे साथ डिस्कस करतीं और उपन्यास या कहानी पर अपनी पसंद नापसन्द को दृढ़ता से कहने के लिए जब वे दूसरे लेखकों की रचनाओं से उदाहरण लेकर अपने तर्क प्रस्तुत करतीं; ऐसा लगता कोई मंझा हुआ आलोचक या समीक्षक बोल रहा है। पाठक कितना बड़ा आलोचक या समीक्षक हो सकता है, उनसे बात करके पाया। विभोम-स्वर से पहले मैं हिन्दी चेतना की संपादक थी। मम्मी ने उसमें कई कॉलम लिखे। विषय सभी अलग-अलग थे। विभोम-स्वर शुरू ही हुई थी, जब उनकी तबियत ख़राब रहने लगी, पर उसके पहले अंक का शगुन और आशीर्वाद ज़रूर भेजा था उन्होंने।

शगुन से मुझे याद आया, मुझे हर सम्मान से पहले उनसे शगुन और उपहार मिलता था। राष्ट्रपति द्वारा दिए जाने वाले सम्मान की जब घोषणा हुई, और उन्हें जब बताया गया तो उनका चेहरा उसी तरह चमक उठा था जैसे एक माँ अपनी बेटी पर गर्व महसूस करती है। मेरे बेटे की शादी से पहले वे जयपुर गईं और वे सब खरीद कर लाईं जो माँ ऐसे समय में बेटी को देती है।

ढींगरा फ़ाउन्डेशन के साहित्यिक सम्मानों की शुरूआत एक तरह से मम्मी जी ने करवाई।

एक दिन एक उपन्यास (नाम नहीं दे रही) पढ़ने के बाद उन्होंने पूछा-

'क्या इस उपन्यास को कोई सम्मान मिला है?'

मैंने कहा 'नहीं।'

'क्यों?'

'शायद, किसी का ध्यान नहीं गया और लेखक भी नया है।'

''इतने बढ़िया उपन्यास की तरफ कैसे किसी का ध्यान नहीं गया?' तभी उन्होंने एकदम से कहा-'ढींगरा फ़ाउण्डेशन इतना कुछ कर रहा है, साहित्यिक सम्मान क्यों नहीं शुरू करता।'

'मम्मी शुरू तो करने हैं, ढींगरा फ़ाउण्डेशन के प्रोजेक्ट्स में भी है।'

'जब भी शुरू करना एक बात का ध्यान रखना, अच्छी पुस्तक को देना, बेशक लेखक नया हो।'

ढींगरा फ़ाउण्डेशन के सम्मान 2014 में आरम्भ हो गए और भारत तथा यहाँ की ढींगरा फ़ाउण्डेशन के निर्णायकों की टीम द्वारा चयनित अंतिम पाँच पुस्तकें वे ज़रूर पढ़तीं और अपना निर्णय देतीं; जो निष्पक्ष होता। वे स्पष्ट बात कहतीं थीं।

12 जनवरी 2017 को मैं फिर माँ विहीन हो गई। वे हमें छोड़ कर अनन्त सुख लेने चलीं गईं, बह्म सत्ता में विलीन हो गईं। ढींगरा फ़ाउण्डेशन अपने एक निष्पक्ष निर्णायक से वंचित हो गया।

दुनिया से जाने वाले, जाने चले जाते हैं कहाँ,

कैसे ढूँढ़े कोई उनको, नहीं क़दमों के भी निशाँ

पर वे हमारे दिलों में हमेशा ज़िंदा रहेंगी। ढींगरा फ़ाउण्डेशन के सम्मानों का निर्णय लेते समय उनकी सोच हमेशा हमारे साथ रहेगी।

मेरे दिल में तो दो माएँ रहती हैं। उनका आशीर्वाद हर पल मिलता रहेगा.....

मेरी लाइब्रेरी की पुस्तकें याद करेंगी उनको... हर माह आने वालीं पत्रिकाएँ उनकी छुअन से सूनी रहेंगी...

मैंने पुस्तकों और पत्रिकाओं की ऐसी क़द्रदान कभी नहीं देखी, जो पुस्तक और पत्रिका का एक पृष्ठ तक मुड़ने न दें और पढ़ने के बाद पुस्तक जब लौटाती थीं तो ऐसा लगता था कि पुस्तक को किसी ने छुआ तक नहीं है। नई नकोरी पुस्तक वापिस मिलती थी।

उनकी यादें भी अनछुई, नई नकोरी मेरे साथ रहेंगी.....

***

कविताएँ

शहंशाह आलम की कविताएँ

संपर्क: हुसैन कॉलोनी, नोहसा बाग़ीचा,
नोहसा रोड, पेट्रोल पाइप लेन के नज़दीक,
फुलवारीशरीफ़, पटना-801505, बिहार।
ईमेल:
shahanshahalam01@gmail.com
मोबाइल: 09835417537

तुम्हारे नाम लिखता हूँ

तुम्हारे नाम
लिखता हूँ आकाश
जो मेरा ठिकाना है
सदियों से
जीवन से
फ़सल से
पानी से भरा
लेकिन तुम हो
कि अपना तलघर
छोड़ना नहीं चाहते
जो है
आदमियों की
उदासी से
आदमियों के
झूठ से डरा।
***

गान

जो गाया जा रहा है
बिना लय
बिना ताल के
वह आपके समय का नहीं
मेरे समय का गान है
आपके समय का गान
भरा है
चकाचौंध से
सुस्वादु वनस्पतियों से
अमृतमय औषधियों से
अप्सराओं के नृत्य से
मृत्यु के पराजय से
मेरे गान में मेरे चेहरे का
बस रुदन है
अनंत तक फैल रहा
अनंत-अनंत बार
आपका मुँह चिढ़ाता
आपके गान का
वाक्य-विन्यास बिगाड़ता
जबकि आप मेरे साथ
जो कुछ करते हैं
पूरे अधिकार से करते हैं
सर्वसम्मत
धर्मसम्मत
विधिसम्मत करते हैं
मेरा बलात्कार
मेरी हत्या भी।
***

खोलना

खोलने की जहाँ तक बात है
लगता है रहस्य का रहस्य
आश्चर्य का आश्चर्य तक
खोल डाला है
किसी परिचित जैसा
लेकिन मेरे जैसे झूठे ने
उस घर का द्वार खोला
तो लगा कितना कुछ खोलना
बाक़ी रह गया है अभी भी
अपने समय के बारे में मुझे लगता रहा है
कि मैंने जान लिया है उसे पूरी तरह
पर क्या अपने समय को जानना-समझना
इतना आसान हुआ है कभी भी
या फिर ऋतुक्रम के रहस्य को लीजिए
हम कितना कुछ भुला बैठते हैं जीवन में
ऋतु है कि आती-जाती रहती है
अपने वक़्त पर
इस खुले पथ पर चलते हुए
हम कितनी-कितनी दूर चले जाते हैं
इस उम्मीद में कि इसे तो
हमीं बनाते रहे हैं
बिगाड़ते भी रहे हैं
सो इस खुले पथ का
कुछ भी खोलने जैसा
क्या बचा रह जाता है
किसी भी क्षण
मेरे लिए इन पथों का अंत न होना
अबूझ रहस्य-सा रहा है तब भी
इस आकाश के आकाश का
क्या-क्या खोलना रह गया है
जैसे मेरे दु:ख का आत्मीय रहस्य
सदियों से नहीं खोल पाया है कोई
बहुत सारी चीज़ों का रहस्य
खोलने को लेकर
बहुत सारे रहस्य रहा किए हैं
हमारे जीवन में
जैसे मैंने उसकी उत्सुक देह को
अपनी देह की प्रार्थना बनाते हुए
किसी आश्चर्य के खुलने-खोलने
जैसा ही तो गढ़ा है
हर बार
उसे बिना कुछ बताते हुए।
***

कविताएँ

आरती तिवारी
संपर्क:
ईमेल: atti.twr@gmail.com
मोबाइल : 09407451563

जिजीविषा

संजो लो अपने भीतर
मुझे बाहर लाने का साहस
बाद में,
मैं खुद लड़ लूँगी
अपने अस्तित्व की लड़ाई।

तुम्हें बचाना है, मेरा आज
बिना इस भय के
क्या होगा मेरा कल?
मुझे चाहिए थोड़ी सी जगह
तुम्हारी कोंख में
अंकुर बन फूटने को।

बाद में,
अपने विस्तार और विकास के रास्ते
मैं खुद तलाश लूँगी
अपनी पूरी ताक़त लगाकर
मैं उछलूँगी, क्रीड़ाएँ करूँगी
और तुम्हें दिलाती रहूँगी
अपने वज़ूद का एहसास।

कली और खुशबू बनकर मुस्कुराऊँगी
तुम्हारे सपनों में
मेरे सौंदर्य और कौमार्य के
कुचले जाने का डर बता

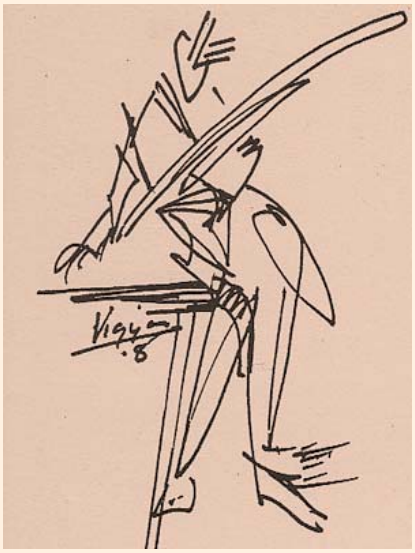

तुम्हें भरमाया जाएगा
पर तुम मत हारना हिम्मत
मुझे पनपने देना, और जीना
मेरे पनपने के एहसास को।

बाद में,
मुझे अपने हिस्से की
ज़मीन-आसमान पाने से
कहाँ कोई रोक सकता है,
नदी खुद बनाती है अपना रास्ता
मैं मौसम में उतरूँगी, तैरूँगी, फुदकुँगी
कलियों के शोख रंगों में चटकूँगी
जीऊँगी मैं
अपने स्त्रीत्व की सम्पूर्णता को।

देखो तो
पत्थर की शिला में भी
फूटे हैं तृणाकुर
ढेर सारी, नई-नई कोंपलें
वे तो नहीं हैं, उसका हिस्सा
फिर भी
वो समेटे है उन्हें आश्रयदाता बनकर
बिना डरे अभयदान देकर....
और मैं
मैं तो तुम्हारे वज़ूद का हिस्सा हूँ माँ
सृष्टि का अनुपम उपहार हूँ
आने दो मुझे अपने अंक में
अपनी दुनिया में
और जियो
इस गर्वीले क्षण को
एक विजेता की तरह॥
***

गीत

अमित कुमार झा

नदी गाँव की

सूख गई जब नदी गाँव की।

डूबी जनता सूखे नद में।
भूख पुन: आई है मद में॥
डूबी फसल खेत के मेड़।
देखो डूबे लंबेपेड़॥

सुंदरता देखो पड़ाव की।
सूख गई अब नदी गाँव की॥

लोग गए हैं शहर की ओर।
बेच दिया जीवन का शोर॥
छोड़ समुन्नत माँ धरती को।
चले गए बालू-परती को॥

याद आई है वृक्ष-छाँव की।
सूख गई अब नदी गाँव की॥

मरे सरीसृप, शोक हुआ जब।
भाँठि-चिरचिरी मरे सूख तब॥
कैसा करम विधाता ग्रामी।
मरे लोग वे नामि-गिरामी॥

छलछल हैं अब पाँव, गाँव की।
सूख गई अब नदी गाँव की॥
***

संपर्क: फूलबाड़ी, अररिया, बिहार, पिन-854331
फोन: 9572927837

कविताएँ

स्वरांगी साने की कविताएँ
संपर्क: ए-2/504, अटरिया होम्स, आर. के. पुरम् के निकट, रोड नं. 13, टिंगरे नगर, मुंजबा वस्ती के पास, धानोरी, पुणे-411015
ईमेल :
swaraangisane@gmail.com
मोबाइल: +91 9850804068

तुम्हारी रोशनी की तरह

एक स्वप्न की तरह
उन थोड़े दिनों
जब मैं जी रही थी तुम्हें
कितनी ख़ुश थी !

अपने सारे दु:खों को ताक पर रख
जीवन सुंदर हो गया था
जैसे तितली,
जैसे मोर,
जैसे मैं,
जैसे तुम।

पर आज
चमगादड़ के वीराने हैं।

स्वप्न से सुंदर
तुम फिर आ जाते
तो कितना अच्छा होता।

तुम मुझे बैठाते वहाँ

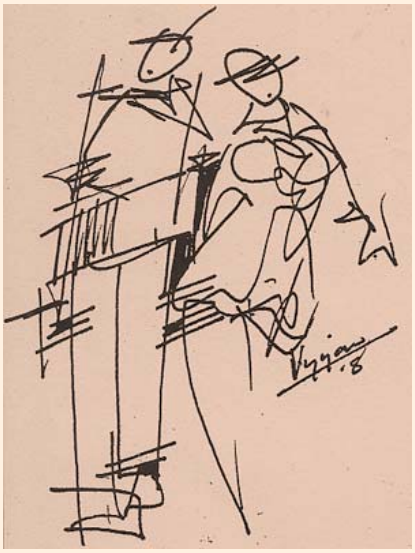

जहाँ से सारे पहाड़ छोटे दिखते
मैं एक चिड़िया
पूरे आकाश में उड़ान भरती
तुम्हें भेदती
और निकलती तुम्हीं में से
तुम्हारी रोशनी की तरह।

तुम किसी सुबह का
पहर बन जाते
मैं चहचहा उठती
तुम बरसते
मैं थिरक उठती
सोचते तुम यूँ उल्टा
मैं नाचती मोरनी बनकर
तुम हो जाते मोर।

मेरे पास है ताल
तुम देते सुर
हम बनाते संगीत
कहीं से फूट पड़ती कोई रागिनी
हम दोनों भीग जाते
तय करते एक सफर
षड्ज से निषाद तक
और धानिं से धा तक।

यात्रा कितनी लंबी
तुम पहाड़
मैं पगडंडी
तुमसे गुज़रती
यहीं से निकलता कोई कवि
देता कविता
या बना देता कोई मोनालिसा
जिसकी मुस्कान रहस्य है
तुम्हारी मुस्कान की तरह।

क्या तुमने सोचा है
शमशेर की तरह
कि जब करोगे प्रेम
पिघल उठेंगे युगों के भूधर।

कहो न
क्या तुमने किया है प्रेम
जैसे मैं करती हूँ।
***

छाया का खेल

उन्होंने हाथों से बनाकर दिखाई मुझे
छोटी-छोटी परछाइयाँ
ये हिरन
कुत्ता, साँप, बिल्ली, मोर
मैं खो गई छाया के खेल में।

फिर उन्होंने बताई मुझे
कैंडल लाइट डिनर की बात
और दिखाया
रात का टिमटिमाता संसार
मैं खोती चली गई उन सब में
उन्होंने कभी नहीं बताई मुझे
उजाले की कहानी
मुझे पता ही नहीं चली
रोशनी की राह।
***

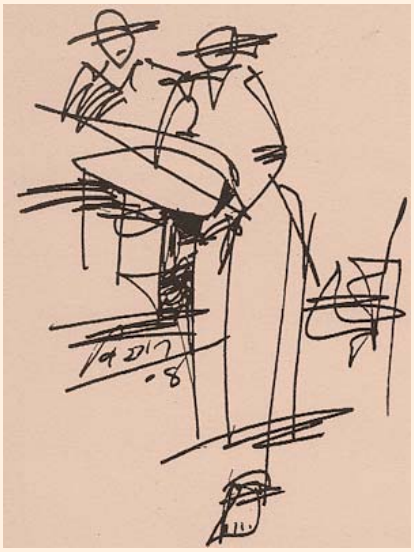

कविताएँ

प्रतिभा सक्सेना की कविताएँ

संपर्क: 1341, पारसंस कोर्ट, फॉल्सम,
कैलिफोर्निया-95630, यूएसए
ईमेल:pratibha_saksena@yahoo.com

धवलिमा

भाल पर चंदन टिकुलिया सा चँदरमा,
टाँक कर बैठी शरद की यह धवलिमा.
साँझ भी उजला गई अब तो !

स्वच्छ दर्पण सा किया बरसात ने धो, दिन
उपरना धूप का काँधे सजाए
गुलमोहर का तिलक माथे , झर पड़े
अक्षत,जुही ने पाँखुरी दे जो लगाए,
अमलतासों ने सुनहरे छमक-छल्लेदार झूमर
डाल-डाल सजा लिए अब तो !

गगरियाँ ले बदलियाँ वापस हुईं,
निश्चिंत पच्छिम की हवाएँ,
पोंछ झरते बूँद जल के,
पहन उजले वस्त्र बैठी हैं दिशाएँ
गगन के पट में बँधे बादल धुएँ से उड़ गए,
रुपहली मुस्कान ऋतु की छा गई अब तो

खुल गए सब रास्ते,
परदेस में भटकी पिया की याद आए
उड़ रहे, हिम-श्वेत बादल हंस जैसे
चोंच में पाती दबाए
नई सी बातास, नव आकाश के रँग,
आस के वर्षा-वनों में
नव बहारें आ गईं अब तो

दहकते हैं फूल-फूल पलाश,
तिन पतिया डँगालें खाखरे की,
लहरती है कोर मेंहदी रचे पग पर
वन-विहारिन नव-वधू के घाघरे की,
रजत- घुँघरू खनकते रह-रह,
कि बिछुए बोल-बतलाते हृदय का राग,
उठते ही नज़र शरमा गई अब तो !

क्षितिज पर रंगीन वस्त्र अबाध,
फूले काँस अब ध्वज सा फहरते,
नाचती है बाजरे की कलगियाँ,
लो खुले जाते सब्ज़ चुन्नी के लपेटे,
निशि दमकता मुँह उघाड़े, केश ढीले
तारकों से जड़ा नीलांबर
झमकती आ गई अब तो !
***

वाह रे, चाँद !

वाह रे,चाँद !
तुम्हें भी चैन नहीं पड़ता !
इतना पानी बरसा
आसमान तो क्या साफ़ होता
सारे में किच-किच और हो गई,
काले-काले दल-दल बादल जहाँ-तहाँ।

तुम भी चाँद, बाज़ नहीं आते
खेल रहे दौड़-दौड़ छिपा-छिपी!
बात, सुनते ही नहीं
फिसल रहे बार-बार,
उफ़, वहीं लोट गए,
दल-दल -बादल में डूबी -सी देह।

चलो उठो, उठो,
साबुन लगा कर नहला दूँ।
चलो साथ,
धुले पुछे, फिर से चमक जाओगे !

कोई मत आना,
सारे कपड़े उतार नहा रहा है मेरा चंदा।
हँसते फेन-बुलबुलों वाली हर-हर गंगा !

आसमान में बादल दल-दल,
धुला-पुँछा चंदा चमक गया रे !
कोई नज़र न लगा दे
ये लो, काजल का टीका .
वाह, है कोई मेरे चंदा सरीखा !
***

गीत

शकुन्तला बहादुर

आज का बचपन

लौट आए फिर से वो बचपन।
कहाँ गया वो भोला बचपन ?
कहाँ गया मस्ती का जीवन ?
कहाँ गया प्यारा सा बचपन ?
खेलकूद कर हँसते थे जब,
मनमौजी से जीते थे जब।
अब तो भारी बस्ते लेकर,
चिन्तित से चेहरों को लेकर,
दौड़-भाग में ये रहते हैं,
विविध कोर्स करते रहते हैं।
टी.वी.,आई पैड,फ़ोन हैं साथी,
किसी की बात उन्हें न भाती।
खाने का भी समय न पाएँ,
घर आकर फिर से जुट जाएँ।
भावी जीवन से डरते हैं,
व्यस्त बुज़ुर्गों से लगते हैं।
दायित्व नहीं गृहस्थी का है,
फिर इनको कैसी चिन्ता है ?
क्यों ऐसे हैं दिन बचपन के ?
लगते जैसे हों पचपन के।
भगवन् ! इनको दो संरक्षण।
सुखमय हो इनका ये बचपन ॥
***

संपर्क: 11559, रेन ट्री स्प्रिंग कोर्ट,
क्यूपर्टिनो, कैलिफोर्निया-95014
ईमेल: shakunbahadur@yahoo.com

कविताएँ

असंगघोष की कविताएँ

संपर्क: D-1, लक्ष्मी परिसर, निकट हवा बाग महिला महाविद्यालय, कटंगा, जबलपुर (म.प्र.)
पिनकोड 482 001
ईमेल : asangghosh@gmail.com
फोन : 082240 82240

मुझे धूप का इंतजार है

दीवालों पर चढ़ी
धूप!
आ नीचे उतर
आ मेरे घर-आँगन में
खिड़कियों से
भीतर तक चली आ
कोई अनाम आकृति बना।

दरवाज़े के रास्ते आ
मन पड़े, तो
टूटे हुए खपरों की
झिर्रियों में से घुस
अलगनी पर लटकते हुए
गोदड़ी-खतल्या1 को छूकर
ज़मीन पर आ
मुझे तेरा ही इंतज़ार है री
घूप!
तेरे स्वागत के लिए मैंने
अपने हाथों खोदी माटी से
सारा घर लीप रखा है।

1. गोदड़ी-खतल्या - हमारे क्षेत्र में पुराने कपड़ों से बनी औढ़ने की गुदड़ी एवं बिछाने के काम आने वाली छोटी गुदड़ी, खतल्या कही जाती है।

***

मंज़िल पा ही लूँगा

हमारे दिनों पर
छाया हुआ है
विपत्ति के बादलों का
घना अँधेरा,
भोर की लालिमा के सामने
यह अँधेरा
वजूद खोता हुआ
धीरे-धीरे
दूर हो रहा है।

दूर पूरब के नीले क्षितिज में
चमकता हुआ
एक क्रांतिसूर्य निकलने वाला है
मेरी खुली आँखें
एक छोटे से बिन्दु से
प्रकाशित होते रास्ते को देख रही हैं,
अपना रास्ता खुद चुनने का
नीर-क्षीर विवेक
मैं पा चुका हूँ
इस पर चलते हुए
सारे अवरोधों को
पार करता हुआ
आ रहा हूँ
कोई भी दूरी मेरे कदमों को
दरकिनार कैसे करेगी
इस भौर में अँधेरा
कहाँ तक भरेगी!
मै आगे बढ़ गया हूँ।

***

नया सवेरा

हमारे ईर्द-गिर्द सदियों से
प्रतिबंधों की ऊँची-ऊँची
दीवारें खड़ी की गईं,
अपनी जिज्ञासाओं को
कुरेदते हुए
लगातार पैनी निगाहों से खोजते,
अपनी नज़रों से सीखते
इन दीवारों को तोड़ने की कला
हम जान चुके हैं,
हमीं तोड़ेंगे इन्हें
एक दिन
वह दिन
आज ही मुकर्रर है
अभी से प्रारंभ,

जागो!
जल्दी उठो
देखो तो साथियो
नीले क्षितीज पर फैले
इस विशाल सवेरे को
जो कह रहा है
कि पूरा दिन तुम्हारा है
बस एक कोशिश तो करो
फेंको ज़ोर से एक पत्थर
इस दीवार पर
ढहाओ दीवार, बढ़ो
दीवार के पार
इसे धराशायी कर
रास्ता खुला हुआ है आगे।

***

कविताएँ

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कविताएँ

संपर्क: 246, स्टॉर्टफोर्ट ड्राइव, ब्रॉड व्यू हिट्स, ओहायो-44147

पुनरावृत्ति

कितनी झूठी
कहानियों
में हम जिये -
कितने छल
हम ने सहे
कितने
अलगाव
हमें छुए
उसी तरह
इसी तरह
किसी तरह
चलता रहा समय। ....

फिर भी
हम रेंगें नहीं
फिर भी
हम रुके नहीं
फिर भी
हम सीखे नहीं
कुछ भी
ज़िंदगी की
झूठी कहानियों से। ....

श्रद्धा वैसी
ही रही -
झूठे फरेबों में
वैसी ही बिनती
रही - ज़िंदगी
अपने अष्टांग!
***

शतरंज

उम्र भर
अलग- अलग
मोहरों की
तरह
हमें खेला
जाता है
इधर से उधर
उधर से इधर
ऊपर से नीचे
नीचे से ऊपर
उछाला
जाता है
क्यों की हमारे
ऊपर - नीचे के
इस मुस्तैद खेल में
कहीं किसी की
जीत का जशन
मन रहा
होता है -
जिसे हम नहीं जानते !
***

कटोरा

तुम्हारी
रसवंती
भाव - भीनी
मृदु - मनोहर
सतरंगी
मधुमास
सी -छवि
छल गई
एक दिन
मेरा - सारा स्वत्त्व
मेरा देह शास्त्र
मूर्छित कर गई
समवेत
वाचा - कर्मणा
लील गई
मेरा अस्तित्व
लूट पीट कर
तुम ने - खाली
ठनके कटोरे सा
सड़क पर -
उड़ेल दिया

आज मैं
एक लुटा - पिटा
खाली कटोरा हूँ .. .
***

तृष्णा

इच्छा के बीज -
पनप कर
बोहड़ हो जाते हैं -
फिर
उस के इर्द- गिर्द
नाचती हैं
सर्पनियाँ
सर्पों को -
निगलने वाले
नेवले -
फिर छाँव भी
उस की
विषैली
हो जाती है।
***

लाक्षाग्रह

क्यों न सिखाया गया -हमें
शतरंज खेलना -

क्यों सीखी हम ने केवल
युधिष्ठर की सादगी
और धर्म-अधर्म की
कट्टरता -
और भटका किए
उम्र- भर
जंगल - जंगल

लाक्षाग्रह की आग
उम्र भर लिपटती रही
हमारे इर्द - गिर्द
और झुलसाती रही
हमारा वजूद .... !
***

कविताएँ

चित्रा देसाई की कविताएँ

संपर्क: 3 ए-302, ऑकलैंड पार्क,
लोखंडवाला कॉम्प्लैक्स, अंधेरी वेस्ट,
मुम्बई 400053
मोबाइल 9820059147

आकाश अकेला

आकाश के परिंदों को
छाँव नही मिलती।
ऊँची उड़ान भरते हैं
धूप में पंख सिहरते हैं
सूखते हैं गले
न अन्न न पानी
सिर्फ उड़ने की चाह में
सारी धरती छोड़ देते हैं
पर- आकाश के परिंदो को
छाँव नहीं मिलती!
***

हिचकते हैं ....

हिचकते हैं
झिझकते हैं
रोक लेते हैं कितनी बार-
खुलते दरवाज़ों को,
खिड़की और रोशनदानों को।
हवा को
धूप को
रोशनी को
रोक लेते हैं हर बार।
पर आज हमने कुछ अजीब कर दिया-
किवाड़ खोल
नमी को निचोड़
धूप में सेक लिया।
भीड़ को पीछे धकेल-
खुद को आगे कर लिया।
हिचकते हैं .....
***

असमंजस

कभी लगता है-
सब छूट गया
कभी लगता है-
सब मिल गया!
घर की देहरी से
खेत की पगडंडी लाँघ
नहर पार कर
पहुँच गई अलग ज़मीन पर।
फिर मिट्टी को पलटा
भिगोया
बोया
सींचा
सेका।
धरती बंधती है सबसे
पाताल के पानी से
टहनियों की जड़ से।
इस के भीतर से उगता है पेड़
ऊँचा उठ
लहराता है
इतराता है
आसमान से बतियाता है।
उसके पाँव के नीचे दबी धरती
आहत् है।
जड़े चीरती हैं उसकी मिट्टी
पर आश्वस्त भी है-
उसकी छाँव का टुकड़ा
उसे सहेजता भी है।
इसीलिए-
कभी लगता है-
सब छूट गया
कभी लगता है -
सब मिल गया।
***

कचहरी- 1

रिश्ते-
जब चटकते हैं
तो फाइलों में मुँह छिपा
अदालत की दिवार थामे
सालों साल सिसकते हैं।
कटघरे में-
खड़े होकर चीखते हैं
उँगलियों से नश्तर चुभोते हैं।
सदियों बाद-
जज की कलम से
फैसलों में रिसते हैं।
कुछ रिश्ते-
सचमुच बड़े बदनसीब होते हैं!
***

कचहरी- 2

जब थक जाते हैं रिश्ते -
दर्द तो होता है।
संवेदना मुक्ति चाहे
आँखें कोरी हो जाए
हाथों में शून्यता उतर आए
माथे पर शिकन
हथेली पर खुरदनापन
पाँव ज़मीन से चिपक जाएँ
साथ चलने पर विराम लगे
तब दर्द तो होता है!
***

साँझी

तालाब में तैराते थे माट
रेत भर कर
छेदते थे जिन्हें।
उसके भीतर-
साँझी का चेहरा
और दिया रख
पानी में बहा देते थे।
पूरी देह खंडित
सिर्फ चेहरा सुरक्षित रखते थे!
कैसा सच सिखाते थे हम-
शरीर गल जाए
चोट से आहत् हो
पर चेहरा सदा-
प्रकाश में प्रज्वलित रहे।
कैसा सच सिखाते थे हम
जब तालाब में तैराते थे माट!
***

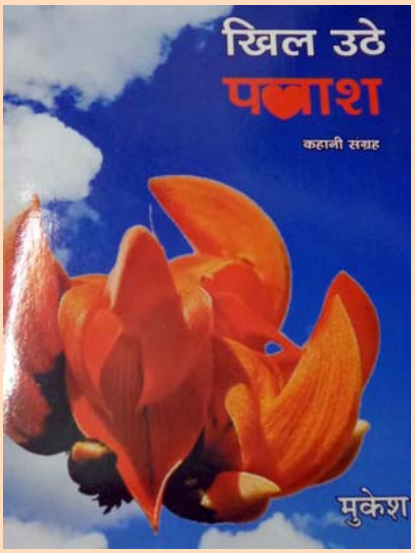

खिल उठे पलाश
कहानी संग्रह : मुकेश दुबे
वनिका प्रकाशन, एन ए 168, गली नं 6,
विष्णु गार्डन, नई दिल्ली 110018
दूरभाष 9412713640
मूल्य: 200 रुपये

खिल उठे पलाश
पठनीयता पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है

समीक्षक : वंदना गुप्ता

वनिका पब्लिकेशन से प्रकाशित मुकेश दूबे जी द्वारा लिखित ''खिल उठे पलाश'' उनका दूसरा कहानी संग्रह है। मुकेश जी किसी परिचय के मोहताज नहीं। उनका लेखन आम पाठक के लिए है और आम चरित्र ही उसमे आकार लेते हैं। यही उनके लेखन की विशेषता है। कोई भी छोटी सी घटना कैसे कहानी का रूप लेती है ये उन्हें पढ़कर समझा जा सकता है। सहजता और प्रवाहमयता ही उनके लेखन का आभूषण है। जहाँ पाठक उस प्रवाह में बहता चला जाता है। ऊब का कोई स्थान नहीं। सिर्फ उत्सुकता और पठनीयता पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है।

पहली कहानी 'फासले' ज़िन्दगी का आम फलसफा है लेकिन उसमे चमत्कार पैदा करना लेखक का कौशल है। जाने कितनी ही कहानियाँ एक जैसी शक्लों पर लिखी गई हैं। जिस वजह से आकर्षण होना स्वाभाविक है लेकिन उसे खूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना कोई लेखक से सीखे जहाँ वो कहते हैं - चाँद से फासला ही बेहतर है - क्योंकि कब कोई चाँद को छू पाया है और उसे पाने की चाह तो एक स्वप्न ही है। बस यही तो फलसफा है इस कहानी का। जहाँ शर्मिष्ठा की शक्ल का अंशुल की पत्नी से मिलना एक संयोग ही है मगर अंशुल अपनी पत्नी की यादों से बाहर नहीं आ पाया तभी उसकी तरफ खिंचता है लेकिन सिर्फ शर्मिष्ठा के एक ही वाक्य से हकीकत का धरातल अंशुल के आगे नुमाया हो जाता है और वो स्वीकारता है हकीकत। क्योंकि संभव ही नहीं वो अपनी पत्नी को भूल सके उस चेहरे के सामने रहते ऐसे में कैसे संभव है उनके सम्बन्ध का आगे बढ़ना .....उसका चेहरा ही एक दखल बन उनके सम्बन्ध पर हावी रहता जो हमेशा एक कचोट बन अखरता इसलिए लेखक ने उसे एक खूबसूरत मोड़ पर छोड़ कहानी को नया आयाम दिया।

''जुगलबंदी'' गुरु शिष्य के सम्बन्ध के साथ प्रेम की उच्चता को प्रमाणित करती एक खूबसूरत कहानी है जहाँ त्याग है, समर्पण है, विरह है, वेदना है यानि एक दिव्यता को भासित करती कहानी जो एक उपन्यास का गुर अपने अन्दर रखती है। सिद्धार्थ और आरोही का गुरु शिष्य का सम्बन्ध प्रेम सम्बन्ध पर भी भारी रहा मानो लेखक कहना चाहता है यदि ऐसे सम्बन्ध हों तो कैसे नहीं शिष्य को उसका आकाश मिले और गुरु को मान हो। वहीं दोनों का विरह के क्षणों में भी कभी अलगाव हुआ ही नहीं। दोनों एक दूजे की इच्छा के लिए जीते रहे बिना जाने कि सिद्धार्थ जिंदा है भी या नहीं, आरोही उसके स्वप्न को साकार करने की कोशिश करती रही .....यही है साधना, आराधना तो कैसे न प्राप्य हो जो

संपर्क : वंदना गुप्ता
डी - 19 राणा प्रताप रोड
आदर्श नगर
दिल्ली - 110033
मोबाइल : 9868077896

उन्होंने चाहा हो। एक ऐसी कहानी जो पाठक को ऐसा आनंदित करती है मानों गुलशन नंदा या रानू का लिखा कोई उपन्यास आप पढ़ रहे हों और यही इस कहानी की सफलता है।

''हकीकत'' मानों कहानी नहीं हकीकत ही बयाँ कर रही हो। मानों साहित्य संसार का कच्चा चिटठा ही खोल रही हो। वैदिक जैसा करैक्टर कोई नया नहीं क्योंकि यहाँ बिखरे पड़े हैं ऐसे लोग जो शोषण के लिए विख्यात हैं वहीं आशिमा जैसी लड़की जो अति उत्साह का शिकार हो जाती है और साथ ही विश्वासघात का भी। लेखक कहानी को कैसे भी कहे फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है इस बात से कि साहित्य के संसार में कैसे, कौन और कब शोषित होता है। कैसी कोई किसी का भरोसा तोड़ देता है। वैदिक आशिमा की पाण्डुलिपि में बदलाव कर अपने नाम से छपवा देता है और करोड़ों में खेलता है क्योंकि वो एक बड़ा नाम है तो उसके खिलाफ यदि छोटा लेखक शिकायत भी करे तो उसकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ ही कहलाएगी और आज यही तो हो रहा है। कोई किसी के भी विश्वास को कैसे चकनाचूर करता है इसका उदाहरण साहित्य जगत में चोरियों के माध्यम से समय समय पर आता रहा है। कोई किसी की पाण्डुलिपि पढ़ ले एक बार और फिर वापस न करे या सालों रख ले और उसी के आधार पर अपना संकलन निकलवा ले तो बेचारा मूल लेखक तो बंगले झाँकने के सिवा आखिर कर ही क्या सकता है ? उस पर यदि कोई दूसरा लेखक यदि बड़े नाम वाला हो, उसका रसूख हो, एक पहचान हो तो छोटे लेखक की बात पर कोई विश्वास ही क्यों करेगा? ये कहानी बस मानों यही कहना चाहती है किसी पर भी अति विश्वास आपको हानि ही पहुँचाएगा क्योंकि यहाँ हर चेहरे पर मुखौटे लगे हैं, एक एक आदमी में कई कई आदमी हैं, उनसे सावधानी ज़रूरी है। यहाँ आपका उपयोग भी हो जाएगा और आपको पता भी नहीं चलेगा। और जब पता चलेगा तो हाथ मलने के अलावा आप कुछ नहीं कर पाएँगे इस तरह चारों तरफ से आपकी तारीफों के पुल बाँधे जाएँगे। पूरा गैंग लगा दिया जाता है ताकि वो अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकें और जैसे ही स्वार्थ सिद्धि हो जाए तो दूध में से मक्खी की तरह आप निकाल फेंक दिए जाओगे। ये है साहित्यिक संसार की हकीकत जो लेखक ने एक छोटी से गहन कहानी के ज़रिये उकेरी है। लेखक बधाई के पात्र हैं जो इस विषय पर कलम चला एक हकीकत कहने की हिम्मत की।

''सरहदें अपनी अपनी'' सैनिक जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई को इंगित करती कहानी है जहाँ मौत पग पग साथ चलती है वहीँ वो कैसे हर पल ज़िन्दगी को ऐसे जीते हैं जैसे उसके बाद ज़िन्दगी ही न हो .....सौम्य और राजवीर के मध्य उपजा प्रेम राजवीर की मौत पर ख़त्म नहीं हुआ बल्कि यहाँ भी लेखक ने एक बार फिर खूबसूरत मोड़ दिया और कहानी को अपने मुकाम पर पहुँचाया मानों लेखक कहना चाहता हो जाने वाले चले जाते हैं लेकिन यदि उनके जाने के बाद उनकी यादों में आप ज़रूरी नहीं ताजमहल ही बनवाएँ, बस उनकी चाहत को ज़रूर पूरा करने की कोशिश करें तो वही यादें एक सुखद रूप धारण कर लेती हैं और वही सच्ची श्रद्धांजलि होती है।

''उसके हिस्से का दर्द'' मज़हब के दर्द की बयानगी के साथ इंसानियत की मिसाल पेश करती खूबसूरत कहानी है जहाँ हिन्दू मुस्लिम होना मायने नहीं रखता। मायने यदि रखा तो हमेशा दोस्ती के जज़्बे ने जिससे ऊपर मज़हब भी नहीं हुआ वहीं दुनिया कैसे संबंधों में मज़हब को लाती है सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए उसकी बानगी यदि देखनी हो तो ये कहानी पढ़ी जानी चाहिए जहाँ स्वार्थ की वेदी पर अपनों के जज़्बात की आहुति दी जाती है।

''यही है सहर'' के माध्यम से लेखक ने ज़िन्दगी में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। किसी के धोखा देने से ज़िन्दगी रूकती नहीं है। वो आगे बढ़ती है तो इंसान को भी आगे बढ़ना चाहिए और ऐसी कड़वी यादों को भुलाना चाहिए।

''लिबास'' कहानी कुछ हद तक एक मनोवैज्ञानिक कहानी बन उभरी है जहाँ लेखक ने इंसानी फितरत को उकेरा है। कैसे हम किसी के भी लिबास से उसकी हैसियत का आकलन करते हैं जबकि लिबास कभी किसी की असली पहचान नहीं होता। मानो यही लेखक कहना चाहता हो। मानवीय कमज़ोरियों को उजागर करती कहानी जब अपने अंत पर आती है तो पाठक को सोचने पर विवश करती है आख़िर हम कब अपनी इस कमज़ोरी से उबरेंगे जब इंसान का आकलन उसके लिबास से न कर उसके चरित्र से करेंगे।

शीर्षक कहानी ''खिल उठे पलाश'' सोच को बदलने को इंगित कर रही है। जो कहानी तो एक आम कहानी है लेकिन लेखक ने उसे अपनी सोच से ख़ास बना दिया। जहाँ दस साल छोटा लड़का जब अपने से दस साल बड़ी लड़की के प्रेम में पड़ता है तो आसान नहीं होता समाज उसे मान्यता दे। बेशक फ़िल्मी किरदारों के जीवन में ये बात मायने नहीं रखती लेकिन अभी समाज इतना परिपक्व नहीं हुआ है इसलिए उसके लिए ये बात मायने रखती है। मगर लेखक ने यहीं से बदलाव की बयार बहाई है जब अविनाश के परिवार वाले इस सम्बन्ध पर अपनी स्वीकृति को मोहर लगा देते हैं और हर मन में खुशियों के, बदलाव के पलाश खिल उठते हैं। बेशक प्रश्न उठ सकता है ये सब कहानियों में ही संभव है असल ज़िन्दगी में नहीं तो लेखक का काम ही यही है समाज की सोच पर प्रहार करे और उसे बदलने को प्रेरित करे और ये काम लेखक ने बखूबी किया है। ऐसे ही धीरे धीरे जन जागरण हुआ करता है।

''आतंकवादी'' कहानी एक छोटी मगर संवेदनशील कहानी है जिसमे लेखक ने एक ऐसी कटु सच्चाई उकेरी है जिससे हम सब कई बार वाकिफ तो होते हैं लेकिन महसूसते नहीं। कैसे हमारी सेना जान हथेली पर रख देश की रक्षा करती है तो वहीं बॉर्डर के पास रहने वालों की ज़िन्दगी में उस आतंक का साया हर वक्त लहराता रहता है और उससे लड़ना उनके जीवन का मकसद सा बन जाता है। कैसे कोई परिस्थितिवश आतंकवादी घोषित कर दिया जाता है बिना जाने आख़िर उसके दिल में है

क्या ? फिर कैसे वो खुद को इस दाग से मुक्त करता है फिर चाहे उसे अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े। ऐसी जाने कितनी ही कहानियाँ बॉर्डर के पास बिखरी होंगी जिन्हें कभी कोई पहचान मिलती ही नहीं। जो कभी शहीद की श्रेणी में आते ही नहीं। एक बार आतंकवादी घोषित हो गए तो हो गए फिर चाहे उनके माथे से दाग धुल जाए मगर वो उस जगह तक ही सीमित रह जाता है। मानवीय संवेदनाओं को झंझोड़ती कहानी पाठक के मानस पर अंकित हो जाती है।

''कॉल सेंटर और पूस की रात'' कॉल सेंटर में काम करने वालों की ज़िन्दगी का लेखा जोखा है। कैसे और किन हालात में वो काम करते हैं और कैसे वहाँ काम करने वालों के बीच सम्बन्ध पनपते हैं। कितने सपने किसी आँख में समाए होते हैं तो कहीं जरूरतें न दिन देखतीं न रात, न सर्दी न गर्मी न बरसात, उन्हें पूरा करने के लिए लड़का हो या लड़की खुद को झोंक देते हैं ज़िन्दगी की आग में और इसी जद्दोजहद में से चुराते हैं पल जीने के। एक सॉफ्ट कहानी दिल को छूती है।

लेखक का ये संग्रह यदि उनके पुराने संग्रह ''सैफ्रीन'' से तुलना की जाए तो और परिपक्व होकर आया है। क्योंकि किसी भी लेखक का सबसे बड़ा तुलनात्मक अध्ययन यदि होता है तो उसका खुद से होता है और इस कसौटी पर लेखक खरे उतरते हैं। वहीं कहानियों का ताना बाना हर बार नया होता है। विषय की लेखक के पास कमी नहीं तो कल्पना भी अपनी उड़ान भरने में सक्षम है। वहीं कहानी एक अंत पर जाकर रूकती है न कि लेखक ने उन्हें बीच में छोड़ा। यही कहानी और लेखक दोनों की मुकम्मलता होती है। वर्ना आजकल नई कहानी के नाम पर जो लिखा जा रहा है वहाँ और सब कुछ तो होता है मगर कहानी ही नदारद होती है ऐसे में लेखक आश्वस्ति जगाते हैं कि जब तक ऐसा लेखन होता रहेगा साहित्य समृद्ध होता रहेगा। लेखक बधाई के पात्र हैं और उम्मीद है उनकी कलम से पाठक को उसकी खुराक लगातार मिलती रहेगी। शुभकामनाओं के साथ।

***

लघुकथा

भ्रम के चौराहे पर

संतोष सुपेकर

'लेकिन मैडम, वो चार नम्बर वाले सर तो कह रहे हैं कि वेट करने की मशीन तो आपके पास ही है।' कार्यालय में उनका विवाद जारी था

'आप ही आर्टिकल का वेट करेंगी और आप ही टिकट देंगी?'

'अरे! अभी मैंने आपसे ही तो कहा था या किसी और को कहा था?' विण्डो पर कार्यरत महिला तेज़ गुस्से में बोली, 'वेट ये करके देंगे और मैं उतने पैसे के टिकट दूँगी, वेट इनसे ही पूछकर आईए, जाईए।'

'यानी मैं इस, पास वाली विण्डो पर लम्बी लाईन में बहुत टाइम खराब करके सिर्फ इसका वेट पूछूँ और फिर आपकी विण्डो पर एक-डेढ़ घंटा वेस्ट करके आपसे टिकट खरीदूँ? दोनों ही काम एक ही खिड़की पर क्यों नहीं हो सकते? मज़ाक समझ रखा है क्या? या मैं फालतू हूँ?' उनका स्वर ऊँचा होता गया।

'चिल्लाईए मत और हटिए यहाँ से! पीछे और भी कस्टमर हैं, चलिए हटिए।'

'आज तो इनकी कम्पलेन करनी ही पड़ेगी, जनता को बेवकूफ समझ रखा है, मैं अभी कम्पलेन करता हूँ आपकी और आपके रूढ़ नेचर की।' वे ज़ोर से चिल्लाए तो आसपास खड़े लोग सहम कर उनकी ओर देखने लगे।

'आज तो जीत हो गई शर्मा मैडम की।' उन्हें तैश में कम्पलेन करने अंदर जाते देख दो कार्यालय कर्मी आपस में ज़ोरों से बतियाए, जिनकी आवाज़ उन्होंने सुनी, 'मैडम तो चाहती ही हैं कि कोई उनकी कम्पलेन करे और उन्हें उस विण्डो से छुटकारा मिल जाए।'

उन्हें झटका सा लगा 'अच्छा तो ये बात है! तो ये सब उस खिड़की से हटने का ड्रामा है!' आवेश में आगे बढ़ते उनके कदम ठिठक गए और वे बिना कोई कम्पलेन किए बाहर आ गए, चौराहे पर।

चौराहे पर उसी ऑफिस से सेवानिवृत्त, उनके पूर्व परिचित अकरम भाई मिल गए, उन्हें पूरी बात बताई तो बोले, 'और आप उन दोनों की बात सुनकर वापस आ गए? अरे, आपको तो कम्पलेन कर देना थी। आप फंस गए उनके जाल में! ये सब उस मिसेस शर्मा और उनके चमचों की चाल है जो नहीं चाहते कि कोई उनकी कम्पलेन करे। जाइए आप तो कम्पलेन कर दीजिए।' कहकर अकरम साहब अपनी बाईक पर फुर्र हो गए।

उन्हें ऐसा लगा कि वे शहर के नहीं, भ्रम के ऐसे चौराहे पर खड़े हैं; जहाँ अव्यवस्था से लड़ने के लिए पता नहीं कौन सा रास्ता जाता है?

***

संपर्क:31, सुदामानगर, उज्जैन (म.प्र.)
ईमेल: santoshsupeker@rediffmail.com
फोन:9424816096

पार्थ तुम्हें जीना होगा
आधुनिक समय का एक प्रभावी दस्तावेज़

डॉ. गरिमा संजय दुबे

पार्थ तुम्हें जीना होगा
उपन्यास : ज्योति जैन
शिवना प्रकाशन, पी सी लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र 466001
दूरभाष 9806162184
मूल्य: 175 रुपये

पार्थ .....तुम्हें जीना होगा से लघुकथाकार ज्योति जैन ने उपन्यास विधा में कदम रखा है, और अपने पहले ही प्रयास में उन्होंने राजनीति जैसे स्त्रियों द्वारा अपेक्षाकृत कम लिखे जाने विषय पर अपनी गहरी समझ और दृष्टि साबित की है। एक लेखक की अनुभूति और विचार जब पाठक की अनुभूति और विचार से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं वहीं लेखक की सफलता सुनिश्चित हो जाती है। अपने आस-पास फैले निराशा के आवरण में लिपटी सत्ता को परिवर्तित करने का सपना हर जागरूक और संवेदनशील व्यक्ति देखता है। उठाए गए मुद्दों से लेखिका गहरे सामाजिक सरोकारों, राष्ट्र की स्थिती से उपजी चिंता और उसके हल के लिए उनकी तड़प से हमें गहरे तक प्रभावित करती है। यह उपन्यास कहने को तो लघु है किंतु विराट् विषयों को उठाता है और प्रभाव में दीर्घ है।

पार्थ, पृथा, अनुराधा, अशोक, जनार्दन और युवा कार्यकर्ताओं के साथ यह एक साथ कई विषयों को साथ लेकर चलता है। पृथा के माध्यम से नारी विमर्श, पुरुष दम्भ, स्त्री की सामाजिक स्थिती व आदिवासी कल्याण का भाव है, तो दूसरी तरफ अनुराधा के माध्यम से वे युवा पीढ़ी की अपने को साबित करने की ज़िद और आरक्षण जैसे मुद्दे पर प्रकाश डालती हैं। अशोक पुरोहित और जनार्दन अन्धकार में प्रकाश की किरण की भाँति आदर्शवादी, नैतिक और मूल्यपरक राजनीति की आवश्यकता व उनकी कठीन राह को वे बताती हैं। और उपन्यास का केंद्रीय पात्र जिसके नाम से उपन्यास का शीर्षक है पार्थ, ठीक पार्थ की ही तरह कई तरह के भावनात्मक द्वंद्व से घिरे हुए अर्जुन की ही याद दिलाता है। युवा जोश, देश को बदलने का जज़्बा और जल्दबाजी, लेकिन स्वार्थी राजनीतिज्ञों व षड्यंत्रों के चक्रव्यूह को न समझ पाने की स्वाभाविक दूरदृष्टि व अनुभव का अभाव, पीढ़ियों की सोच का अंतर लेकिन एक ईमानदार कोशिश के रूप में पार्थ अपने से युवाओं का आह्वान सा करता नज़र आता है जब वह कहता है ''मुझे बस कर्मठ ईमानदार युवा मिल जाएँ'' साथ ही युवाओं की ऊर्जा का नकारात्मक दिशा में प्रवाह देख उसकी लाचारी हमें हमारी बेबसी सी लगती है। युवा ही देश का भविष्य हैं और अपने बुजुर्गों से अनुभव का लाभ ले वे राष्ट्र निर्माण की नई इबारत लिख सकते है, यदि उनकी ऊर्जा को सकारात्मक दिशा दी जा सके किंतु प्रारम्भ पूर्ववर्ती पीढ़ियों को करना होगा क्योंकि युवाओं को विकृत विरासत अपने पूर्वजों से ही मिली है,अपने हर चरित्र के माध्यम से लेखिका का यह स्वर हर बार गूँजता रहता है। जनार्दन अंकल, पृथा और अनुराधा का पार्थ से निस्वार्थ जुड़ाव एक आशा की किरण भी जगाता है कि सब कुछ बुरा नहीं है और अच्छे लोगों का संगठित होना समय की माँग है।

संवादों का अधिक प्रयोग उपन्यास को गति प्रदान करता है। चूँकि लेखिका लघुकथाकार है और इस लघु उपन्यास में बड़े जटिल विषयों को लेकर वे आईं है किंतु फिर भी बहुत विस्तार किसी विषय को नहीं दिया ताकि उपन्यास का केंद्रीय भाव तिरोहित न हो यह उनकी गागर में सागर वाली लेखनी को पुष्ट करता है। पढ़ते समय कभी कभी थोड़ा उलझाव, थोड़ा घुमाव रास्ते को और रोमांचक बना देता है, आख़िरी के कुछ पन्नों में हमें वह रोमांच महसूस होता है। जिन मुद्दों को लेखिका ने उठाया है उनका कोई त्वरित हल है ही नहीं, केवल प्रयास और समय ही इनके उत्तर दे सकते है। बस एक उम्मीद और आह्वान के साथ लेखिका उपन्यास का अंत कर देती है। हर युग में हर पार्थ को तमाम विषमताओं से संघर्ष कर जीना होगा, क्योंकि मृत्यु और पलायन कभी कोई हल नहीं दे सकते। उपन्यास शिल्प और प्रभाव में उत्कृष्ट है और लेखिका बधाई की पात्र है। उन्हें उनके आगामी सफलताओं की अनेक शुभकामनाओं के साथ।

***

संपर्क : 18-बी , वंदना नगर एक्स.
इंदौर म.प्र.
मोब. न. 9009046734

यायावरी यादों की
हँसते-हँसाते यह सफर कटने वाला है

समीक्षक: पारुल सिंह

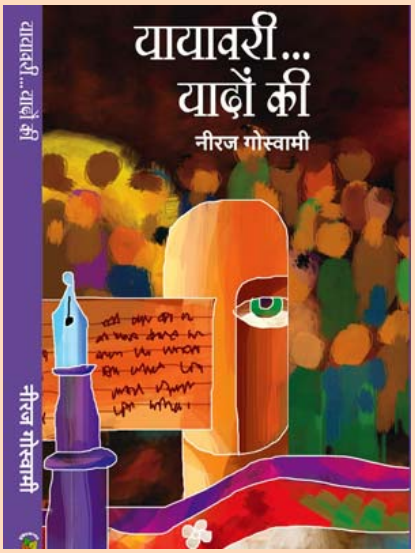

यायावरी यादों की
संस्मरण : नीरज गोस्वामी
शिवना प्रकाशन, पी सी लैब, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने,
सीहोर, मप्र 466001
दूरभाष 9806162184
मूल्य: 175 रुपये

संस्मरण, किसी की यादों के गलियारे से उसकी उँगली पकड़ कर गुज़रने जैसा है, मुझे हमेशा से ही संस्मरण व आत्मकथा पढ़ना बहुत अच्छा लगता है। क्योंकि इसमें इंसान के अपनी ज़िंदगी से जुड़े सच्चे वाक़ये होते हैं, जो आपको प्रेरित भी करते हैं और कभी-कभी आगाह भी। मेरा ऐसा मानना है कि संस्मरण या आत्मकथा में लेखक की अपनी ही यादों में यात्रा के साथ आत्म-विवेचना भी होती है।

देखो मेरे ख़्वाब थे, देखो ये मेरे ज़ख्म हैं
मैंने तो सब हिसाब-ए-जाँ बर-सर-ए-आम रख दिया

'यायावरी यादों की' में ज़ख्म जैसा तो कुछ नहीं है। ये लेखक नीरज गोस्वामी का एक निश्चल सा प्रयास है लोगो को हँसाने का गुदगुदाने का व अपनी यादों में हँसते-हँसते औरों को भी शरीक करने का।

'यायावरी यादों की' में नीरज जी ने कुछ तो यात्रा-वृतांत और कुछ भिन्न-भिन्न जगहों के अपने अनुभवों को समेटा है। किन्तु वह यात्रा वृतांत हो या ज़िंदगी का कोई अनुभव हास्य, स्वस्थ व्यंग्य और चुटीलेपन का दामन किसी संस्मरण में उन्होंने नहीं छोड़ा है। मानवीय भावनाओं व चीज़ों,जगहों के लिए अपने व्यवहार को लेकर भी लेखक ने हँसते-हँसते स्वयं पर भी अच्छा व्यंग्य किया है तो कुछ स्थानों पर मानवीय कमजोरियों को पकड़ा है व निजी ज़िंदगी में हमारे स्वार्थी वह भेदभावपूर्ण व्यवहार पर भी व्यंग्य किया है। दरअसल ये किताब हास्य और व्यंग का अद्भुत संगम है जिसमें उन्होंने कुछ सत्य और शायद कुछ काल्पनिक घटनाओं का सहारा लिया है।

नीरज गोस्वामी किताब की भूमिका में ही बहुत मज़ेदार लेकिन बेबाक शब्दों में इस किताब के पीछे की कहानी बताते हुए पाठक को इस भ्रान्ति में नहीं रखते कि वो कोई महान साहित्यिक कृति पढ़ने जा रहे हैं बल्कि अपनी चुलबुली भाषा में लिखते हैं कि 'इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे पढ़ कर आपके ज्ञान में वृद्धि होगी। ये शुद्ध रूप से समय बर्बादी में आपकी मदद करने वाली किताब है। मेरा दावा है कि आपको कानों कान ख़बर भी नहीं होगी और समय बर्बाद हो जायेगा।' हक़ीक़त में देखें तो नीरज जी की आधी बात सच है आधी झूठ क्योंकि ये सच है है की इसे पढ़ते वक्त समय कैसे गुज़र गया ये तो पता नहीं चलता लेकिन वो बर्बाद हुआ ये बात झूठ लगती है। जो समय आपके चेहरे पर मुस्कान ला दे उसे बर्बाद होना कैसे कहा जा सकता है ? इस किताब को पढ़ते वक्त आपके चेहरे पे

संपर्क: डब्ल्यू-903, अमरपाली सेक्टर
120, नोएडा, उप्र 201301
मोबाइल 9871761845

मुस्कान तो लगातार बनी ही रहती है और कहीं कहीं ठहाका भी लगता है।

'यायावरी यादों की' के अधिकांश संस्मरण उन पाठकों को ध्यान में रख कर रचे गए हैं जो कम्प्यूटर से जुड़े हुए हैं याने सोशल मीडिया के जानकार हैं। उनका पहला संस्मरण तीज त्यौहार या विशेष दिनों के लिए बधाई मैसेज भेजने पर तथा उनकी उपयोगिता पर अच्छा व्यंग्य किया है। इस संस्मरण में कार्यालय जीवन पर अपने अनुभव बाँटते हुए लेखक ने खूब हँसाया है। 'अपुन डॉन' संस्मरण, जिस में मुम्बइया भाषा का बहुत दिलचस्प प्रयोग हुआ है, आपको ब्लॉगिंग फेसबुक, ट्वीटर से जुड़ी बातों के माध्यम से हँसा कर लोटपोट कर देता है।

मुम्बई -पुणे के मध्य बसे 'खोपोली' जहाँ नीरज जी बरसों रहे हैं के संस्मरणों में उन्होंने जिस तरह से उस जगह की खूबसूरती और प्राकृतिक सुंदरता का सचित्र वर्णन किया है वह मनोहारी है और किताब पढ़ते-पढ़ते ही आपको खोपोली की खूबसूरत वादियों में घूमने को प्रेरित कर देता है। वाकई दिल कह उठता है 'आओ चलें खोपोली'।

चीन यात्रा पर लिखे उन के संस्मरण तो इतने मज़ेदार हैं कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद आप पूरा पढ़े बिना नहीं रह सकते। इन संस्मरणों में चीन की प्रगति, सुंदरता के साथ-साथ लेखक ने अपने सहकर्मियों के साथ बातचीत से जो हास्य उत्पन्न किया है वह अद्भुत है। गुप्ता जी का 'ओ शिट' संस्मरण खत्म होने तक आप भी हँसते-हँसते बोलने लगते हैं। किंतु इन संस्मरणों में भी लेखक फ्री की वस्तु का अधिक उपयोग करने जैसी मानसिकता तथा एयरपोर्ट पर कस्टम ड्यूटी बचाए जाने जैसे विषयों पर तंज करना नहीं भूलते हैं।

'हर मौसम घूमने का मौसम है' सच ही कहा है लेखक ने, महाराष्ट्र के बहार के लोगों के लिए अपेक्षा कृत अनजान हिलस्टेशन माथेरान की यात्रा में वहाँ की खूबसूरती और अपने अनुभव बाँटकर लेखक ने जैसे घूमने वालों पर उपकार किया है माथेरान की पोस्ट माथेरान जाने की पूरी तैयारी की जानकारी के साथ दी गई है। माथेरान यात्रा संस्मरण में उनके द्वारा की गयी घुड़सवारी का वर्णन कमाल है।

'धरमिंदर पाजी का जवाब नहीं' संस्मरण, सिंगल थियेटर में पूरी भारतीयता के साथ देखी जाने वाली फ़िल्मों के आनन्द की याद दिलाता है। लेखन शैली व भाषा ने इस संस्मरण को और ज़्यादा रोचक व मनोरंजक बना दिया है। बड़े शहरों में तो मल्टीप्लेक्स संस्कृति व महानगरीय सभ्यता ने ये अनुभव दर्शकों से लगभग छीन लिये हैं। पर छोटे शहरों व कस्बों मे अभी भी यह माहौल देखा जा सकता है। पंजाब के लुधियाना शहर में धर्मेंद्र की फिल्म देखते हुए दर्शकों की प्रतिक्रिया और माहौल का बहुत मनोरंजक ढंग से वर्णन किया है।

पुस्तक मेले के संस्मरणों में लेखक ने साहित्य में हिंदी की स्थिति और लेखकों में पाठकों की स्थिति, लेखकों में लेखकों की स्थिति, सभी पर बहुत अच्छा व्यंग्य किया है। जो लोग दिल्ली के विश्व मेले में गए हैं वो तो इसका आनंद लेंगे ही लेकिन जो कभी नहीं गए हैं वो भी इसकी हल्की फुल्की झलक इस संस्मरण से पा सकते हैं।

कुल मिलाकर यह किताब आपको हँसते हँसाते संस्मरणों से जुड़े हुए खूबसूरत फोटो दिखाते-दिखाते कब खत्म हो जाती है पाठक को पता ही नहीं चलता और आख़िरी पन्ने पर आकर दिल कहता है यह दिल माँगे मोर। नीरज गोस्वामी जी की संस्मरण लेखन की कला थोड़ी अलग है जो पाठक को पहले ही संस्मरण से अपने साथ जोड़ लेती है और वायदा करते हुए चलती है कि हँसते-हँसाते यह सफर कटने वाला है।

शिवना प्रकाशन से आई ये किताब अपने कलर, कलेवर, फ्लेवर और टेक्सचर से भी बहुत सुंदर है। यहाँ शिवना प्रकाशन की तारीफ करनी होगी कि किताबों के पन्नों से लेकर कवर पेज व डिज़ाइनिंग में प्रकाशन ने ना केवल अपनी गुणवत्ता को कायम रखा है बल्कि उसे बढ़ाया भी है। किताबें पढ़ने वालों के लिए हाथ में पकड़ कर पढ़ने के लिए एक अच्छी किताब 'यायावरी यादों की'।

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

-संपादक

vibhom.swar@gmail.com

चाहने की आदत है

कविता से चाहत की आदत डालती एक किताब

समीक्षक: मुकेश दुबे

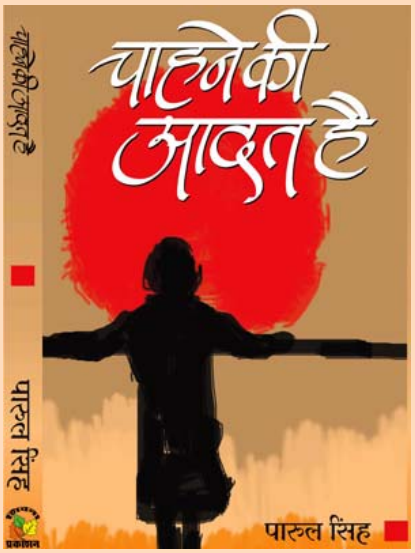

यायावरी यादों की
कविता संग्रह : पारुल सिंह
शिवना प्रकाशन, पी सी लैब, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने,
सीहोर, मप्र 466001
दूरभाष 9806162184
मूल्य: 200 रुपये

मुश्किल सवाल है, कम से कम मेरे लिए कभी आसान नहीं रहा। कोई किताब शुरू कहाँ से होती है ? आवरण से या उस पर लिखे किसी मशहूर साहित्यकार के शब्दों से या समर्पण या भूमिका में लिखे उसी रचनाकार के शब्दों से या फिर अनुक्रमणिका में दिए उस क्रम से जिसे सजाया है रचनाकार ने बड़े अपनेपन से अपने पाठकों के लिए.... अनगिनत 'या' और हर इक का अपना जवाब !!

काफ़ी हद तक जवाब दिया पारुल सिंह ने जब हाथों में आई उनकी किताब ''चाहने की आदत है''।

मुक्तछंद विधा में लिखी गई नहीं कहूँगा, दरअसल ये कही गई बातें हैं जिन्हें एक खूबसूरत लिबास में संवार कर बड़े ही प्यार से कहा है कि.... चाहने की आदत है..... !!

यह किताब शुरू होती है अपने होने से काफी पहले से, कहने से ज़्यादा जो नहीं कहा है उस जगह से जहाँ कवयित्री का मन कभी प्रकृति के साथ कभी स्व-भावों के साथ तो कभी अपने परिवेश के साथ सरगोशी करता नज़र आता है। कई बिम्ब हैं, प्रतीक हैं और प्रतिमान भी, उमंग है, उत्साह है और एक पीड़ा भी जिसे लाड़-प्यार से समझाया है किसी रूठे बच्चे सा एक माँ की तरह।

मानव मन बहुत बड़ी पहेली है, अनसुलझे भावों व प्रश्नों का पिटारा जिसकी थाह लेना मुश्किल है। जीवन आरम्भ से अंत तक ऐसे ही सवालों से घिरा रहता है और हर कोई अपने ढंग से कोशिश करता है उनके समाधान के लिए। वही कोशिश बतलाती है कि प्रयास स्त्री का है या पुरुष का। यह फर्क लाज़िमी है क्योंकि, दोनों के हृदय में फ़र्क है, सोच में फ़र्क है तथा चीज़ों को महसूस करने का अंदाज़ अलग-अलग है।

नारी मन भावनाप्रधान तो होता ही है, साथ ही पगा हुआ है प्रेमरस की मिठास में। ऐसी संवेदनाएँ जन्म देती हैं कुछ भावों को जिन्हें कागज़ पर कलम से उकेरा है पारुल ने अपने संग्रह ''चाहने की आदत है'' में।

पारुल की कविता का केनवास बहुत विस्तृत है, धरती से अम्बर तक व ख़ालिस खुद से सभी तक। बात शुरू होती है अपने आप से और समाहित कर लेती है सर्वत्र बड़े ही सहज स्वरूप में। एक बात जो इन कविताओं को पढ़ते वक्त जेहन में आती है, तन्हाई पसंद हैं शब्द, बिन कहे सुनने को मजबूर करते, सुनकर महसूस करने व मनन करने को, महसूस करना ही पड़ता है पाठक बन जो कहती है पारुल अपनी कविता के माध्यम से, यही है खासियत ! यही है काव्यरस और यही है कवियित्री की सफलता कि पहले ही संग्रह में उन्होंने अपनी आमद की दस्तक ज़ोर-शोर से दी है।

छोटी के साथ लम्बी रचनाएँ भी पकड़ बनाए रखती हैं। कई जगहों पर हैरान कर दिया है पारुल ने, जब वो कहती हैं ''सभी स्त्रियाँ लक्ष्मणरेखा के इस पार होती हैं'' तो कहती नहीं पूछती लगती हैं पुरुष समाज से कि यही होता है तो आख़िर होता क्यूँ है ? क्यों होती

संपर्क: 107, डीडी एस्टेट कॉलोनी, सीहोर 466001, मप्र
मोबाइल 9826243631

है स्त्री के लिए हर सीमा, किसी पुरुष की सीमा क्या है यही पूछना चाहा है पारुल ने और यह शब्द देर तक मन में गूँजते रहते हैं.....

ऐसा ही भाव आता है ''तुम्हारे घर की दहलीज़ के अन्दर आने का, नहीं मुझे हुक्म''। पंक्ति को पढ़कर और लगता है स्त्री विमर्श का यह रंग कितना खूबसूरत तंज़ है, कम शब्दों में गहरी बात कहना आदत है पारुल की। ''गली, मोहल्लों में खुलने वाली खिड़कियाँ बंद ही रखी जाती हैं। सदियों से''।

चंद शब्द सभी कुछ बयाँ कर गए।

शोर-शराबे के बिना, सहजता से बात कहना प्रभावी लगता है इस संग्रह में.... ठीक वैसे ही जैसे रहे लब ख़ामोश, नज़रें कह गईं दास्ताँ सारी। हर कविता जहाँ विराम लेती है वहीं से शुरू होता है संघर्ष दिल-ओ-दिमाग में, मन चल पड़ता है पारुल की बनाई पगडंडियों पर तलाशता अर्थ उन शब्दों का शब्दों के पीछे का..... जिसे सामान्य भाषा गूढ़ार्थ कहती है।

स्त्रीमन के कोमल विचारों को भी सौम्यता व शालीनता से रखा है, शिकायत भी है और समर्पण भी है.... खुशियों का आवेग व तन्हाई की कसक भी है, कहने का आशय कि मुख्तलिफ अंदाज़ों व रंगों से लबरेज़ है पारुल की चाहने की आदत।

ऊगते या डूबते सूरज में कुछ तलाशती एक तन्हा लड़की, आवरण पर ही आगाह करती है अन्दर के मनोभावों से, दिलकश रंग संयोजन आँखों को सुकून देता लगता है व कागज़ का टेक्सचर या मखमली एहसास ही किताब से जोड़ जाते हैं।

सुस्पष्ट टंकण व मुद्रण, गुणवत्तायुक्त सामग्री का उपयोग इस संग्रह को अधिक प्रभावी बना देते हैं। 127 पृष्ठों व हार्डकवर होते हुए भी मूल्य मात्र 200 रुपये पाठक के लिए किसी उपहार से कम नहीं है, इस बात का श्रेय जाता है शिवना प्रकाशन को।

इस बेहतरीन प्रयास के लिए पारुल सिंह जी को हार्दिक बधाई व अशेष शुभकामनाएँ कि भविष्य में उनकी सुलेखनी ऐसे ही उत्कृष्ट सृजन करती रहे।

***

अंदर का स्कूल
सरल और सहज रूप में गहरी बातें

समीक्षकः शानू सेंगर

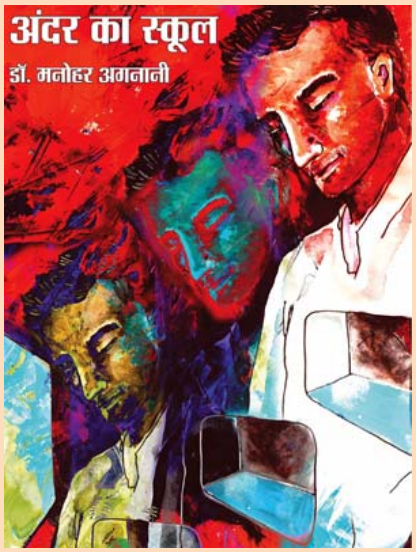

अंदर का स्कूल
संस्मरण : मनोहर अगनानी
शिवना प्रकाशन, पी सी लैब, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने,
सीहोर, मप्र 466001
दूरभाष 9806162184
मूल्यः 150 रुपये

'अंदर का स्कूल' मनोहर अगनानी द्वारा लिखी गई उनके जीवन की घटनाओं का संग्रह है जिसे उन्होंने अपने जीवन के विभिन्न अवसरों और क्षेत्रों में अनुभव किए हैं। इनमें बेहद सरल और सहज रूप में गहरी बातें व्यक्त की गई हैं जो श्रेणी और वर्ग से परे, समाज की सामान्य सोच तथा दृष्टिकोण से हमें रूबरू कराती हैं।

विभिन्न मुद्दों में सबसे महत्त्वपूर्ण है समाज में व्याप्त लिंग-भेद की नीति। बात चाहे बेटी को 'बेटा' कह कर सम्बोधन की हो अथवा रंगों द्वारा लिंग आधारित वस्त्र-चयन की प्रक्रिया हो या पति और पत्नी के पृथक दायित्व की हो; समाज में व्याप्त लिंग-भेद किस तरह जनमानस के मन-मस्तिष्क की गहराइयों में पैठ गया है, यह सोचने के लिए विवश करता है।

लेखन के अन्य शीर्षकों में 'बेटी की चमक' किस प्रकार परिवार की धुरी बन जाती है, उसकी तोतली बोली स्नेहवश वर्षों उसी रूप में दोहराई जाती है, यह पढ़ना आनंददायक है। वहीं 'शरीर की वसीयत' और 'परिपक्वता' प्रेरणा भी देती हैं। पुस्तक में प्रत्येक शीर्षक पर बहुत ईमानदारी से अपने मन के भाव रखे गए हैं और यही खूबी इसे श्रेष्ठ बनाती है।

कहानियों को पढ़ कर जिसप्रकार पाठक द्वारा लेखक के व्यक्तित्व का ताना-बना बुन लिया जाता है, इस किताब को पढ़कर लेखक के सुलझे विचार और ईमानदार व्यक्तित्व के प्रति पाठक को एक लगाव-सा हो जाता है। आत्म कथ्य में भी लेखक ने ईमानदारी से लेखन की पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया है।

***

प्रज्ञा की किताब 'नाटक से संवाद' का लोकार्पण

2017 के विश्व पुस्तक मेले के दूसरे दिन 8 जनवरी को अनामिका प्रकाशन से आई डॉ. प्रज्ञा की किताब 'नाटक से संवाद' का लोकार्पण हुआ। नाटक पर केंद्रित डॉ. प्रज्ञा की यह तीसरी किताब है। किताब का लोकार्पण स्वराज प्रकाशन के स्टाल पर हुआ। शीर्षक की प्रामाणिकता को पुस्तक के लोकार्पण में भलीभाँति देखा जा सकता था। इस अवसर पर दो वरिष्ठ नाट्य चिन्तक- डॉ. प्रताप सहगल, प्रो. देवेंद्रराज अंकुर ने विस्तार से अपनी बात नाटक और प्रज्ञा की नाट्य आलोचना दृष्टि पर केंद्रित की। कार्यक्रम का संचालन डॉ. राकेश कुमार ने किया। संवाद की शुरूआत नाटककार-आलोचक प्रताप सहगल जी ने की। जिसमें उन्होंने पुस्तक की विषयगत विविधता जैसे- बाल रंगमंच, नुक्कड़ नाटक, अस्मिता रंगमंच, अभिनेता व नाटककार के साथ संवाद और नाट्य संस्थाओं की भूमिका पर विस्तार से चर्चा की. उन्होंने किताब के आने को एक घटना के रूप में लेते हुए कहा कि ''नाटक पर केंद्रित किताबें कम हैं और अच्छी किताबें बहुत कम हैं। उसमें प्रज्ञा की किताब सुचिंतित तरीके से, रंग दृष्टि से और मंजी हुई भाषा में लिखी गई किताब है।'' उन्होंने 'माधवी' और नाटककार विजय तेंदुलकर पर आधारित लेखों को बेहद महत्त्वपूर्ण बताया। प्रसिद्ध रंगकर्मी और रंग चिन्तक देवेंद्र राज अंकुर जी ने डॉ. प्रज्ञा के नाटक की दृष्टि से किए गए पहले के कामों- में नुक्कड़ नाटक की स्थापना को लेकर लिखी गई पुस्तक 'नुक्कड़ नाटक: रचना और प्रस्तुति' तथा नुक्कड़ नाटक संचयन 'जनता के बीच जनता की बात' सरीखे महत्त्वपूर्ण कामों की तीसरी कड़ी के रूप में इस किताब के लिए बधाई दी। उनके वक्तव्य में रंगमंच की एक चिंता साफ झलक रही थी कि नाटक और उसके मंचन के बारे में जो पढ़ा-लिखा तथा शोध किया जा रहा है वह बेहद सतही होता है। जिसमें हम नाटक पर काम तो करते हैं लेकिन अपने किताबों से निकल रंगमंच की दुनिया को देखने की जहमत भी नहीं उठा पाते। नाटकों की समझ को पुख्ता बनाने के लिए जरुर रंगमंच की चार दीवारी में प्रवेश करना होगा तभी रंगकर्म पर सार्थक लिखा-पढा जाना सार्थक हो पाएगा। इस दृष्टि से उन्होंने प्रज्ञा के काम का मूल्यांकन विश्वविद्यालयों की दृष्टि से बाहर और रंगमंच की दृष्टि के भीतर माना। उनका कहना था प्रज्ञा का काम उसी सार्थकता की तलाश है और उम्मीद है इसी तरह वे अपना सम्वाद नाटकों से हमेशा कायम रखें। उन्होंने ये भी कहा कि ''अब तक नाटक में संवाद की बात होती थी प्रज्ञा ने नाटक से संवाद की बात की है।'' दोनों वरिष्ठ रंगकर्मी ने 'माधवी' और विजय तेन्दुलकर पर लिखे लेख की प्रशंसा की। अस्मिता नाट्य संस्था के अरविन्द गौड़ जी से रंगमंच के बारे में तथा पुस्तक के बारे में बातें हुई।

इस अवसर पर वरिष्ठ साहित्यकार जयप्रकाश कर्दम, रमेश उपाध्याय,प्रेम जनमजेय, बलजीत सिंह रैना और ए अच्युतानन्द के अलावा कवि-व्यंग्यकार लालित्य ललित, नामदेव और स्वराज प्रकाशन के अजय मिश्रा ने भी प्रज्ञा को अपनी शुभकामनाएँ दीं। प्रेम जनमेजय जी ने कहा ''प्रज्ञा की क्षमताओं पर मुझे पूरा भरोसा है। इनसे बहुत अपेक्षाएँ हैं। नाटक पर लिखते रहने के साथ ये कहानियाँ लिखना कभी न छोड़ें।'' समापन पर प्रज्ञा ने सबका आभार व्यक्त करते हुए कहा-'' मैं विश्वास दिलाती हूँ नाटक से संवाद की मेरी यात्रा चलती रहेगी । ''

***

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल को आजीवन साहित्य साधना सम्मान

हरियाणा साहित्य अकादमी ने प्रसिद्ध साहित्यकार और शोध दिशा के प्रधान संपादक डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल को आजीवन साहित्य साधना सम्मान प्रदान किया है। राष्ट्रीय स्तर का यह सम्मान हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री मनोहरलाल ने एक भव्य समारोह में प्रदान किया। डॉ. अग्रवाल को स्मृति चिह्न के अतिरिक्त सात लाख रुपए का चेक भी दिया गया।

संभल (उ.प्र.) में 14 जुलाई 1944 को जन्में डा. अग्रवाल ने आगरा विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर और पीएॅच.डी. की उपाधि प्राप्त की। संभल के बाद उनकी कर्मभूमि बिजनौर रही और वहीं से उन्होंने 'शोध दिशा' तथा 'शोध संदर्भ' (छह खंड) के प्रधान संपादक के रूप में महत्त्वपूर्ण काम किया। गीत, ग़ज़ल, कहानी, एकांकी, निबंध, हास्य-व्यंग्य, बालसाहित्य एवं समालोचना के क्षेत्र में उन्होंने भरपूर काम किया है। उनकी संपादित और मौलिक शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

उन्हें अब तक उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से साहित्यभूषण, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय से शिक्षा पुरस्कार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का प्रथम पुरस्कार, विद्यासागर, विद्यावारिधि, रतन शर्मा बालसाहित्य पुरस्कार, सहित अनेकानेक सम्मान प्राप्त हुए हैं। डॉ. अग्रवाल के साहित्य पर भारत के विविध विश्वविद्यालयों में पीएॅच.डी. उपाधि के लिए 20 से अधिक शोधकार्य हुए हैं।

***

गोवा व्यंग्य महोत्सव

सार्थक व्यंग्य विमर्श एवं लेखन पर चर्चा के अपने अभियान में 'व्यंग्य यात्रा' ने इस बार गोवा में स्थित पार्वती बाई चैगुले कॉलेज ऑफ आर्ट एंड साईंस में 17 और 18 मार्च को व्यंग्य महोत्सव का आयोजन किया। इस आयोजन में 'वाग्धारा, मुम्बई ' के वागीश सारस्वत, समन्वयक लालित्य ललित एवं पार्वती बाई चैगुले कॉलेज के डॉ.ओम प्रकाश त्रिपाठी एवं डॉ. ऋषिकेश मिश्र की मुख्य भूमिका रही। परामर्श प्रेम जनमेजय का रहा। व्यंग्य महोत्सव में पार्वती बाई चैगुले कॉलेज के छात्रों एवं अध्यापकों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, दिल्ली, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, हरियाणा, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, गुजरात आदि राज्यों से 66 के लगभग व्यंग्य सहयात्री सम्मिलित हुए। विवेक मिश्र एवं राजेंद्र सहगल व्यंग्य यात्रा के विशिष्ट अतिथि थे। इस अवसर पर व्यंग्य यात्रा द्वारा सभी का स्वागत विवेक मिश्र के कहानी संकलन से किया गया। छह सत्रों में 'व्यंग्य की विविध् विधाओं में आवाजाही' के अतिरिक्त व्यंग्य का परिदृश्य के अंतर्गत कोकणी एवं मराठी भाषा के हास्य व्यंग्य परिदृश्य की चर्चा हुई । समुद्र तट पर काव्य संध्या का आयोजन किया गया। समापन सत्र की मुख्य अतिथि गोवा की राज्यपाल महामहिम मृदुला सिन्हा, विशिष्ट अतिथि सूर्यबाला, वागीश सारस्वत एवं अध्यक्ष प्रेम जनमेजय थे। संचालन लालित्य ललित ने किया। समापन सत्र में वरिष्ठ व्यंग्यकार मनमोहन सरल को 'वाग्धारा जीवन गौरव सम्मान' से सम्मनित किया गया।

****

'पार्थ, तुम्हें जीना होगा' का विमोचन समारोह संपन्न

आमतौर पर महिलाओं के लिए लेखन का काम ही चुनौतीपूर्ण ही होता है और यदि वे लिखें भी तो उनके लिए विषय भी चुनिंदा ही होते हैं। अमूमन राजनीति पर लिखना महिलाओं के लिखने लायक विषय नहीं माना जाता है। यदि कोई इस लीक से हटकर कोशिश भी करे तो संपादक और आलोचक यही समझाते नज़र आएँगे कि आप तो प्रेम पर लिखिए और यदि उसने प्रेम पर लिखना शुरु कर दिया तो धीरे से उसकी दिशा कहीं और मोड़ दी जाएगी। इस लिहाज से भी ज्योति जैन का यह उपन्यास खास है कि इसकी पृष्ठभूमि राजनीति की ली गई है और उस पर उस लेखिका ने साधिकार लिखा है, जिसने अब तक लघु कथा और कविता जैसी विधाओं पर ही काम किया था। इस लिहाज से ज्योति जैन की यह उड़ान कहीं महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि कोई किसी को बड़ा नहीं बना सकता, क्योंकि रचनाधर्मिता ही किसी को बड़ा बना सकती है। साहित्य के संसार में दिल्ली ऊँचा सुनती है और कई बार तो राजनेताओं से भी ज़्यादा ऊँचा सुनती है। सृजन की दृष्टि से मध्यप्रदेश ने हमेशा दिल्ली को चुनौती दी है। उक्त विचार सुप्रसिद्ध साहित्यकार चित्रा मुद्गल ने वामा साहित्य मंच के एक गरिमामयी समारोह में व्यक्त किए। वे शहर की जानीमानी लेखिका ज्योति जैन के नवीनतम उपन्यास 'पार्थ, तुम्हें जीना होगा' के विमोचन अवसर पर बोल रही थीं। लेखिका ज्योति जैन के उपन्यास 'पार्थ तुम्हें जीना होगा' का विमोचन समारोह रविवार को जाल ऑडिटोरियम में हुआ। इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार मौजूद थे। सुविख्यात लेखिका चित्रा मुद्गल के साथ साहित्यकार पंकज सुबीर भी कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में शामिल थे।

साहित्यकार पंकज सुबीर ने धन्यवाद ज्ञापित किए जाने पर कहा कि प्रकाशक के प्रति लेखक को धन्यवाद ज्ञापित नहीं करना चाहिए बल्कि हालात ये होने चाहिए कि प्रकाशक लेखक को इस बात के लिए धन्यवाद दे क्योंकि प्रकाशक तो अपना धंधा कर रहा है लेकिन लेखक सृजन में लगा हुआ है, रचनाधर्मिता का काम कर रहा है। उन्होंने कहा कि किसी भी रचनाकार की पहली रचना का तो सिर्फ स्वागत ही होना चाहिए और आलोचना दूसरी रचना के बाद शुरु की जानी चाहिए, खासतौर पर तब जबकि किसी ने लघुकथा से उपन्यास की विधा में पहली कोशिश की हो। इन दिनों हमारी कहानियाँ छीजती जा रही हैं, उनका रस समाप्त होता जा रहा है वह भी महज इसलिए क्योंकि लेखक चौपाल बनाम व्हाट्सएप के द्वंद्व में उलझा हुआ है।

कायक्रम के आरंभ में भारती भाटे ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। साहित्यकार चित्रा जी का स्वागत वामा साहित्य मंच की संरक्षक डॉ. प्रेम कुमारी नाहटा तथा शारदा मंडलोई ने किया। साहित्यकार पंकज सुबीर का स्वागत स्वर्णिम माहेश्वरी और चेतन कुसमाकर ने किया। पुस्तक के आवरण रूपांकन हेतु चित्रा जी द्वारा शहर के प्रतिष्ठित रंगकर्मी संजय पटेल का स्वागत किया गया। स्मृति चिह्न डॉ. पारूल बड़जात्या व प्रियल बड़जात्या ने दिए। स्वागत उद्बोधन वामा साहित्य मंच की अध्यक्ष पद्मा राजेन्द्र ने दिया। वामा साहित्य मंच की तरफ से लेखिका ज्योति जैन का सम्मान संस्था की उपाध्यक्ष अमर कौर चढ्ढा तथा रंजना फतेहपुरकर ने किया। आभार सहसचिव इंदू पाराशर ने माना। कार्यक्रम का संचालन लेखिका अंतरा करवड़े ने किया।

***

स्मृति आदित्य

वनमाली कथा सम्मान से विभूषित हुए साहित्य

24 जनवरी की शाम को भारत भवन में समकालीन साहित्य के नौ हस्ताक्षरों को वनमाली कथा सम्मान से विभूषित किया गया। कहानी, आलोचना और साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में श्रेष्ठ रचनात्मकता के लिए सम्मान निर्णायक ज्यूरी ने हिन्दी की अग्रणी कथाकार मालती जोशी (भोपाल), का चयन राष्ट्रीय वनमाली कथा शिखर सम्मान के लिए किया है वहीं कथा लेखक तेजिंदर (रायपुर), मुकेश वर्मा (भोपाल), अल्पना मिश्र (गाजियाबाद), पंकज मित्र (राँची), और मनीषा कुलश्रेष्ठ (जयपुर), भी सम्मानित किए गए। कथा आलोचना सम्मान के लिए रोहिणी अग्रवाल (रोहतक), और जयप्रकाश (दुर्ग), और साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान के लिए दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका बनासजन (संपादक-पल्लव), को विभूषित किया गया। सम्मान के तहत रचनाकार को निर्धारित सम्मान निधि, उत्कीर्ण प्रशस्ति और प्रतीक चिह्न भेंट किए गए। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, अशोक मिश्र एवं शशांक विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। अध्यक्षता भारतीय ज्ञान पीठ के निदेशक लीलाधर मंडलोई एवं आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने की। शशांक ने पुरस्कृत रचनाकारों पर अपना वक्तव्य दिया। इस अवसर पर वनमाली सृजन पीठ की साहित्यिक पत्रिका ''रंग संवाद'' का विमोचन भी किया गया। कार्यक्रम का संचालन विनय उपाध्याय और आभार प्रदर्शन बलराम गुमास्ता ने किया।

***

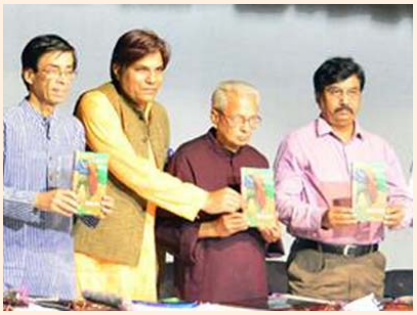

कविता संग्रह 'कंधे पर कविता' का विमोचन

नीलांबर कोलकाता द्वारा आयोजित एक भव्य कार्यक्रम में 11 फरवरी को चर्चित युवा कवि कथाकार विमलेश त्रिपाठी की वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित नई कविता पुस्तक 'कंधे पर कविता' का विमोचन वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह के हाथों शरत सदन में संपन्न हुआ। उक्त अवसर पर बतौर विशिष्ट अतिथि खंडवा से प्रताप राव कदम, वाराणसी से डॉ. शिवानी गुप्ता, भुवनेश्वर से डॉ. राकेश कुमार सहित कोलकाता से डॉ. शंभुनाथ, डॉ. अभिज्ञात, शैलेन्द्र शांत, डॉ. मीरा सिन्हा, डॉ.. आशुतोष, पीयूष कांत राय, निशांत एवं अन्य साहित्यकार उपस्थित थे।

केदारनाथ सिंह ने विमलेश त्रिपाठी के इस संग्रह पर बोलते हुए कहा कि विमलेश एक ऐसे कवि हैं जिन्हें मैं बहुत पसंद करता हूँ। इस संग्रह में कवि कुछ कदम और आगे बढ़ाते हुए खुद को सिद्ध करता है। वरिष्ठ कवि ने कहा कि विमलेश ने अपनी माटी से जुड़कर एक नई और चमकती हुई भाषा और अपना अलहदा मुहावरा गढ़ा है।

चर्चित कवि प्रताप राव कदम ने कहा कि विमलेश ने अपनी सशक्त लेखनी की बदौलत बिना अपनी पहली पीढ़ी को कुछ कहे-बताए कविता और कथा के फलक पर एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। डॉ. शिवानी गुप्ता ने विमलेश के संग्रह को इस मायने में महत्त्वपूर्ण बताया कि उसमें लोक की अनुगूँज के साथ संबंधों की पीड़ा, रचनाकार का दुख अभिव्यक्त हुआ है। कार्यक्रम का संचालन ममता पाण्डेय ने किया।

***

- मनोज झा

प्रवासी साहित्य पर कार्यशाला आयोजित हुई

सीहोर के स्नातकोत्तर कॉलेज में हिन्दी साहित्य में प्रवासी साहित्यकारों का योगदान विषय पर हिन्दी विभाग द्वारा एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में कथाकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा उपस्थित थीं। कार्यक्रम की अध्यक्षता कॉलेज के पूर्व प्राचार्य प्रो. व्ही. के. शुक्ल ने की जबकि विशिष्ट अतिथि के रूप में कॉलेज प्राचार्य डॉ. पुष्पा दुबे तथा पूर्व प्राचार्य डॉ. रामप्यारी ध्रुवे उपस्थित थीं। कार्यक्रम के आरंभ में प्राचार्य डॉ. पुष्पा दुबे ने स्वागत एवं प्रस्तावना वक्तव्य दिया। डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने प्रवासी साहित्यकारों की चर्चा करते हुए कहा कि आलोचकों द्वारा हमारे साहित्य को प्रवासी साहित्य कह कर खारिज कर दिया जाता है। उन्होंने कहा कि प्रवासी साहित्य को हिन्दी की मुख्य धारा में लाना ही होगा। कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. शुक्ल ने हिन्दी साहित्य में प्रवासियों के योगदान की सराहना की। अंत में आभार हिन्दी की विभागाध्यक्ष डॉ. सुशीला पटेल ने व्यक्त किया। संचालन डॉ. कमलेश सिंह नेगी द्वारा किया गया। इस अवसर पर डॉ. सुधा ओम ढींगरा के चर्चित उपन्यास के पेपरबैक संस्करण का विमोचन भी किया गया।

***

नरेंद्र कोहली को पद्मश्री

वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरेंद्र कोहली को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह में राष्ट्रपति महामहिम प्रणव मुखर्जी ने श्री नरेंद्र कोहली को पद्मश्री सम्मान प्रदान किया। विभोम-स्वर परिवार की ओर से श्री कोहली को शुभकामनाएँ।

***

मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति का राष्ट्रीय पुरस्कार डॉ. कमल किशोर गोयनका को

श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इंदौर का एक लाख रुपये का राष्ट्रीय पुरस्कार प्रेमचंद साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. कमल किशोर गोयनका को प्रदान किया गया। इस अवसर परसमिति के प्रधानमंत्री सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, सूर्यकांत नागर, हरेराम वाजपेयी, 'वीणा' संपादक राकेश शर्मा तथा अरविंद ओझा उपस्थित थे।

***

प्रताप सहगल को नटसम्राट का सर्वश्रेष्ठ नाटककार सम्मान

हमारे समय के एक महत्त्वपूर्ण और सार्थक हस्तक्षेप करने वाले नाटककार प्रताप सहगल को इस साल का सर्वश्रेष्ठ नाटककार सम्मान प्रदान किया गया। 5 मार्च, 2017 को मुक्तधारा आडिटोरियम में उन्हें यह सम्मान प्रसिद्ध रंग-निर्देशक भानु भारती के हाथों मिला। सम्मान ग्रहण करने के बाद प्रताप सहगल ने मंच से बोलते हुए कहा कि यह सम्मान उनके लिए इसलिए खास है क्योंकि यह रंग-परिवार द्वारा दिया जाने वाला सम्मान है। सम्मान के लिए चुनाव करने वाली समिति में रंगकर्म से जुड़े हुए रचनाकार ही होते हैं। इस वर्ष की चयन-समिति में दयाप्रकाश सिन्हा, जयदेव तनेजा, सुरेश भारद्वाज और जे पी सिंह शामिल थे।

***

ढाक के तीन पात पर चर्चा

स्पंदन संस्था द्वारा भोपाल के दुष्यंत संग्रहालय में व्यंग्यकार मलय जैन के व्यंग्य उपन्यास ढाक के तीन पात पर चर्चा का आयोजन किया गया। चर्चा की अध्यक्षता वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री अजातशत्रु ने की जबकि मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. अनुराधा शंकर सिंह उपस्थित थीं। उपन्यास पर विशेष वक्ता के रूप में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. सुशील सिद्धार्थ तथा उपन्यासकार पंकज सुबीर ने अपने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर मलय जैन ने अपने उपन्यास के कुछ अंशों का भी पाठ किया। इस अवसर पर बोलते हुए डॉ. सुशील सिद्धार्थ ने कहा कि मलय जैन ने अपने उपन्यास के साथ भविष्य की कई संभावनाओं को जन्म दिया है, उनका प्रवेश व्यंग्य में कुलदीपक की तरह हुआ है। मलय का यह उपन्यास पहले पृष्ठ से ही गति पकड़ लेता है। कार्यक्रम का संचालन स्पंदन की संयोजक तथा वरिष्ठ कथाकार डॉ. उर्मिला शिरीष ने किया।

***

विश्वगाथा के द्वारा चार पुस्तकों का लोकार्पण

गुजरात के सुरेन्द्रनगर में गुजराती-हिन्दी साहित्यिक एवं पुस्तक प्रकाशन प्रवृत्ति के क्षेत्र में सक्रिय 'विश्वगाथा' के द्वारा चार नूतन पुस्तकों का लोकार्पण समारोह हाल ही में संपन्न हुआ । जिसमें गुजराती भाषा के गिरनारी कवि श्री राजेन्द्र शुक्ल, श्री हर्षद त्रिवेदी, डॉ. बिन्दु भट्ट, डॉ. जयश्री देसाई, वीरेन्द्र आचार्य एवं कविश्री राज लखतरवी उपस्थित थे। समारोह में कविश्री तरुण जानी का ग़ज़ल संग्रह - 'शब्द थई ने', मनोज पंड्या का बाल कविता संग्रह 'बाल मंजरी', कानजी वाढेर का निबंध संग्रह 'मन वसेलां मानवी' और हरियाणा के सोनपत की प्रोफ़ेसर डॉ. डेज़ी का हिन्दी कविता संग्रह 'करवटें मौसम की' का लोकार्पण किया गया।

***

जाँजगीर साहित्य महोत्सव

जाँजगीर साहित्य महोत्सव में पत्रकार, शिक्षाविद् और साहित्यकार के अलावा स्थानीय व्यवसायियों ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया।

लोक बाबू, खुर्शीद हयात, श्रद्धा थवाईत के साथ छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ कहानीकार सतीश जायसवाल ने कहानियों का पाठ किया। श्रद्धा ने हवा में फड़फड़ाती चिट्ठी का पाठ किया। वरिष्ठ कहानीकार लोक बाबू ने खुशी नामक कहानी का पाठ किया।

व्यंग्य के सत्र में देश के प्रख्यात चुनिंदा व्यंग्यकार श्रोताओं के सम्मुख छाए रहे, उनमें शामिल थे-दुर्ग जिले के विनोद साव, भिलाई से रवि श्रीवास्तव और बिलासपुर से बरुण श्रीवास्तव सखाजी। इस सत्र की अध्यक्षता लखनऊ से पधारे सुपरिचित व्यंग्यकार व् अट्टहास पत्रिका के सम्पादक अनूप श्रीवास्तव ने की।

कविता का सत्र दोनों सत्रों पर भारी पड़ा। कवियों में तनवीर हसन, नीरज मंजीत, दिनेश गौतम, माँझी अनंत, घनश्याम त्रिपाठी, विद्या गुप्ता, सरिता दोषी, नरेंद्र श्रीवास्तव, विजय राठौर और सतीश कुमार सिंह प्रमुख रहे।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के हिन्दी संपादक डॉ. ललित किशोर मंडोरा ने कहा कि छत्तीसगढ़ में रचनात्मक प्रतिभा की कमी नहीं हैं, अपितु छत्तीसगढ़ की ज़मीन को खँगालने भर की देर हैं। यह प्रदेश निश्चित ही असाधारण विलक्षण प्रतिभा का केंद्र पुंज हैं; जिसको पारस की आवश्यकता हैं। आने वाले समय में छत्तीसगढ़ के अन्य जिलों में भी रचनात्मक लेखकीय संवाद और लेखक से मिलिए कार्यक्रम, सृजन शिविर लगाए जाएँगे।

***

कथाकार अमृतलाल नागर जन्मशती पर द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

हिंदी विभाग मुंबई विश्वविद्यालय ने दि. 03 एवं 04 मार्च को विद्यानगरी परिसर में हिंदी के लोकप्रिय कथाकार अमृतलाल नागर के जन्मशती पर द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। उद्घाटन सत्र के आरंभ में संगोष्ठी में उपस्थित देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए विद्वानों और हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकारों तथा प्रतिभागियों का स्वागत हिंदी विभाग के अध्यक्ष प्रो. डॉ. विष्णु सरवदे ने किया। संगोष्ठी के आयोजन का प्रास्ताविक संयोजक डॉ. सचिन गपाट ने किया। उन्होंने अमृतलाल नागर के साहित्य को आधुनिक संदर्भ के रूप में प्रस्तुत किया।

संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए वर्तमान समय के सुप्रसिद्ध कथाकार डॉ. भगवानदास मोरवाल ने नागर जी को 20वीं सदी का उल्लेखनीय रचनाकार माना। उन्होंने कहा कि अमृतलाल नागर प्रेमचंद और शरतचंद्र की परंपरा के लेखक हैं। उनके लेखन के तीन आधार हैं। जो लिखो वास्तविक लिखो- प्रेमचंद, पहले महसूस करो फिर लिखो- शरतचंद्र, अपने कलम से किसी की निंदा न करों- बाबा रामजी।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करते हुए चर्चित कथाकार पंकज सुबीर ने नागर की कथा परंपरा को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि अमृतलाल नागर का कथा साहित्य आज अत्यंत प्रासंगिक है। नागर कालजयी रचनाकार हैं। इस प्रकार के आयोजन आज अत्यंत आवश्यक हैं। बीज वक्तव्य देते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय से आए प्रो. डॉ. पवन अग्रवाल ने लखनऊ और नागरी जी के संबंधों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की। उन्होंने कहा कि अमृतलाल नागर जी आगरा का हृदय और लखनऊ की धड़कन हैं। संगोष्ठी की उपलब्धि अचला नागर के अपने पिता से संबंधित मार्मिक संस्मरण रहे। अनेक प्रसंगों-संस्मरणों द्वारा अमृतलाल नागर जी के जीवन और सृजन को उन्होंने विश्लेषित किया। मुंबई की प्रख्यात रचनाकार डॉ. सूर्यबाला ने नागर जी को अपने संस्मरणों में याद किया। इस संगोष्ठी के लिए बैंक ऑफ़ इंडिया के महाप्रबंधक (मानव संसाधन एवं राजभाषा) श्री. मृत्युंजय कुमार गुप्ता ने अमृतलाल नागर का साहित्य, समाज और हिंदी में रोज़गार की संभावनाओं पर अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए। इस आयोजन के लिए बैंक ऑफ़ इंडिया ने आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया। इस संगोष्ठी में देशभर से आए विद्वानों और रचनाकारों ने नागर जी के सृजन का मूल्यांकन किया।

कोचीन विश्वविद्यालय के डॉ. आर. शशिधरन, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय के डॉ. सरराजु, उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय के डॉ. सुनील कुलकर्णी, आनंद (गुजरात) से आए प्रो. डॉ. नवनीत चौहान, मुंबई के प्रो. डॉ. माधव पंडित आदि विद्वानों ने संगोष्ठी को वैचारिक आधार दिया। तीस से अधिक शोध आलेख इस संगोष्ठी में प्रस्तुत किए गए। दो सौ से अधिक प्रतिभागी इस आयोजन में सम्मिलित हुए।

हिंदी विभाग के अध्यक्ष प्रो. डॉ. विष्णु सरवदे तथा प्रो. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर, डॉ. हूबनाथ पाण्डेय, डॉ. बिनीता सहाय, प्रा. सुनील वळवी और डॉ. प्रज्ञा तिवारी आदि ने संगोष्ठी को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संगोष्ठी में बड़ी संख्या में शोध छात्र तथा छात्राएँ भी श्रोताओं के रूप में उपस्थित रहे। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के संयोजक डॉ. सचिन गपाट ने सबके प्रति आभार प्रकट किया।

***

-डॉ. बिनीता सहाय

चिरकी लागन लाग तो.....

शीर्षक बचपन की स्मृतियों से निकल कर आया है। मौसी का बेटा बुंदेलखंड के भिंड में अपनी दादी के घर गर्मी की छुट्टियाँ बिता कर जब वापस अपने घर इन्दौर लौटता तो उसकी भाषा बदली हुई होती थी। कई मज़ेदार वाक्य उसमें शामिल होते थे। बहुत अधिक तीखी चीज़ खाने पर जब मिर्ची लगती थी तो वह यही वाक्य कह कर चिल्लाता था – 'चिरकी लागन लाग तो।' यह वाक्य कुछ बुंदेली और कुछ उसकी तुतलाहट के परिणाम से उपजा वाक्य होता था। हम सब इस वाक्य के बहुत मज़े लेते थे। इन दिनों लगता है कि साहित्य में भी इस वाक्य का प्रयोग बहुत ज़्यादा हो रहा है। मेरे साथ पिछले दिनों एक मज़ेदार (...?) वाक़या हुआ। एक नई लेखिका ने मेरे व्हाट्स अप पर कुछ कविताएँ भेजीं। अमूमन मैं व्हाट्स अप के मामले में कुछ आलसी हूँ, जब मर्ज़ी होती है तभी देखता हूँ कि क्या संदेश आए हैं। ख़ैर जब मैंने वे कविताएँ देखीं, तो वे कविताएँ थी ही नहीं। उनका फिर संदेश आया कि क्या आप इन्हें अपनी पत्रिकाओं में छापेंगे ? मैंने पूछा कि आपने हिंदी के किन कवियों को पढ़ा है अभी तक ? उनका उत्तर संदेश में आया कि मैं पढ़ती नहीं बस लिखती हूँ। मैंने उत्तर दिया कि आप पहले समकालीन कविताओं को पढ़िए और समझिए कि किस प्रकार की कविताएँ लिखी जा रही हैं, उसके बाद लिखिए, अभी तो आपने जो लिखा है उसे कविता नहीं कहा जा सकता। उसके बाद उनका कोई संदेश नहीं आया, करीब पाँच मिनट बाद उनका कॉल आ गया और उनका पहला ही तीखा प्रश्न था – 'तो आप मुझे कविता लिखना सिखाएँगे.....?, मुझे.....?' मेरी कविताओं पर फेसबुक पर लाइक्स और कमेंट्स देखिए ज़रा। मेरे पास कोई उत्तर नहीं था इस प्रश्न का, वे और भी आग बबूला होकर बहुत कुछ कहती रहीं, मजबूरन मैंने कॉल काट दिया। अल्लाह ख़ैर....।

मित्रो मैं यह समझ नहीं पा रहा हूँ कि हमें आलोचना या सही सलाह के नाम पर इन दिनों इतनी मिर्ची क्यों लगने लगी है। हम क्यों ज़रा-सी भी कोई विपरीत बात अपनी रचना को लेकर नहीं सुन पाते हैं। जबकि हमें यह पता है कि कुछ भी निर्दोष या मुकम्मल नहीं होता है। कहीं न कहीं, कुछ न कुछ कमी हर रचना में रहती है। कुछ लोग कहते हैं कि यह जो मिर्ची लगने की बीमारी है यह सोशल मीडिया से आई है, फेसबुक पर, व्हाट्स अप पर, ब्लॉग पर प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ इतनी प्राप्त होने लगी हैं कि उनको ही अंतिम सत्य लेखक मान लेता है। लेकिन मैं सोशल मीडिया को ही इस बीमारी के लिए दोषी नहीं मानता, मेरा ऐसा मानना है कि हम सब कहीं न कहीं अंदर ही अंदर ट्रांस्फार्म होते जा रहे हैं। यह ट्रांस्फार्म हमें नारसीसस बनाता जा रहा है। एक ग्रीक देवता, जो अपने आप से सबसे ज़्यादा प्यार करता था। अपने से प्यार करना कोई बुरी बात नहीं है। लेकिन प्यार करते समय हमें एक और कहावत याद रखना चाहिए कि प्यार अंधा भी होता है। यदि कोई आपकी रचना में कहीं कोई सुधार की गुंजाइश की ओर इशारा कर रहा है, तो वह आपके भले के लिए ही कर रहा है, वरना तो उसे क्या पड़ी है आपसे दुश्मनी मोल लेने की। मुझे ऐसा लगता है कि हम सहनशीलता नामक गुण को बिल्कुल ही खो चुके हैं। फेसबुक पर अमित्र कर देना या अवरोधित कर देना जैसे मामलों को हम हत्या जैसे अपराध की श्रेणी में डालने लगे हैं। जब कॉल अटैंड न करना, व्हाट्स अप मैसेज का उत्तर नहीं देना जैसे मामलों में हम अपने मित्रों तक को शत्रुओं की सूची में रख देते हैं तो ऐसे में आलोचना और वह भी रचना की आलोचना? वह भला हम कैसे सहन कर सकते हैं, मिर्ची तो लगना ही लगना है.....।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन : नए सेट की पुस्तकें

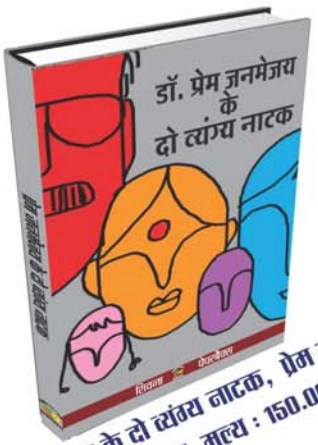

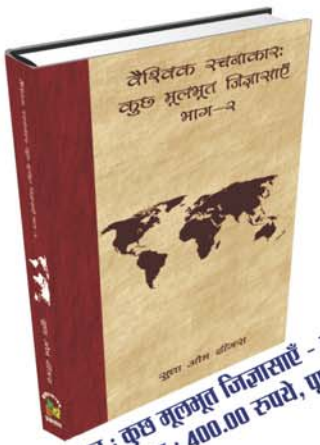

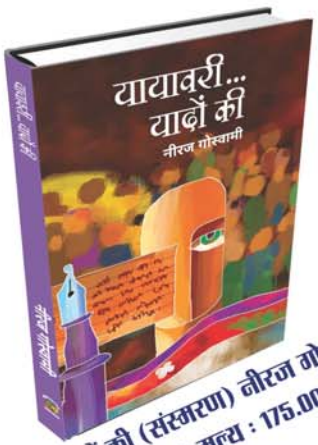

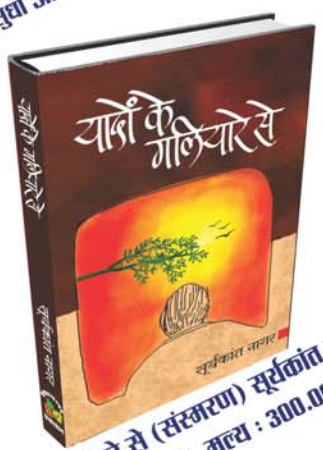

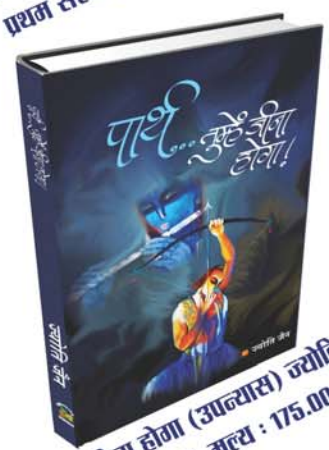

डॉ. प्रेम जनमेजय के दो व्यंग्य नाटक, प्रेम जनमेजय
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150.00 रुपये

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 2
सुधा ओम ढींगरा, मूल्य : 400.00 रुपये, पृष्ठ : 240

यायावरी... यादों की (संस्मरण) नीरज गोस्वामी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

विमर्श-अकाल में उत्सव, संपादक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रथम संस्करण : जनवरी 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

यादों के गलियारे से (संस्मरण) सूर्यकांत नागर
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 300.00 रुपये

पार्थ...! तुम्हें जीना होगा (उपन्यास) ज्योति जैन
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

स्मृतियों में रमते हुए (समग्र) डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

अंदर का स्कूल (संस्मरण) डॉ. मनोहर अगनानी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150 रुपये

चाहने की आदत है (कविता संग्रह) पारुल सिंह
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 200.00 रुपये

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

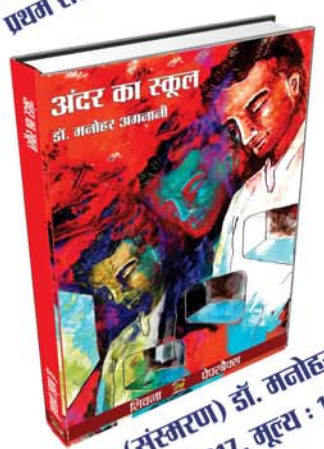

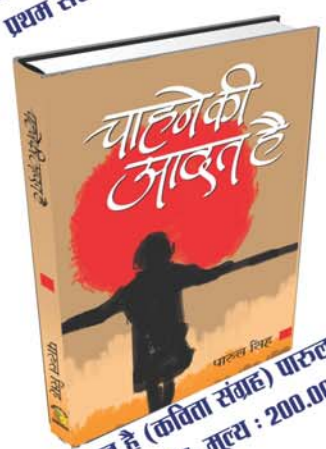

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● April-June 2017 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

मुख्यमंत्री से जुड़ने का उनसे **सीधे संवाद** बनाने का
एक और **सशक्त डिजिटल माध्यम**

शिवराज सिंह चौहान

एप्प

Google Play
से डाउनलोड करें

जल्द ही...
आइओएस पर भी उपलब्ध

Follow Chief Minister Shivraj Singh Chouhan

/ChouhanShivraj /ChouhanShivraj /ChouhanShivrajSingh

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2017

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।